राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान-सम्पादक

डा० पद्मधर पाठक

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

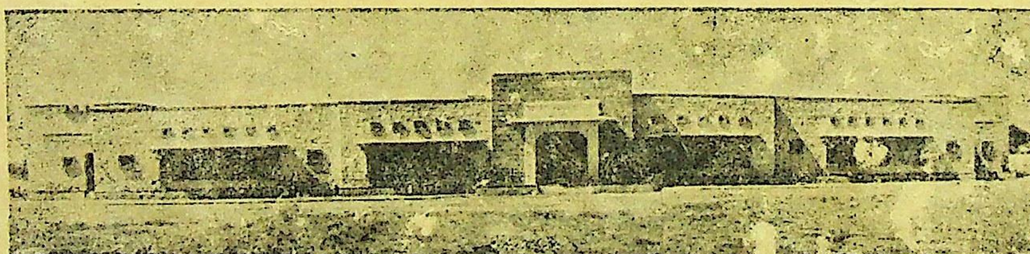
ग्रन्थाङ्क 141

रसिक गुविन्द कवि कृत

गोविन्दानन्दघन

सम्पादक

डॉ० मोतीलाल गुप्त एम.ए., डी.लिट्



प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राज.)

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1983

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान-सम्पादक

डा० पद्मधर पाठक

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क 141

रसिक गुविन्द कवि कृत

गोविन्दानन्दघन

सम्पादक

डॉ० मोतीलाल गुप्त एम ए., डी.लिट्

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राज.)

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1983

प्रथमावृति 250 | मूल्य रु० 88/-

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थान-प्रदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषा-निबद्ध
विविध वाङ्मय प्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

प्रधान-सम्पादक

डा० पद्मधर पाठक

ग्रन्थाङ्क 141

रसिक गुविन्द कवि कृत

गोविन्दानन्दघन

प्रकाशक

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राज.)

मुद्रक

साधना प्रेस एवं पंकज प्रिण्टर्स, जोधपुर

विक्रम संवत् 2039 ईस्वी सन् 1983

विषयानुक्रम

* * *

प्रधान-सम्पादकीय

परिश्रम एवं अध्यवसाय से एकत्र इस संकलन ग्रंथ को यदि संकलनकर्त्ता की अन्वेषक साहित्याभिरुचि की संज्ञा दी जाय तो कोई नई बात न होगी। अनेक प्रसिद्ध कवियों एवं आचार्यों की लेखनी का पग-पग में प्रयोग कर उनके साये में आकर कवि गुविन्द ने अपनी रसाभिव्यक्ति क्षमता और काव्य की परख की बीच-बीच में झलक दिखलाई है और जो उनका अपना है वह भी एक जिज्ञासु पाठक के लिए महत्त्व का है, नया है।

जिस प्रकार एक सच्चा भक्त अपने प्रिय विषय में रम जाता है, प्राय: उसी तन्मयता से गुविन्दजी ने रीतिकालीन काव्य के शृङ्गारिक चमत्कारों, रसों के निरूपण, नायक-नायिका-भेद आदि को लेकर व्रजभूमि की झीनी चदरिया उघाड़ी है।

राजस्थान के भूतपूर्व मत्स्य प्रदेश (अलवर, भरतपुर, डीग आदि) के हिन्दी साहित्य पर अपनी स्वतंत्र पुस्तक तैयार करते समय विद्वान् सम्पादक डा० मोतीलाल गुप्त ने गुविन्दजी को अपने पृथक् अध्ययन का विषय बनाकर आगे के लिए छोड़ रखा था। उनका यह निश्चय पूरा होने पर प्रतिष्ठान और डा० गुप्त दोनों को ही संतोष का अनुभव होना स्वाभाविक है। ग्रंथकार ने श्री वृन्दावन-धाम में निवास कर इसकी रचना की है और इसके मूल्यांकन एवं रसास्वादन का रोचक भार डा० गुप्त ने वृन्दावन में ही बैठकर उठाया है।

व्रजभाषा के इस काव्यशास्त्रीय ग्रंथ के अतिरिक्त गुविन्द कवि की अन्य रचनाओं का भी डा० गुप्त ने अपनी भूमिका में उल्लेख कर शोधार्थियों का ध्यान आकर्षित किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के मुद्रण, प्रूफ-शोधन आदि व्यवस्था में श्री गिरधरवल्लभ दाधीच कनिष्ठ तकनीकी सहायक का पर्याप्त परिश्रम सराहनीय है। इनकी ही देख-रेख में श्रीमती गणेशी आत्रेय पुस्तकालय सहायक ने कवि-नामानुक्रमणिका तैयार की है। एतदर्थ ये दोनों ही साधुवाद के पात्र हैं।

जोधपुर
५-१-८३

पद्मधर पाठक
निदेशक

भूमिका

गोविंदानंदघन का प्रथम दर्शन पूर्वी राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथों का अनुशीलन करते समय हुआ। इस ग्रंथ में मेरी विशेष रुचि के कई कारण थे—

(१) ब्रजभाषा का काव्यशास्त्रीय ग्रथ।

(२) जयपुर के गोविंद कवि द्वारा लिखित। गोविंद कवि खंडेलवाल वैश्य वर्ग में नाटानी-गोत्रोत्पन्न विशिष्ट व्यक्ति थे। मैं भी वैश्य वर्ग के इसी वर्ग में उत्पन्न हुआ।

(३) वृन्दावन से संपर्क। मथुरा-वृन्दावन भरतपुर के अति निकट है। यहां आना-जाना प्रायः होता रहा है और यहां के कवियों में रुचि होना स्वाभाविक है।

(४) सलेमपुर के श्रीजी महाराज तथा वृन्दावन के अधिकारी श्री-वल्लभशरण जी से निकट परिचय।

(५) काव्य-शास्त्र के निरूपण में विविध व्रजभाषा-कवियों के उद्धरण।

(६) कठिन प्रसंगों का सरस और स्पष्ट विवेचन। पद्य के अतिरिक्त आवश्यकतानुसार गद्य का भी प्रयोग।

तब मैं 'मत्स्य प्रदेश' के काव्य-ग्रंथों का अध्ययन कर रहा था अतः प्रासंगिक रूप में ही इस ग्रंथ की चर्चा की जा सकी। दूसरी बात यह भी थी कि मेरा आलोच्यकाल ईस्वी सन् १७०० से १९०० तक था और यह कृति यद्यपि इसी काल में आती है, परन्तु इसका निर्माण-स्थल मत्स्य प्रदेश न होकर वृन्दावन है अतः उस स्थान पर इस ग्रंथ का विशेष विवेचन उपयुक्त नहीं समझा गया। इस ग्रंथ को जब विस्तार के साथ देखा गया तो विदित हुआ कि यह एक महत्वपूर्ण रीतिग्रंथ है और इसके कर्त्ता निश्चय ही आचार्य की महत्वपूर्ण पदवी सुशोभित करते हैं और इसीलिए इसका सम्यक् निरूपण आवश्यक समझा गया।

कवि-परिचय

परिचय से संबंधित कुछ पंक्तियां सन् १९६० में ब्रिटिश म्यूजियम

लंदन में लिखी गई थी क्योंकि वहीं इस कवि के कई अप्रकाशित और अप्रचलित ग्रंथों का पता लगा था। उस साक्ष्य के आधार पर कवि की जीवन सम्बन्धी सामग्री के चयन में जहां 'गोबिंदानंदघन' का आधार लिया गया है वहां कवि के अन्य ग्रंथ भी ध्यान में रखे गये हैं। शोध करने पर कुछ सामग्री बाहरी स्रोतों से भी एकत्र की गई जिसका स्थान-स्थान पर उल्लेख किया गया है। गोविंद कवि के बारे में बल्देव उपाध्याय ने भी कुछ अच्छी सामग्री दी है और उसका उपयोग भी धन्यवाद सहित किया जा रहा है।

मत्स्य प्रदेश के हस्तलिखित ग्रंथ की खोज करते समय मुझे गोविंद कवि रचित 'गोविंदानंदघन' नामक रीति-ग्रंथ की अनेक प्रतियां मिलीं—भरतपुर, अलवर दोनों जगह के पुस्तकालयों में इस ग्रंथ की अनेक प्रतियां हैं, काशी नागरी प्रचारणी सभा तथा राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में भी इसकी प्रतियां हैं और जब मैं लंदन में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज कर रहा था तो गोविंद कवि के अन्य ग्रंथों के साथ 'गोविंदानंदघन' की भी प्रतियां मिलीं। इस सब का अभिप्राय यह हुआ कि कवि का यह रीति-ग्रन्थ बहुत ही प्रसिद्ध और प्रचलित था और इसके आधार पर निश्चयपूर्वक गोविंद कवि को आचार्यों की श्रेणी में बिठाया जा सकता है।

इस कवि का नाम 'रसिक गोविंद' और इनकी पुस्तक (रीतिग्रन्थ संबंधी) का नाम 'रसिक गोविंदानंदघन' लिखा गया है। यह बात भ्रामक है। कुछ लोग यह भी कहते है कि 'रसिक गोविंद' और 'गोविंदानंदघन' दो अलग-अलग पुस्तकें हैं। 'रसिक गोविंद' नाम की पुस्तक मेरे देखने में नहीं आई है। 'गोविंदानंदघन' की अनेक प्रतियां देखी है। इन प्रतियों में पुस्तक का नाम स्पष्ट रूप से 'गुविंदानंदघन' लिखा गया है, 'रसिक गुविंदानंदघन' नहीं। पंडित रामचंद्र शुक्ल, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, डाक्टर नगेंद्र आदि ने भी 'रसिक' ही लिखा है। मेरे कथन के प्रमाण में नीचे लिखी पंक्तियां देखिए—

(१) 'रच्यौ **गुविंदानंदघन** वृंदावन रसवंत'
(२) 'यह **गुविदानंदघन** नाम धरचौ इहि हेत'
(३) 'रच्यौ **गुविंदानंदघन** रसिक गुविंद विचारि'

इस 'रसिक गुविंद' से भ्रम उत्पन्न होता है। कवि अपने को रसिक मानते थे उनका सम्प्रदाय—सर्वेश्वर संप्रदाय ही ऐसा था, इसका अभिप्राय

यह नहीं कि हम उनके नाम में भी उनके इस गुण की धारणा को शामिल कर दें। उन्होंने अपना नाम भी स्पष्ट रूप से 'गोविंद' या (गुविंद) बताया है—

(१) 'रसिक, भक्त, लेखक गुविंद कवि कोक काव्य विलसैया'
(२) सुकवि **गुविंदा**दिकनि कृत यह आनंद समूह, यातै नाम आनंदघन धरचौ रहत प्रायूह
(३) मित्र '**गुविंद**' को चित्र चुरावे
(४) वारी वैसवारी उजियारी श्री **गुविंद** कहें।

सच तो यह है कि पुस्तक का नाम 'आनंदघन' और कवि का नाम 'गोविंद' है। दोनों को मिलाकर पुस्तक का नाम 'गोविंदानंदघन' हुआ। हस्तलिखित पुस्तकों पर भी 'श्री गोविंदानंदघन' नाम लिखा हुआ है। तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व 'रसिक गोविंद और उनकी कविता' नाम से एक पुस्तक श्री वटुक नाथ शर्मा तथा श्री बल्देव उपाध्याय लिखित बलिया हिंदी प्रचारिणी सभा से सं० १९८३ में प्रकाशित हुई थी। पुस्तक में कवि का आलोचनात्मक परिचय कराया गया है। यदि आलोचनात्मक नहीं तो कुछ रचनाओं के नाम इस पुस्तक में अवश्य मिलते हैं।

शिवसिंह सरोज, ग्रियर्सन के वर्नाक्यूलर लिटरेचर अव हिन्दुस्तान तथा मिश्र बंधु विनोद तीनों में इनका नाम आया है। हिंदी-साहित्य के प्रत्येक इतिहास में इनके नाम का उल्लेख है, परन्तु विस्तृत परिचय नहीं दिया गया है। इनकी कृतियों पर काम करने की आवश्यकता है।

इनके ग्रन्थों की अनेक प्रतियां स्थान-स्थान पर बिखरी पड़ी हैं। ब्यावर निवासी बाबू रामनारायण के यहां इनके अनेक ग्रंथों के होने की बात कही जाती है। मिश्र बंधु विनोद में नं० ११३९ पर इनके ७ ग्रंथों की बात कही गई है। इनके धार्मिक विचार तो नितान्त स्पष्ट हैं। स्वामी हरिदास के सम्प्रदाय में यह शिष्य थे, किन्तु अनेक स्थलों पर हितहरिवंश के प्रति भी इनकी आस्था है। सर्वेश्वर सम्प्रदाय का नाम इनके ग्रंथों में अनेक स्थानों पर आता है। वृन्दावन के विभिन्न घरानों में भी इनके कई ग्रंथ पाये गये हैं। नीचे लिखी कुछ पंक्तियां देखिए—

(१) वैष्णव रसिक
(२) श्री सर्वेश्वर सरन गुरु वास वृंदावनधाम (रसिक गोविंद)

(३) जै जै श्री राधिका सर्वेश्वर श्री हंस
(४) श्री परमउद्धार परमेश्वर सर्वेश्वर सर्वोपरि विराजमान तिनकी परंपरा यह। हंस बंस सनकादिक (लछिमन चंद्रिग) नारद निम्बादित्य सम्प्रदाय के सिरोमनि आचारज श्री हरिव्यास देवजू महाराज की गादी। श्री परसराम देवजी। श्री हरिवंशदेवजी। श्री नारायनदेवजी। श्री वृंदावनदेवजी। श्री गोविंददेवजी। श्री गोविंद सरन देवजी। श्री सरवेस्वर सरणदेवजी महाराज को शिष्य परम कृपापात्र वैष्णव रसिक गोविंद कहत।

(५) ऐसे सर्वेसर सरन सुखकारी गुरुदेवदं। निम्बार्क-सरणदेवजी

इनकी कई पुस्तकों के नाम मिलते हैं—

(१) **अष्ट देश भाषा**—आठ भिन्न भाषाओं में राधाकृष्ण के शृंगार का वर्णन पंजाबी, खड़ी, पूर्वी, रेखता आदि में पद्य सं० ७५।

उदाहरण—

(१) **पंजाबी**

बोलियां मुक्ख लगावदीं लाल गुलाल अबीर उड़ावदी झोलियां।
खोलियां गोलियां तालिया देंडां करेदों गली बिच बोलियां ढ्ढौलियां।
घोलियां किसी न साउदी जिदि उसी से काटी दिल प्रीति कलोलियां।
चोलियां रंग गुविंद भिजावदां गावदां रंग रंगीलियां होलियां॥

(२) **पूर्वी** –

रंग भरि भरि भिजवई मोरि अंगिया, दुह कर पिहिस कनक पिचकरवा।
हम सन ठनगन करत डरत नहि मुखसन लगवत अतर अगरवा॥
अस कस वसियत सुनु ननदी हो फगुन के दिन एहि गोकल नगरवा।
मोहिं तन तकत बसत प्रति मुसिकत रसिक गुविंद अभिराम मंगरवा॥

(२) **पिंगल ग्रन्थ**—छंद शास्त्र संवंधी

(३) **समय प्रबंध**—भिन्न भिन्न ऋतुओं में राधा कृष्ण की जीवन चर्या (८४ छंद)

(४) **रसिक गोविंद**—

अलंकार ग्रन्थ—इसमें लक्षण उदाहरण दोनों मिलते हैं। इसे गोविंदानंदघन से भिन्न ग्रंथ माना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है, यह वृद्धावस्था का ग्रथ है। यह ग्रंथ अभी मेरे देखने में नहीं आया। गुविंदानंदघन का समय १८५८ विक्रमी है, किन्तु 'रसिक गुविंद का वि०सं०१८९० नीचे लिखे अनुसार—

नभ निधि वसु ससि अब्द (१८९०) रवि दिन पंचमी बसन्त।

इसी बसंत पंचमी को 'गोविंदानंदघन' भी समाप्त हुआ था। 'रसिक-गोविंद' इस प्रकार काफी महत्वपूर्ण ग्रन्थ होना चाहिए। क्या यह संभव नहीं कि २२ वर्ष पूर्व जिन सिद्धान्तों को लेकर 'गोविंदानंदघन' की रचना की गई थी उसमें परिवर्तन, परिशोधन आदि करने के उपरान्त इसका नाम 'रसिक गोविंद' प्रचलित हुआ हो। एक बात और है कि कभी-कभी ग्रंथ का परिचय उसके कर्त्ता के नाम से भी होता है। यह प्रवृत्ति भारत तथा विदेश दोनों में अमर रही है। 'शेक्सपियर' तथा 'पाणिनि' पढना अति प्रचलित है। इसी प्रकार 'गोविंदानंदघन' अपने रचयिता रसिक गोविन्द के नाम से कालान्तर में चल निकला हो। किन्तु, इसके निर्माण का समय जो अलग दिया गया है वह एक वाधा उत्पन्न करता है। आज तक खंडेलवाल वैश्य जाति में बसंत पंचमी बहुत ही महत्वपूर्ण दिन समझा जाता है। कम से कम तीन ग्रन्थ खंडेलवाल वैश्य कवियों के लिखे इस दिन समाप्त हुए।

(१) 'रसिक गोविंद' नभ निधि वसु ससि अब्द(१८९०)रवि दिन **पंचमी बसन्त**
(२) 'गोविन्दानंदघन' वसु सर वसु ससि अब्द(१८५८)रवि दिन **पंचमी बसन्त**
(३) 'विचित्ररामायन' त्रय नभ नव ससि(१९०३)समय में **माघ पंचमी** खेत।

अत: उनके नाटानी वंशोत्पन्न खंडेलवाल वैश्य होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं। और भी कारण—

(१) जयपुर निवासी होना जहां खंडेलवाल वैश्यों का आधिक्य है
(२) बालमुकुन्द के भाई होना—ये बालमुकुन्द खंडेलवाल वैश्य जयपुर राज्य में उच्च अधिकारी थे।

(३) नाटानी गोत्रीय खंडेलवाल वैश्यों के अस्तित्व अब भी विद्यमान हैं। नाटानियों का रास्ता जयपुर में अभी भी एक प्रमुख मार्ग है। वहां नाटानियों की हवेली भी है।

(४) नाटानी शब्द का नट' से कोई संबंध न होना। 'नटानी' नाटानी का ही पर्याय है। छन्द की दृष्टि से मात्रा कम है।

(५) **रामायण सूचनिका**

३३ दोहा ककारादि क्रम से रामायण की संक्षिप्त कथा-यह १८५८ से पहले की रचना प्रतीत होती है क्योंकि इसके कई दोहे 'गोविंदानंदघन' में प्रयुक्त हुए हैं—

उदाहरण—मंगलाचरण के दो दोहे —

अति उदार सुखसार सुभ, राजत सदा अभेव ।
अमल चरण तारन तरन, जय जय श्री गुरुदेव ॥१॥

श्री रघुवर महाराज को, रस जस परम प्रकास ।
जथा बुद्धि बसत करत, रसिक गोविंद निज दास ॥२॥

'क' 'ख' क्रम से **रामायण** कथा -

क– कृपा सिंधु पर ब्रह्म प्रभु अजरअविनासी स्याम ।
सुर हित कर भुव आ रहा, प्रगटे रघुकुल राम ॥३॥

ख– खेलत नृप दसरथ सदन, लखन भरत रघुवीर ।
बाल चरित लखि मातु बलि, वारत भूषण चीर ॥४॥

ग— गोर श्याम गोरी जुगल, रूप अनूप सुजान ।
चढ़त नन्वावत चपल हय, हाथ लिये धनु-वाण ॥५॥

स — स्वर्ग सिंहासन छत्र जुत, सोभित सीता-राम ।
लषन भरत ढ़ोरत चंवर, वरषि सुमन सुर वाम ॥३०॥

ह— हृदय ध्यान धरि है यहै, ते धनि धन्नि विसेस ।
तीन लोक महं सुख भयो, राजत राम नरेस ॥३१॥

उपसंहार –

इहि बिधि प्रभु कीरत सदा, निगम अगम कहि नेति
पढत सुनत गावत कहत, मन वांछित फलदेत ।।३२।।
उग्र सेस पार न लहे, राम चरित अति गूढ़ ।
इक रसना क्यों कहि सके, रसिक गोविंद अति कूट ।।३३।।

(६) कलिजुग रासो –

१६ कवित्तों द्वारा कलियुग के दुष्प्रभाव का अनुभवपूर्ण वर्णन ये कवित्त वृंदावन में सगृहीत ह० लि० प्र० में भी लिखे हुए मिले । मेरे द्वारा स्वयं अवलोकित किए गये । प्रत्येक कवित्त के चौथे चरण की पंक्ति एक ही है ।

कीजिये सहाय जु कृपाल श्री गुविन्द लाल,
कठिन कराल कलिकाल चलि आयो है ।

दो कवित्त देखिए—(चित्रण बहुत स्पष्ट है और कवि की गहरी पेंठ को बताता है)

(१) राजनि की नीत गई, मित्रन की प्रीति गई,
नारिन की रति गई जार जिय भायौ है ।
शिष्यन को भाव गयो, पंचनि को न्याव गयो,
सांच को प्रभाव गयौ झूंठ ही सुहायो है ।
मेघनि की वृष्टि गई, भूमि सुतौ नष्टि गई,
सृष्टि में सकल विपरीत दरसायौ है ।
कीजिए सहाय जु कृपाल श्री गुविंद लाल,
कठिन कराल कलिकाल चलि आयो है ।।

(२) मुलक इमानों नाहीं भले को जमानों नाहीं,
धरम को थानो अधरम ने उठायो है ।
छमा दया सत्य शील संतोषादिक दूर दुरे,
काम क्रोध लोभ मोह मद सरसायो है ।।

चोर ठग अधिक असाधु भये ठोर ठोर,
साधुन नें ऐसे में अपनपो छुपायो है ।
कीजिए सहाय० ....

का०ना०प्र० सभा द्वारा प्रस्तुत ह०लि०ग्र० की खोज के अनुसार इसका रचनाकाल १८६५ वि० निर्धारित किया गया है। यह ग्रन्थ जो प्राप्त हुवा, है स्वयं ग्रन्थकार का लिखा प्रतीत होता। है । ग्रन्थ के अंत में लिखा है- लेखक स्वयं कविराज : (?)

(७) **युगल रस माधुरी** विचित्र पुस्तक है । इसमें प्राकृतिक छटा-वर्णन तथा रास लीला का सुन्दर व अनूठा चित्रण है । काव्य की दृष्टि से उत्तम कोटि की रचना है। बहराइच के श्री माधवदास द्वारा १६७२ वि० में प्रकाशित भी हो चुकी है। १६ पृष्ठ की इस पुस्तक का मुद्रण बालार्क मुद्रणालय द्वारा हुआ । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) अरुन नील सित पीत कमल कुल फले कूलनि ।
जनु बन पहिरे रंग रंग के सुरंग दुकूलनि ।।

इन्दीवर कल्हार कोक नद पद्मनि ओभा ।
मनु जमुना करि द्रग अनेक निरखति बन सोभा ।।६।।

तिन मधि झरत पराग प्रभा लखि दृष्टि नहारति ।
निज घर की निधि रमा रीझि जनु बन पर बारति ।।१०।।

सरस सुगंध पराग छके मधु मधुप गुंजारत ।
मनु सुषमा लषि रीझि परस्पर सुजस उचारत ।।११।।

पुलित पवित्र विचित्र चित्र चित्रित जहां अवनी ।
रचित कनक मनि खचित लसत अति कोमल कमनी ।।१२।।

सुघर घाट बहुरंग छबीली छतरी सोहैं ।
कुसुम भार झुकि लता परसि जल मन को मोहें ।।१३।।

जल में छांही झलमलाति प्रतिविम्बित सरसें ।
जल के भ्रमर तरंग रंग रंजित के दरसें ।।१४।।

तट पे ताल तमाल-साल गहवर गरु छाये ।
सभा काज ऋतु-राज बितान यनहु तनवाये ।।१५।।

(ब) दोउ तन दर्पण अंग अंग प्रतिबिम्बित सरसें ।
दुगुन तिगुन चौगुन अनेक गुन भूषन दरसें ।।

अंग संग विहरतु कुंज विहारति कुंज विहारी ।
दामिनि घन रति काम कनक मनि छबि पर वारी ।।

जावक रंग सुरंग अरुण, महमृद पिय पग तल ।
प्रिय हिय को अनुराग लग्यो, जनु प्रणवत पल पल ।।

(स) ऊखि पियूष मयूष आदि जग जिती मिठाई ।
ते सब नीरस यहै मधुर-रस सरस निकाई ।।
स्वर्ग सुधारस पिये छीन तप मुव पर परई ।
प्रेम सुधानिधि महामधुर कोइ पार न पाहे ।
अलप मीन मन मोर ताहि की हे विधि अवगाहे ।
जलधर धार अनेक एक चातक किमि पीवे ।
कह जलवन मुख परे सु ले सुख पावै नीवे ।

(८) **लछमनि चंद्रिका**—यह एक लक्षण ग्रन्थ है। इसकी चर्चा ना०प्र० की खोज रिपोर्ट में भी नहीं आती। विनोदकारों ने भी इसका उल्लेख नहीं किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि छोटा ग्रन्थ गोविंदानंदघन की सूचनिका है। गोविंदानंदघन उदाहरणों के कारण बहुत बड़ा हो गया है । संक्षेप में उन बातों का उल्लेख करने के लिए 'चन्द्रिका' का आयोजन किया गया। इस कल्पना की पुष्टि में कवि स्वयं कहता हं -

रसिक गुविन्दानन्दघन रच्यौ ग्रन्थ श्रीधाम।
ताकी लछिमन चन्द्रिका 'सूचनिका' अभिराम ।।

इससे ग्रन्थ का नाम 'रसिक गुविंदानद घन' भी लिया जा सकता हं। अन्यथा रसिक शब्द यहां निरर्थक है। 'रसिक' शब्द को कवि के लिए प्रयुक्त अवश्य कहा जा सकता है। 'लछिमन चन्द्रिका' निश्चित रूप से सूचनिका है। यह ग्रन्थ क्यों लिखा गया इसका कारण भी दिया हुआ है—

कान्यकुब्ज जगनाथ सुत **लछिमन** लछिमन रूप ।
ता हित 'लछिमन चन्द्रिका' रची गुविंद अनूप ।।

कान्यकुब्ज ब्राह्मणोत्पन्न जगन्नाथ के पुत्र 'लछिमन' के हितार्थ स्वयं कवि ने इस चन्द्रिका का निर्माण किया। ये लछिमन कौन है इसका पता केवल जाति और पिता के रूप में ही लगता है। आश्रयदाता होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि गोविंद दरबारी कवि नहीं थे, राधा-माधव के परम भक्त थे। संभवत: वृन्दावन में भगवद्भक्ति करते कोई जगन्नाथ जी रहे होंगे उनके पुत्र को काव्यशास्त्र का ज्ञान कराने हेतु इस चन्द्रिका की रचना हुई हो।

नीचे कुछ और सूचना मिल रही है—

काशी मांहि सुभाइ तेहि पुनि वृंदावन आय।
रामचंद्र के व्याह में लिखि तेहि दई पठाय ॥

लिषित श्री वृंदावने। लेखक: स्वयं कविराज। मिती ज्येष्ठ शुक्ल १ भोम सं॰ १८८६। 'गोविंदानंदघन' के २८ वर्ष पश्चात् यह सूचनिका लिखी गई। इसका प्रचार निश्चय रूप से बहुत बढ़ गया होगा। कवि काशी गए, परिचय हुआ, वहां से वृन्दावन लौटे और किन्हीं रामचन्द्र के विवाह-अवसर पर लछिमन के हितार्थ लिखकर यह सूचनिका भेज दी गई। ऐसा विदित होता है कि कवि ने काफी अवस्था पाई क्योंकि गुविंदानंदघन भी एक प्रौढ़ रचना है। यह वि.सं. १८५८ में लिखी गई, सूचनिका वि. सं. १८८६ में और रसिगोविंद वि.सं.१८९० में। यदि 'घन' लिखने के समय कवि ५० वर्ष के भी थे तक ८२ वर्ष तक उनका जीवित रहना तो सिद्ध ही होता है।

(६) **गोविंदानंद घन**— इनका प्रधान ग्रन्थ है। इसकी रचना १८५८ वि॰ में हुई। इस की पत्र संख्या काफी है और बहुत-सी ह॰लि॰ प्रतियां पाई जाती हैं। इस पुस्तक में चार प्रबंध है—

(१) रस वर्णन (रस, भाव, विभाव, अनुभाव, सात्विक) प्रथम ग्रंथ २८५ छंद।
(२) नायक नायिका भेद (द्वितीय अनुबंध) २४८ छंद।
(३) काव्य दोष विचार (दूषण उल्लास निरूपण) तृतीय अनुबंध ३५ छंद।
(४) गुण-अलंकार (चतुर्थ अनुबंध) ८७८ छंद।

1. यह कृति श्रीजी के मन्दिर वृन्दावन में विद्यमान है। इसमें और भी कई कृतियां शामिल हैं।

इस ग्रन्थ में उदाहरण-रूप स्वरचित छंद ही नहीं अन्य कवियों के छंद भी दिए गए हैं। मीमांसा को अधिक स्पष्ट करने के लिए गद्य का भी उपयोग किया गया है। कहीं कहीं तो प्रश्नोत्तर के रूप में विवेचन बहुत ही साफ हो जाता है। विषय-प्रतिपादन में अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों का उल्लेख किया है। 'रस-निरूपण' प्रकरण का एक प्रसंग देखिए—

अन्य रस निरूपणं

अन्य ज्ञान रहित जो आनंद, सो रस।

प्रश्न-अन्य ज्ञान रहित आनंद तौ निद्रा हू है।
उत्तर-निद्रा जड़ है यह चैतन्य है।

भरत आचारज सूत्रकार को मत—

विभाव, अनुभाव, संचारी भाव के संजोगं तें प्रकट होय, सो रस।

मिलाइए—'विबावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'

अथ काव्यप्रकास को मत

कारण कारज सहायक है जे लोक में इन ही को नाट्य में, काव्य में विभाव, अनुभाव संचारी भाव संज्ञा है। इनके संयोग तें प्रकट होय जो स्थायी भाव, सो रस।

अथ साहित्य दर्पण को मत—

सोरठा— सत्व विशुद्ध अभंग, स्वप्रकास आनंदचित।
अन्य ज्ञान नहिं संग, ब्रह्मास्वाद सहोदरसु॥

मिलाइए - सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदरः।

साहित्य दर्पण—तृ०परि०२

अथ अभिनवगुप्त पादाचार्ज को तत्व लक्षण—

रसिकनि के चित्त में प्रमुदादि कारण रूप करि कैं ।। वासना-रूप करि कैं स्थिति ।। नाट्य के काव्य कैं विषैं विभाव, अनुभाव, संचारीभाव साधारणता करि कैं प्रसिद्ध ।

अलौकिक ।। जैसे निकरि कैं प्रगट कीनौं हुवौ ।। मेरे शत्रु के उदासीन के मेरे नहीं शत्रु के नहीं उदासीन के नहीं ।। या ही तैं साधारण ।। जहां स्वीकार परिहार नहीं तो साधारण ।। साधारण उपाय बलि करि कैं ततछिन उतपत्ति भयौ । आनन्द स्वरूप । विषयोत्तर रहित । स्व प्रकास अपमित जो भाव । स्व स्वरूप की सी नांही । न्यारौ नहीं तौ हू जीव ने विषय कीनौ हुवौ । विभावादिक की स्थिति जा को जीवित आनंद वृत्ति जाके प्राण । प्रयान कर सा·याय करि कैं अनुभव कीने हुवौ अगारीं फुरत सौ । हृदय में धरत सौ । अंगिनी को आलिंगति सो । और ज्ञान को छिपावत सौ । परब्रह्म अस्वाद को तजावत सो । अलौकिक चमत्कार करे जो इत्यादि स्थायीभाव, सो रस ।।

सो नव विधि —

प्रश्न— सांति कछु कैसे ।
उत्तर—सांति काव्य में कहियत नाट्य में नाहीं, याते ।

स्पष्ट होता है कि कवि ने ऊपर लिखी सभी काव्य-शास्त्र की पुस्तकों का गंभीर अध्ययन, मनन और अनुशीलन किया था । भरत, मम्मट, विश्वनाथ, अभिनव गुप्त आदि चोटी के आचार्यों के विचार देते हुए रस का निरूपण किया गया है । ये पुस्तकें सर्वदा से साहित्य-क्षेत्र में प्रामाणिक मानी जाती रही हैं । स्थल-स्थल पर कठिन प्रश्नोत्तरों के रूप में भी समझा गया है । काव्य-शास्त्र का ज्ञान कराने के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है ।

सुनी सुनाई बातों के अतिरिक्त इन्होंने अपनी बुद्धि का भी सफल प्रयोग किया है । कहीं कहीं मत प्रतिपादन हेतु विचित्र उक्तियां भी दी है । शृंगार के रस राजकत्व का प्रतिपादन ग्रन्थकार इन शब्दों में करता है—

शृंगार रस लक्षणं—

"शृंग 'कहिये' मुख्यता" और 'कहिए' 'प्राप्ति' मुख्यता प्राप्ति जाहि सब रसादिकनि में होइ—सो शृंगार ।

सो दुविध - संयोग, बियोग —इसी प्रकार से

अन्य संजोग लक्षणं—

बिलासी जाई अवलंव्य करिकें परसपर सेवन कौं, सो संजोग। नाइका नायक परसपर आलंबन। चन्द्रचंदन कुहू सब्दादि उद्दीपन। भ्रू विक्षेप कटाक्षादि अनुभाव। आलस, चिंता, लज्जा, निद्रा, उत्कंठा हर्षादिक संचारी भाव। रति स्थायी भाव। स्याम वर्ण। श्री कृष्णदेवता।

सवैया—

सरवीन के आछे अलापन तें उह कुंज में क्यों हू गई सुष दैंन।
विलोक पिया रसिया को नई दुलही सु गई भय चक्रत नैंन॥
लष्पो पुनि त्यौं अपने तन कों अति गाढै गुविंद रह्यौ रस तैंन।
विलजाती हे केतवे रस कूजित कूजन को लगी कोमल दैंन॥

इहां नायका विषायालंबन, कुंज उद्दीपन—रति कूजित अनुभाव-लज्जा त्रास संचारी भाव —रति —स्थायीभाव।

इनके अतिरिक्त कवि ने आनन्दघन, आलम, देव, कान्ह, कालिदास, काशीराम, दलपति, कृष्ण लाल, केशव, गिरिधर, गंग, चन्द्र, तुलसी, देवीदास, नरोत्तम, ध्रुवराम, नागरीदास, नाथ, निवाज, नन्ददास, प्रह्लाद, ब्रह्म, भूधर, मतिराम, मुकुन्द, मोतीराम, रसखान, लाल, वृंद, बेनीजू, श्रीपति, सूर, सेनापति, सोमनाथ, सोभनाथ, हरिराम, घनस्याम, 'कवित्त कोई कौं' आदि के उदाहरण देकर अपने भाव को स्पष्ट किया है। यह ग्रंथ वास्तव में विलक्षण है क्योंकि इतना सुन्दर और विद्वत्तापूर्ण समाधान तथा तुलनात्मक विश्लेषण जिसमें संस्कृत कवियों का आचार्यत्व और हिंदी कवियों का कवित्व एक ही स्थान पर मिश्रित हो, अन्यत्र मिलना असंभव है। तभी तो कवि ने कहा है इस ग्रन्थ का अधिकारी वही है जो—

कोक, काव्य, भाषा, मिथुन, कवि, पंडित जो होय।
जिज्ञास, हरिजन, रसिक, अधिकारी है सोइ॥

यह पुस्तक इस बात को सर्वथा प्रमाणित कर देती है कि गोविंद कवि प्रथम कोटि के आचार्य थे। इस पुस्तक में विस्तार काव्य वर्णन की स्पष्टता, काव्य-शास्त्र परिचय, काव्य के विभिन्न अंगों की विवेचनात्मक प्रणाली, मौलिकता आदि इनके आचार्यत्व की घोषणा कर रहे हैं।इनमें छिछोरापन या उस समय की सामान्य प्रवृत्ति का आभास नहीं मिलता विवेचन में स्पष्टवादिता इनका प्रमुख गुण है। दोनों का उदाहरण देते समय प्राचीन तथा प्रसिद्ध कवियों के काव्य में भी दोष बताये हैं। इनकी रचना केवल शृंगार के लिये ही नहीं होती वरन् उसके दो उद्देश्य देखे जाते हैं—

(१) राधा-कृष्ण के शृंगार द्वारा इनके सम्प्रदाय से संबंधित साहित्य की रचना जिसमें माधुर्य की प्रधानता है।

(२) रस के प्रसंग में उपयुक्त उदाहरणों द्वारा शृंगार के विषय-प्रतिपादन।

इनके निरूपण का आधार प्रचीन संस्कृत-ग्रन्थ हैं और ये मम्मट से अधिक प्रभावित दिखाई देते हैं। उदाहरण के रूप में अनेक संस्कृत के श्लोक के सुन्दर हिंदी अनुवाद भी किए हैं। विश्वनाथ के श्लोक का एक अनुवाद देखें।

मूल श्लोक लताकुञ्जं गुञ्जन् मद्वलितपुञ्जं चपलयन्।
समालिंगन्नगं द्रुततरमनंगं प्रवलयन्।
मरुन्मन्दं मंदं दलितमरविंदं तरलयन्।
रजो वृन्दं विन्दन् किरति मकरंदं दिशि दिशि ॥

सोमनाथ का भाषानुवाद –

करि कुंज लतानि की गुंजित मनु अमीन के पुंज नचावत है।
अंग अंग अलिंगी, उतंग अतंग गुविन्द की सो सरसावतु है॥
विकसे वन कंजनि सौ मिलिके रज रंजित है चलि आवतु है।
यह मन्द समीर चहूं दिसि वृन्द सुगन्धिनि के वरसावतु है॥

इनकी भावुकता सर्वत्र प्रकाशित है। इनका संप्रदाय ही ऐसा है जिसमें भावुकता को सर्वोपरि स्थान है।

इस प्रकार कवि का व्यक्तित्व बहुत ही महत्वपूर्ण है। ये जहां उच्च-कोटि के भक्त हैं वहां उत्तम कोटि के कवि भी और काव्य-क्षेत्र में आचार्यत्व तथा कवित्व दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। विविध भाषाओं के ज्ञाता ये कवि अपने काव्य द्वारा उच्च स्थान के अधिकारी हैं। यह खेद का विषय है कि इनका पठन पाठन अभी नहीं हो पाया। शुद्ध काव्य की दृष्टि से 'युगल रस माधुरी' बहुत ही सुन्दर कृति है जिसमें बाह्य और मानवी प्रकृति के सुन्दर चित्रण से युक्त कवि की भक्तिभाव विभूषित भाव-प्रवणता भी है। पढ़ने उपरान्त तथा पढ़ते समय भी ऐसा विदित होने लगता है जैसे चारों ओर नव जीवन संचरित करने वाले अमृत की वृष्टि हो रही हो-इतनी गति, लय, संगीत और माधुर्ययुक्त कृति है यह। काव्य-शास्त्र की दृष्टि से पिंगल छंद, 'रसिक गोविंद' गोविंदानन्दघन, ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें कोई भी विषय छूटने नहीं पाया। छंद, अलंकार, नायक नायिका भेद, गुण, दोष, सभी कुछ का विस्तृत विवेचन है। प्रमुखतः परमभक्त थे, किन्तु आचार्यत्व की दृष्टि से ये उससे भी बढ़कर हैं। इतने उच्च कोटि के भक्त होते हुए इनकी यह 'रीति ग्रन्थ माला' इनके गम्भीर अध्ययन और अनूठी सूक्ष्म बुद्धि का प्रमाण है। विविध भाषाओं का दर्शन इनकी 'अष्ट देश भाषा' में होता है। किसी ग्रन्थ को संकलित रूप देने में कवि कितना प्रवीण हो सकता ? इसका उदाहरण 'लछिमन चन्द्रिका' है साथ ही इनकी व्यवहार कुशलता की ओर भी उनके संकेत मिलते हैं। कवि कलियुग के प्रभाव को अच्छी तरह समझता है, उनकी दृष्टि सूक्ष्म है और अनुभव गहरा तथा विस्तृत है। कलियुग का चित्र जो इनके द्वारा खींचा गया है वह बहुत ही विस्तृत तथा विचारपूर्ण है, कलियुग के प्रभाव से समाज क्या से क्या बन गया इसकी अच्छी झांकी इनके 'कलियुग रासो' में मिलती है – साथ ही कलियुग ने जो भयंकर परिस्थिति खड़ी कर दी है उसकी व्यजना 'रासो' शब्द में है। संकेत किया है—

हम कह सकते हैं कि इनके ग्रन्थों में कवि-हृदय ने हमें विद्वत्ता, भावुकता और काव्य-मर्मज्ञता की त्रिवेणी प्रवाहित होती प्रतीत होती है। अपने ग्रन्थों में —

(अ) नायक नायका का आधार साहित्य दर्पण और रसमंजरी है।

(ब) **दोष**-काव्य प्रकाश पर आधारित हैं।

(स) **गुण**-काव्य प्रकाश और साहित्य दर्पण पर।

(द) **अलंकार**-चन्द्रालोक और कुवलयानंद के आधार पर।

कहीं कहीं भाव को उसी रूप में ही ग्रहण कर लिया गया है, परन्तु स्पष्टता की ओर सदा ही ध्यान रखा है।

अंतःसाक्ष्य के आधार पर जीवन संबंधी प्रसंग—

(१) पिता गोत्र—

सालिग्राम सुत जाति नटानी, बाल मुकंद कौ भैया ।
जैपुर जनम जुगल पद सेवी, नित्य विहार गवैया ।

(२) गुरु-भक्ति स्थान—

श्री हरिव्यास प्रसाद पायभौ वृन्दाविपिन बसैया

(३) परिवार—

बेटा वालमुकुंद को, श्री नारायण नाम ।
रच्यौ तासु हित ग्रन्थ यह........ ... गोविंदानंदघन ।

(४) ग्रन्थ-रचना-काल—

(१) रसिक गोविंद, गोविंदानंदघन के पीछे दिये हुए है ।
१८६०,१८५८

(२) लछिमन चंद्रिका कवि के लेख द्वारा—१८८६

(५) लछिमन चन्द्रिका से—

जैपुर जन्म, माता गुमाना, बेटा सालिगराम जी नाटाणी का ।
मोतीरामजी का भतीजा । भाई छोटा वालमुकुन्दजी का ।

(६) रसिकगोविंद—

मातु गुमाना गुविंद के पिताजु सालिग्राम ।

(७) गुरु-सम्प्रदाय—

(१) श्री सर्वेसर सरन गुरु वसि वृन्दावनधाम ।

(2) अन्य–जै जै जै श्री राधिका सर्वेश्वर श्री हंस ।
सनकादिक नारद सद निम्बादित्य असंस ।।

(3) श्री सरवेस्वर सरणदेवजी महाराज को शिष्य परम कृपापात्र
वैष्णव रसिक गोविन्द ।

(8) पितु ह्वै प्रतिपाल्यो प्रकट प्रभु ह्वै दिय निज धाम ।
गुरु है अभय कियो सदा जय श्री **सालिगराम** ।।
रामकृष्ण सुत ज्येष्ठ पितु **मोतीराम** अभिराम ।
दाधक्षर दुख हर प्रखर सरलगुविंतर धाम ।।

(9) **गोविंदानंदघन नाम का कारण**
इनके मित्र आनन्दघन नाम के एक चौबे थे ।
रसिक गोविन्द को मित्र आनन्दघन चौबे यातें ग्रन्थ कौ नाम
रसिक गोविन्दानन्दघन धर्यौ ।।

(10) नाम (अ) सुकवि गुविंद (ब) मित्र गुविंद को चित्त चुरावै
(स) वारी वैस वारी उजियारो श्री गोविंद कहै

इस सम्बन्ध में मेरी बातें श्रीजी की कुंज वृन्दावन में प्रतिष्ठित निम्बार्क सम्प्रदाय के मन्दिर–अधिकारी श्री वल्लभशरण जी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ से विस्तार के साथ हुई । वे भी इस बात का निर्णय करने में अभी तक असमर्थ हैं कि कवि का नाम 'गुविंद' था या 'रसिक गुविंद', किन्तु निश्चित रूप से उनका कहना है कि निम्बार्कों की गुरु परम्परा में गुरु-सर्वेश्वर-शरण श्री महाराज से पहले 'गोविंद शरण' जी थे और किसी भी शिष्य विशेष का नाम गुरु के नाम पर हो यह सामान्यतः उचित नहीं समझा जाता अतः कवि के पहले 'रसिक' लगाना सार्थक रहा । इस विशेषण के लगने से उनके नाम में परिवर्तन की सम्भावना ठीक नहीं । वे सर्वेश्वर सम्प्रदाय के थे, काव्य रस का आस्वादन करने वाले थें, गुरु के चरणारविंद में भ्रमर बनकर रस लेते थे, राधाकृष्ण-लीला और युगल सरकार के रस में निमग्न रहते थे अतः उनके नाम के पहले'रसिक'शब्द का प्रयोग होना सार्थक प्रतीत होता है । इतना ही नहीं अनेक स्थानों पर 'अलि रसिक गोविंद' का प्रयोग भी मिलता है । 'अलि' के साथ 'रसिक' का प्रयोग भी युक्तियुक्त प्रतीत होता है । गुरु-चरणारविंद के 'रसिक' 'अलि'–युगलमाधुरी के पराग का 'रसिक' अवगाहक 'अलि' भक्त प्रवर गोविंद इन दोनों विशेषणों के सर्वथा योग्य हैं, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं होता कि उनका नाम ही 'रसिक गोविंद' हो जाय । बहुत सम्भव है अपने सम्प्रदाय में भी उनका यही नाम चलता हो क्योंकि केवल 'गोविंद' नाम लेना आचार्गवर के प्रति अनादर की भावना थी ।

अतः मैं इसे इस प्रकार मानता हूं कि उनका नाम 'गोविन्द' था और 'रसिक' उनके नाम से संबंधित विशेषण था।

सलेमाबाद-किशनगढ़ स्थित निम्बार्काचार्य पीठाधिपति के मतानुसार गोविंद नाम के एक प्रसिद्ध भक्तकवि इस सम्प्रदाय में हुए हैं और उनके पदों के कुछ संग्रह संभवतः उनके पास भी हैं। जोधपुर में जो निम्बार्कों का मंदिर है उनके पुजारी जी के पास भी गोविंद कवि द्वारा लिखित कुछ 'पद' थे जो खुले हुए पन्नों पर लिखे गए थे और कुछ समय पूर्व ये हस्तलिखित पुस्तक भी वृन्दावन के अधिकारी जी अपने संग्रहालय के लिए ले गए। जब में वृन्दावन पहुंचा तो मुझे वेदान्ताचार्य जी ने स्वयं कवि के लिखे हुए दो हस्तलिखित ग्रथ दिखाये, एक यह जो खुले पत्रों के रूप में है और दूसरा एक अन्य ग्रंथ जो सिली हुई पुस्तक के रूप में है। इस पुस्तक का आरम्भ 'नित्य उत्सव' के पदों से होता है। इसमें कई अवसरों पर प्रयुक्त पद हैं और पुस्तक के अन्त में 'कलियुग रासा' के भी कुछ प्रसंग देखे। वृन्दावन के अन्य लोगों के अधिकार में कवि के ग्रंथ संबंधी वार्ता पर श्री वेदान्ताचार्य जी ने कहा कि उन्होंने बहुत कुछ प्रयास इस दिशा में किया है, किन्तु कोई पुस्तकें नहीं मिल सकीं। वृन्दावन के एक हलवाई परिवार से भी उन्होंने काफी चेष्टा कर ली। गोविन्द कवि के छोटे छोटे ग्रन्थ तो अनेक मिले हैं, किन्तु 'गोविन्दायन' जैसी सर्वांगपूर्ण पुस्तक को देखने से विदित होता है कि इनकी कुछ और रचनाएं अवश्य होनी चाहिये। भक्ति संबंधी अनेक छोटी पुस्तकें तो यत्र-तत्र हैं और प्रायः उन स्थानों में मिलती हैं जहां निम्बार्कों के मंदिर हैं, किन्तु अन्य सामग्री के लिए प्रयास आवश्यक है। मुझे बताया गया कि मुनि श्री कान्तिसागर जी के पास संगृहीत 'हरि गुरु सुयश भास्कर' में गोविंद कवि की कुछ कृतियां हैं। किन्तु, उन कृतियों को देखने का अवसर मुझे नहीं मिला।

कवि ने दूसरों के छंदों को भी उदाहरण स्वरूप प्रयुक्त किया है। अपने छंदों में स्पष्ट रूप से अपना नाम 'गुविंद' 'रसिक गुविंद' आदि डाल दिया है ताकि भ्रांति का कोई अवसर न रहे।

इस पुस्तक के संपादन की प्रेरणा राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा मिली और इसका प्रकाशन कार्य वर्त्तमान निदेशक डा० पाठक के सत्प्रयास से हुआ। इसके लिए मैं निदेशक महोदय तथा उनके सहयोगियों का हृदय ने आभारी हूं।

भरतपुर मोतीलाल गुप्त

१-१-८३

गुविन्द कवि कृत

गोविन्दानन्दघन

गोविन्दानन्दघन

।। श्रीगणेशाय नमः ।। श्रीमतेरामानुजाय नमः ।।
अथ श्री गुविंदानंदघन लिष्यते ।।

।। कवित्त ।।

ललित सिँगार परिहास बिनै दूती मुष ।
बिरह निबेदन मैं करुणा कौ साज है ।।
रूठिवे मैं रौद्र सुरतोत्सव मैं वीर कंपभै ।
विभत्स नषरदछत कौ समाज है ।।
अद्भुत उलटि सिंगार सांति प्यारी के ।
मनाये बिन पीकौं न सुहाय कछू काज है ।।
दंपति बिहार सदा वंदन गुविंद ।
जाहि सेवत सरस रसराज महाराज है ।। १ ।।

।। छप्पै ।।

सघन कुंज अलि गुंज पवन तहँ त्रिबिधि सुहाई ।।
रतन जटत अवनी अनूप जमुना वहि आई ।।
छ रितु कोक संगीत राग रागिनि सषि रति पति ।।
सब सुष साज समाज सहित सेवत अति नित प्रति ।।
श्रृंगार प्रेम रस सरस पुनि काल कर्म गुन कछु न डर ।।
दंपति बिहार गोबिंद जय जय श्री बृंदा बिपिन वर ।। २ ।।

कथ कवि बंस बर्ननं

॥ छन्द ॥

रसिक भक्त लेषक गुबिंद कवि कोक काव्य बिलसैया ॥
सालिग्राम सुत जाति नटानी बालमुकंद कौ भैया ॥
जैपुर जनम जुगल पद सेवी नित्य बिहार गवैया ॥
श्री हरिव्यास प्रसाद पाय भौ बृंदा बिपिन बसैया ॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥

बेटा बालमुकंद कौ, श्री नारायण नाम ।
रच्यौ तासु हित गृंथ यह, रसिक गुबिंद अभिराम ॥ ४ ॥

बसु सर बसु ससि अब्द, ॥ १८५८ ॥ रबि दिन पंचमी बसंत ।
रच्यौ गुबिंदानंदघन बृंदावन रसवंत ॥ ५ ॥

यहै गुबिंदानंदघन, नाम धरचौ इहि हेत ।
कहत सुनत सीषत लिषत, सब बिधि आनंद देत ॥ ६ ॥

श्री गुबिंद आनंद घन, सरस प्रीति परतीति ॥
नाम गुबिंदानंदघन, धरचौ मीत इहि रीति ॥ ७ ॥

सुकबि गुबिंदादिक निकृत यह आनंद समूह ।
यातें नाम आनंदघन, धर्‌यौ रहित प्रत्यूह ॥ ८ ॥

निधि अगाध साहित्य मधि, नव बिधि रस छबि देत ।
भरत गुबिंदानंदघन, बरषत रसिकनि षेत ॥ ९ ॥

रसिक रस बिसेसज्ञ, अथ रस निरूपणं

अन्य ज्ञान रहित जो आनंद सो रस ।

प्रश्न : अन्य ज्ञान रहित आनंद तौ निद्राहू है ।

उत्तर : निद्रा जड़ है, यह चैतन्य है ।

भरत आचारज सूत्रकार कौ मत

नुविभाव, अभाव, संचारीभाव के संजोग तैं प्रगट होय सौ रस

अथ काव्य प्रकास कौ मत

कारण कारज सहायक हैं जे लोक मैं इनहीं कौ नाट्य मैं, काव्य मैं, विभाव, अनुभाव, संचारीभाव संज्ञा है । इनके संजोग तैं प्रगट होइ जो स्थायी भाव सो रस ॥

अथ साहित्यदर्पण कौ मत

॥ सौरठा ॥

सत्व विशुद्ध अभंग, स्वप्रकास आनंद चिद ।
अन्य ज्ञान नहि संग, ब्रह्मा स्वाद सहोदर सु ॥ १० ॥

अथ अभिनव गुप्त पादाचार्ज कौ तत्व लक्षण

रसिकनि के चित मैं प्रमुदादि कारण रूप करिकैं बासना रूप करिकैं स्थिति ॥ नाट्य के काव्य के विषैं विभाव, अनुभाव, संचारीभाव साधारणता करिकैं प्रसिद्ध ॥ आलौकिक ॥ असे निकरि कैं प्रगट कीनौं हुवौ ॥ मेरे शत्रु के, उदासीन के, मेरे नहीं ॥ सत्रु के नहीं, उदासीन के नहीं, याही तैं साधारण ॥ जहाँ स्वीकार-परिहार नहीं सो साधारण ॥ साधारण उपाय बल करिकैं ततछिन उपपत्ति भयौ आनंद स्वरूप ॥ विषयांतर रहित ॥ स्व प्रकास अपर्मित जो भाव ॥ स्व स्वरूप की सी नांही ॥ न्यारौ नहीं तौ हू जीवनैं विषय कीनौ हुवौ ॥ बिभावादिक की स्थिति जाको जीवित आनंद वृत्ति जाके प्राण ॥ प्रपान कर सा न्याय करिकैं अनुभव कीनौं हुवौ अगारी फुरत सौ ॥ हृदय मैं धरत सौ ॥ अंगनि कों आलिंगिति सौ ॥ और ज्ञान कौ छिपावत सौ ॥ परब्रह्म आस्वाद कौ जतावत सौ ॥ अलौकिक चमत्कार करै जो रत्यादि स्थाई भाव सो रस ॥

सो नव विधि :

(१) शृंगार (२) हास्य (३) करुणा (४) रौद्र (५) वीर
(६) भयानक (७) वीभत्स (८) अद्भुत (९) कछु सांति ।

प्रश्न : सांति कछु कैसें ।
उत्तर : सांति काव्य में कहियत है नाट्य मैं नहीं, यातैं ॥

अथ शृंगार लक्षणं

शृंग कहिये मुष्यता आर (और) कहियै प्राप्ति मुष्यता, प्राप्ति जाहि सब रसादिकनि मैं होई सो शृंगार ।

सो दुविधे :

(१) संयोग (२) बियोग ।

अथ संजोग लक्षण

बिलासी जाहि अवलंव्य करिकै परसपर सेवन करैं सो संयोग । नाइका नाइक परसपर आलंवन । चंद्र चंदन कुहू सब्दादि उद्दीपन भ्रू विक्षेप कटाक्षादि अनुभाव । आलस, चिंता, लज्जा, निद्रा, उत्कंठा, हर्षादिक संचारीभाव । रति स्थायीभाव । स्यामवर्ण ।। श्रीकृष्ण देवता ।।

।। सवैया ।।

सषीनिके आछे अलापन तैं उह, कुंज मैं क्यौं हूं गई सुख दैंन ।।
विलोकि पिया रसिया कौं नई, दुलहि सुभई भयचक्रत नैंन ।।
लष्यौ पुनि त्यौं अपने तन को, अति गाढैं गुंविद गह्यौ रस लैंन ।।
बिलज्जित ह्वै कैं तवै रति कूजित, कूजन कौं लगी कोमल बैंन ।। ११ ।।

इहां नाइका विषयालंवन ।। नायक आश्रयालंवन ।। कुंज उदीपन रति कूजित अनुभाव ।। लज्जा, त्रास, संचारीभाव, रति स्थायीभाव ।। पुनः

।। सवैया ।।

प्रेम प्रजंक पै पौढी अनंद सौं, आवत जाने गुंबिद बिहारी ।।
चाहै भुजा भरि अंक भरयौ सकुचै, पुनि लाज के साज तैं प्यारी ।।
प्यारे की और कटाछिनि सौं लषि, दीप निदाइ करी अंधियारी ।।
चुंवन कैं परिरंभन कैं रति, केलिकला वहुतै बिसतारी ।। १२ ।।

इहां नाइक विषयालंबन ।। नाइका आश्रयालंबन ।। दीप निदाइवौ उद्दीपन ।। कटाक्ष चुंबन परिरंभन अनुभाव ।। उत्कंठा, लज्जा, हर्ष संचारीभाव ।। रति स्थायीभाव ।। पुनः

।। सवैया ।।

नायक कै संग सोई हुती उठि वंजुल कुंजनि भृत्य निहारी ।।
सोये पिया गनि चुंबन कौं मुष कैं ढिग मुष्य कियौ सुषकारी ।।
एते मैं गोंबिद जागि उठे तन देखि रुमांचित आंषैं लजारी ।।
लीनी भुजा भरि कंठ लगाइ करी रति प्रीति सौं प्रीतम प्यारी ।। १३ ।।

इहां नायक विषयालंबन ॥ नाइका आश्रयालंबन ॥ निभृत्य कुंज उद्दीपन ॥ मुष के ढिग मुष्य करिवौ तन मैं रोमांच ए अनुभाव ॥ लज्जा, उत्कंठा, हर्ष संचारीभाव, रति स्थाईभाव ॥ पुन:

॥ सवैया ॥

प्यारे पिया सुरतोत्सव काज, प्रवीन परौसिन हाथ बुलाई ॥
छाड्यौ कछु छलकै निज नाह, गुबिंद पैं चंद मुषी चलि आई ॥
कोमल हास बिलोचन भौंह, निवंक बिलासनि की सरसाई ॥
मंजुल वंजुल कुंज मैं जाइ रच्यौ, रति कौतुक संग कन्हाई ॥ १४ ॥

इहां नायक विपयालंवन ॥ नायका आश्रयालंबन कुंज उद्दीपन ॥ कोमल हास भ्रू बिलासादि अनुभाव ॥ लज्जा, हर्ष, संचारीभाव ॥ रति स्थायीभाव ॥

केसव

॥ सवैया ॥

केसव एक समैं हरि राधिका, आसन एक समैं रस भीनैं ।
आनद सौं तिय आन[न] की दुति, देषत दर्पन त्यौं द्रग दीनैं ।
लाभ के लाल मैं बाल बिलोकित हीं, भरि लालनैं लोचन लीनैं ।
सासन पीय सवासन सीय, हुतासन मैं जनु आसन कीनैं ॥ १५ ॥

इहां नाइका विषयालंबन, नायक आश्रयालंवन, एकासन उद्दीपन, दर्पन देषिवौ अनुभाव, उत्कंठा हर्ष संचारी भाव, रति स्थाई भाव ।[1]

अथ संयोग शृंगार की संप्रदाय

अवलोकन, आलिंगन, चुंवन, कुसुम केलि, जल केलि, रवि अस्त समै चंद्रोदय, षटरितु, मारुत छवि इत्यादि । इनके लछन नाम हीं तै जानि लीजें[2] । अवलोकन ।

---

1. अ० प्रति में केशव का यह पूरा छंद (सवैया) तथा इसका विश्लेपण नहीं दिया गया है । 'रति स्थायीभाव' लिखने के उपरान्त संयोग शृंगार के भेद दिये गए हैं जिन्हें जो० प्रति में 'अथ संयोग शृंगार की संप्रदाय' कहा गया है । 'भेद' न कह कर 'संप्रदाय' कहना अधिक उपयुक्त है ।
2. अ०—पूरा वाक्य नहीं है ।

।। लाल कौ कवित्त ।।

बैठे एक आसन[1] पैं अलि काहू छबि छके,
सुन्दरता सागर के सार सरसत हैं ।
पिय मुष चाहि प्यारी प्यारी मुप चाहि पिय,
नैंननि पियूष रस पूर परसतु हैं ।
आज चित चात औ लोचन चकोरनि की,
लाषै अभिलाषैं[2] पुली तौ हू तरसत हैं ।
एक ओर गोरी घटा एक ओर स्यांम घन,
एकै संग ऊंनि ऊंनि रंग बरसत हैं ।। १६ ।।

कासीराम

देषा देषी भई सकुचि सब छूटि गई,
मिटी कुल कानि केसो(कैसौ) घूंघट कौ करिबौ ।
लगी टकटकी उर उठी धकधकी गति,
थकी मति छकी ऐसौ नेह कौ उघरिबौ ।
चित्र कै-से काढे दोउ ठाढ़े कहि कासीराम,
नांही परवाह लाष लोग करौ लरिबौ ।
बंसी कौ बजैबौ नट नागर बिसरि गयौ,
नागरि बिसरि गई गागरि कौ भरिबौ ।। १७ ।।

आलिंगन

।। लालक[लालकौ] सवैया ।।

एक समैं हरि पौढ़ि रहे, तन ऊपर तानि कैं पीत पिछौरी ।
प्यारी हरैं हरैं आई तहां, मधुरैं मुष चुंबति चोरांई[3] चोरी ।

---

1. अ० 'पलिका'
2. अ०—'लाख अभिलाख'
3. अ० चोरां

देषि कपोलनि मैं पुलकावलि, लाज सु भाजि गई गुन गौरी ।
आनन चंदन वाइ रही सु गही, भरि कैं भुज भामिनि भोरी ।। १८ ।।*

।। सिरोमनि कौ कवित्त ।।

आवैं तो तमासौ एक दुरि कैं दिषांऊं तोहि,
चोरी कौं सयानी जानी भोरी ह्वै सकाति हैं ।
रसिक सिरोमनि रसीले रसमसे दोऊ,
रस मैं मगन मन कैसी घरी जाति है ।
मैं जो कछु कहूंगी तौ कहैगी कहा है कोऊ,
आनि किन देषौ जैसी झूठी सौंहैं षाति है[1] ।
बात के कहे तैं जब भागि भागि जाती[2] अब,
लागि लागि लालन की छाती लपटाति है ।। १९ ।।

किशोर

बैठे हैं किसोर[3] दोऊ घोर घन जोर आयौ,
परत सजोर धरिनी पै धूम करि करि ।
च्वै[4] चले पनारे ओ किनारे तटिनी के परैं,
टूटत बिटप डार सब्द होत तरि तरि ।
मोर सोर चहूं ओर ह्वै रह्यौ कुतूह[ल] भारी,
तर रति दामिनी उठति धर परि परि ।
औसे समैं लालन बिहारी संग भाय भरी,
लपटति लाडिली भुजानि बीच डरि डरि ।। २० ।।

हरिवंस गुसाईजू

अबला अति सुकुमारि डरति, उर बर हिंडोर डकोर(झकोर) ।
पुलकि पुलकि प्रीतम उर लागति, दै नव उरज अकोर ।। २१ ।।[5]

---

1. अ०—'सौंह खाति हैं'
2. अ०—'जातो'
3. अ०—'किशोर'
4. अ०—'च्वै'
5. अ०—हरिवंश गुसाईं जू का यह दोहा नहीं है ।

*सं०टि०—'काव्यप्रकाश' का पद्यानुवाद है ।

अथ चुंवन

।। लाल कौ सवैया ।।

हसि लीनी भुजा भरि चंदमुषी, नद नंद हियैं लपटाइ रही ।
कटि किंकिनि की धुनि तैं रसना, दसनावलि बीच दुराइ रही ।
पिय चूंमैं कपोलनि त्यौं तरुनी पिय कौ, मुष चूंमि लजाइ रही ।
अलि यौं रति दंपति की अवलोकति हौं, बिन मोल बिकाइ रही ।। २२ ।।

अथ कुसुम केलि

।। सेनापति कौ कवित्त ।।

सहज सुधारी राज मंदिर मैं फुलवारी,
भौंर करैं सोर गान कोकिल बिराव के ।
सेनापति सुषद समीर चले मंद मंद,
लसत अमंद श्रम सीकर सुभाव के ।
प्यारौ अनकूल कहै करन करनफूल,
सीसफूल और पांवडेहू मृदु पाव के ।
चैत मैं बिभात साथ प्यारी अलसाति लाल,
जात मुस्कात फूल वीनत गुलाब के ।। २३ ।।

कमल बिछाये बर बिमल बितान छाये,
छबि भरे छज्जे दरवज्जे महराव के ।
घने घनसार के सँवारे सपी हौद[1] ता मैं,
छूटत फुहारे भोर केसरि के आब के ।
सीतल सुगंध सेज सुमन सिंगार अंग,
अंग राग राग रंग सरसहि ताव के ।
चंदन की षौरि बैदी बंदन बनाइ वैठे,
राधिका गुविंद आज मंदिर गुलाब के ।। २४ ।।

---

1. अ० —'हौज'

।। सवैया ।।

फूल वितान तनैं सजनी सुनि, फूलनि फूलि रही फुलवारी ।
फूलनि सेज सिंघासन आसन, फूलनि की पिछवाई सँवारी ।
फूलनि भूषन फूल दुकूलनि फूलीं, गुविंद सषीं लषि वारी ।
फूलनि के वगला(बँगला) मधि आज, विराजत हैं छवि सौ पिय प्यारी ।।२५।।

घनस्यांम

सौंन जुही की गुही पगियाजु, चमेली कौ गुच्छ रह्यौ झुकि न्यारौ ।
द्वै दल फूल कदंव के कुंडल, सेवती कौ झंगा[1] घूंम धुमारौ ।
है तुलसी पटुका घनस्यांम गुलाब, इजार नवेली[2] कौ नारौ ।
फूलनि आज बिचित्र बनाइ कें कैसौ, सिंगारचौ है प्यारी नें प्यारौ ।। २६ ।।

सूरदास मदनमोहनजू

पाछें ललिता आगैं स्यामा प्यारी ता आगैं,
पिय मारग फूल विछावत जात । इत्यादि ।। २७ ।।

अथ जल केलि

।। लाल कौ सवैया ।।

करि कें रजंत्रनि मेलत हैं, जल चंचल चारु द्रगंचल मैं ।
ललना कछु देषति ताहि, तबै भुज कौं भरि भेटत है पल मैं ।
रिस देषि तियानि की बूडक लै, पद पंकज आनि छुवै छल मैं ।
नदलाल सबै ब्रज-बालनि मैं, जल-केलि करै जमूना जल मैं ।। २८ ।।

।। काहू कौ सवैया ।।

आपस मैं हरि राधिकाजू, जल क्रीडत हैं रस रंग वढ़ांये ।
नीर सौं चीर गए लगि कैं तन, दूनी बढ़ी छबि आज के न्हायें ।

---

1. अ०—'झगा'
2. अ०—'नवेले'

नील दर्याई* की कंचुकी मैं, कुच की उपमां कबि देत बतायैं ।
बाज के त्रास मनौं चकवा, जलजात के पात मैं गात छिपायैं ।। २९ ।।

केसव

रितु ग्रीषम की प्रति बासर केसव, षेलत हैं जमुना जल मैं ।
इत गोप सुता उत पार गुपाल, बिराजत गोपिनु के दल मैं ।
अति वूडि चलै[1] गति मीननि की, मिलि जांहि उठैं अपने थल मैं ।
इहि भांति मनोरथ पूरि दोऊ जन, दूरि रहैं छबि सौं छल मैं ।। ३० ।।

अथ रबि अस्त समय

।। लाल कौ कबित्त ।।

कैधौं इहि औसर मदन रंगरेज रँगि,
रजनी बिलासिन के वसन सुषाये हैं ।
कैधौं ललना जन मनोरथ कलपलता,
ताही के सुरंग रंग पूल पूलि आये हैं ।
कैधौं तुंग अस्ताचल शृंगनि तैं गैरकादि,
धातु रज़ रबि रथ चक्रनि उठाये हैं ।
कैधौं बिप्र धुनि सुनि फूली सांझ सानुराग,
कैधौं काप(म) के[2] वितान नभ छाये हैं ।। ३१ ।।

।। सुंदर सवैया ।।

सांझ समैं कौं पछांह दिसा तैं, उछाह सौं ऐसी ललाई निहारी ।
बंदन कौं न गुलाल कितौकु, रताई रतौ फलहू की बिसारी ।
तारे तहां ढिग चंद कला कवि, सुंदर सौ छवि ऐसी उचारी ।
मैंन मनौं गढि गोल गिलोलनि, षेल कौं छोलि गिलोल सँवारी ।। ३२ ।।

---

*वस्त्र विशेष- 'दरियाई' का व्रज में काफी प्रयोग रहा है। लोकगीतों में भी 'दरियाई' के वस्त्रों की बात आती है।

1. अ०—'तलै'
2. अ०—'काम भूप के'

अथ चंद्रोदय मुकंद जू

॥ सवैया ॥

पिय देषन कैधौं रमा उझकी, मुष कुंकुम मंडित राजतु[1] है ।
निसि ती (तिय) उर कौं अनुराग, सुहाग छिपा वधूकौ किधौ भ्राजत[2] है ।
किधौं पूरन चंद सुछंद उदोत, मुकुंद सबै सुष साजतु है ।
किधौं प्राची दिसा नव भाल[3] के भाल, गुलाल के[4] विंदु बिराजतु है ॥ ३३ ॥

लाल

मानिनि के उर पैं कुच भूधर दुर्ग महा गढ़ कोट समाजी ।
मान(नैं) अजौं रहि है छतहू हम काम नरेंद्र[5] चमू अति ताजी ।
यौं कहि फूलत कै रवि[6] कोरिक कोसन तैं कठती[7] अलि राजी ।
सोई वर्डा किरवानहि काढत बाढत कोह कला-निधि गाजी ॥ ३४ ॥

विहारी

॥ दोहा ॥

उयौ (उग्यौ) सरद राका ससी, क्यौं न करति चित चेत ।
मनहु मैंन[8] महिपाल[9] कौ, छांहगीर छबि देत ॥ ३५ ॥

अथ षट रितु, प्रथम वसंत

पल्लव अधर अरु सुमन बिकास हास,
झरत पराग बर बारिज बदन मैं ।

---

1. अ० — 'भ्राजत है'
2. अ० — 'राजत है'—'रजनी उर को अनुराग किधौं यह मूरतिवंत ही राजत है'— पूरी पंक्ति में अन्तर है ।
3. अ०—'वाल'
4. अ०—'कौ'; (3, 4 उत्तम पाठ हैं)
5. अ०—'नरिंद'
6. अ०—'कैरव'
7. अ०—'कढ़ती'
8. अ०—'मदन'
9. अ०—'छितिपाल'

भ्रमत भ्रमर नैंन कुच फल पिक वैंन,
स्वासा सुष दैंन जानी त्रिबिधि पवन मैं ।
रूप गुन जोबन सुहाग भाग अनुराग,
नाना मौर मंजरी ए जोबन के बन मैं ।
कीनौ बस कंत श्री गुबिंद बिलसंत[1] आली,
सहज बसंत-सी लसंत तेरे तन मैं ।। ३६ ।।

पल्लव नवल नव सुमन सुवास नव,
नवल पराग श्री गुबिंद दरसंत है ।
नवल समीर नव भौंरनि की भीरि नव,
कोकिलादि की कुलाहल सरसंत है ।
नयौ नेह दंपति सुहाग भाग अनुराग,
राग रंग नवल गुलाल बरसंत है ।
नवल सकल साज नवल सषी समाज,
नवल निकुंज आज नवल बसंत है ।। ३७ ।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

द्रुम डार पलना बिछौंना नव पल्लव के,
कुसुम झगूली ते तौ तन छबि भारी दै ।
पवन झुलावैं भौंर[2] कीर बतरावै पुनि,
कोकिल हरषि हुलरावै कर तारी दै ।
झरत पराग ते उतारयौ करें लौंन राई,
कुंद कली नाइका लतानि सिर सारी दै ।
मदन महीपति कौ बालक बसंत ताहि,
प्रात ही जगावत गुलाब चटकारी दे ।। ३८ ।।

अथ ग्रीष्म

।। लाल कौ कवित्त ।।

भारी तपी भासमान भास जिनि जानौ यह,
फैली चारु चंद्रमा की चांदनी सु गहरी ।

---

1. अ०—'झलसंत बिलसंत'
2. अ०—'केकी'

सीतल सुगंध मंदताई वारि डारियति,
त्यौं त्यौं अति चलति प्रचंड पौन लहरी ।
नगर के नारी नर सोवत कपाट दै दै,
कौंन कहि बूझत षरौई काम कह री ।
चले कित जात घनस्याम सुनौ वात इहि,
देस होति अध-राति जेठ की दुपहरी ।। ३९ ।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

माधुरी की कुंज फूली मालती निकुंज कूल,
कालिंदी के कूल छ्वै समीर सुषकारी है ।
कोमल विमल सेज सीतल परसपर,
परम पटीर घनसार सौं सवारी है ।
हिय के हुलास सौं बिलास विलसत रीझि,
रसिक बिहारीलाल संग प्रान प्यारी है ।
अंग राग भीजी सारी छिरकी सुगंध न्यारी,
हिम रितु करि डारी ग्रीषम निकारी है ।। ४० ।।

।। सौभ ।।

भरयत गहरे गुलाब हद हौदनि सु,
धरियत रजत फुहारे ततबीर के ।
ढरियत ढारनि सुढारनि नहरि नीर,
दरियत घनसार सरद गँभीर के ।
करियत तर अतरनि सौं बिछौंनां कवि,
सोभजू उघरियत बातायन तीर के ।
चंदन पलिंग अरविंदनि की सेज पर,
सुंदरि सिधारी आज मंदिर उसीर के ।। ४१ ।।

।। जयनारायण कौ सवैया ।।

सीतल है षस के बँगला चहु पास सिचाइ दई कदली कौं ।
नीकैं नरायन होत पंषा छुटैं चादरि को कह भांति भली कौं ।
आनद सौं छिरकावत चंदन केसरि सैन बताइ अली कौं ।
फूलनि सेज मैं पोढत लै सँग नंदलला वृषभानु लली कौं ।। ४२ ।।

हौद भरे गहरे जल-जंत्र छुटै सु महा छबि छायैं ।
सारँग राग सुनावैं गुबिंद सषी-जन बीन मृदंग बजायें ।
फूलनि सेज मैं फूल सौं फूल सिंगार कियैं द्रग सौं द्रग लायें ।
कुंज बिराजत मित्र दोउ तन चंदन चित्र बिचित्र बनायें ।। ४३ ।।

चारु फुहारनि धारनि की छबि सीतल मंद सुगंध समीर की ।
फूल दुकूलन चंदन चित्र की केसरि की घनसार गभीर की ।
भाग सुहाग की लागनि की रँग रंग राग की बाग की भौंरनि भीर की ।
रूप उज्यारी पियारी बिहारी बिराजत गोविंद कुंज उसीर की ।। ४४ ।।

।। कवित्त ।।

बिछे हैं बिछौंनां घनसारनि के भलैं भाव,
छिरकाव कीने तर अतर गँभीर के ।
गहरे गुलाब के फुहारे छुटैं ठौर ठौर,
उठत झकोर तामैं त्रिबिधि समीर के ।
सेज अरबिंदन की चंदन की चोली चारु,
श्री गुविंद सुमन सिंगार हैं सरीर के ।
झनक मनक सौं बनक वनि वैठी आज,
राधिका रवन संग भवन उसीर के ।। ४५ ।।

तहषाने षसषानें अतर अनेक साने,
छूटैं चारु चद्दरि फुहारे छबि छाज हीं ।
सीतल पटी है पंक सीतल पटीरनि की,
लपटी हैं भली भांति भौंर भीरि आज हीं ।
सौंधी सेज सुमन सिंगार अंग अंग राग,
राग रंग मधुर मृदंग बीन बाज ही ।
श्री गुबिंद स्यांम संग सुंदरी सुरूप भरी,
साजि कैं समाज आज बाग मैं बिराज हिं ।। ४६ ।।

।। काहू कौ सवैया ।।

है(कैं) जल जंत्र क[1] मोहनी मंत्र बसीकर सीकर की अवली सौं ।
कै ससि कैं हित मोद भरयौ जलजातु अकास है भूमि थली सौं ।

1. प्र०—'कि'

कै मुकताहल कौ बिरवा किरच्यौ, हथ-फूल जले सरली सौं ।
कंजसनाल तैं कै मकरंद चल्यौ, तरराइ कैं भांति भली सौं ।। ४७ ।।

अथ बर्षा

।। कवित्त ।।

गावैं गीत कोकिल बजावत मृदंग मेघ,
दामिनी दिषावै दिव्य दीप जिय जोहिये ।
मोर नृत्यकारी चारु चातक अलापचारी,
दादुर की दूंन श्री गुबिंद मन मोहिये ।
हरी हरी भूमि के बिछौनां बिछै ललित,
लतानि के बितान आन उपमान टोहिये ।
प्यारी कौं बिहारी कौं रिझावन कैं काज सषी,
सांवन कौ सुघर समाज आज सोहिये ।। ४८ ।।[1]

रघुराई

प्यारे हित काज प्यारी प्यारी हित काज प्यारे,
दुहूंनि सिंगारे तन नीके चटमट सौं ।
जमुना के नीर तीर हसि हसि बातैं करैं,
मन अटकायौ कल-कोकिला की रट सौं ।
एतैं रघुराई घन घटा घहराय आई,
बरषन लाग्यौ नान्ही बूंदनि के ठट सौं ।
जौ लौं प्यारौ प्यारी कौं उढायौ चाहै पीत पट,
तौ लौं प्यारी प्यारौ ढापि लियौ नील पट सौं ।।४९।।

---

1. अलवर की प्रति में अतिरिक्त छंद :—

कारे कारे कुंजर गुबिंद मतवारे भोर वात चक्र वाणी वनें बानिक सुदेस के ।
दामिनी अराविनि औ कूकत दुहाई देत केकी पिक चातक नकीब बहु भेस के ।।
धौंसे की धुकार धूक धुरवा धनुख धरैं पैदल हरौल जैति वार देस देस के ।
संकर सी वैर काज सजि कैं समाज आज आए दल सुभट नरेस मदनेस के ।।

।। देव सवैया ।।

हौं जु गई हुती कुंजनि मैं, वरषैं अति बुंद घनैं घन-घोरत ।
देव कहूं हरि भीजत देषि, अचानक आय गये चित चोरत ।
ओट भटू तट कोट कुटी कै, लपेटि पटी अचरा गहि छोरत ।
चौगुनौ रंग चढ्यौ चित मैं, चुनरी के चुचात लला के निचोरत ।। ५० ।।

।। सवैया ।।[1]

रितु सांवनी तीज सुहावनी बीज, घनैं घनहूं घहरान लगे ।
वनि कैं वन गोविंद चातक मोर, मलारनि कौं ठहरान लगे ।
दोऊ झूलैं झुकैं झमकैं रमकैं, हित सौं हियरा हहरान लगे ।
पट प्रेम पगे फहरांन लगे, नथ के मुकता थहरान लगे ।। ५१ ।।

ठहरैं नहि दामिनि यौं दमकै, घनघोर घटा घहरैं घहरैं ।
हहरैं हसि गावैं गुबिंद सषी, सुनि मंद फुहि छहरैं छहरैं ।
पहरैं तन भूषन रंग रंगे, पट प्रेम पगे फहरैं फहरैं ।
गहरै दोऊ झूलत हैं छवि सौं, उमगै रस की लहरैं लहरैं ।। ५२ ।।[2]

घोर घटा घहराति घनी, घुमडी उमडी चमकै चपला री ।
भूमि हरी गहरी जमुना, पिक चातक मोरनि की धुनि प्यारी ।
गावैं गुविंद लसैं सरसैं, बरसैं रस रंग सुरंग हैं सारी ।
झूलत है सषि मंजु निकुंज मैं, कुंजविहारनि कुंजविहारी ।। ५३ ।।

।। कवित्त ।।

चंद्रिका की चटक मुकट की लटक नैंन,
भौंहन की मटक झटक उर दाम की ।

---

1. अलवर की प्रति में अतिरिक्त छंद :—

घोरनि घंट झरै मद नीर नई अरुणाई की भूल सुरंग है ।
दिव्य दतारे वनें वक पंगति कारे डरारे महा अंग अंग हैं ।।
दामिनि भूषन चातक मोर पिकादि मदत्ति के लोग ए संग हैं ।
सांवन के घन हैं कि किधौं गोविंद मैंन महीप के मांते मतंग हैं ।।

2. अलवर की प्रति में यह छंद नहीं है ।

कट की लचनि औ नचनि नव केसरि की,
महदी की रचनि सचनि कोटि काम की ।
हसनि दसनि की लसन तन भूषन की,
श्री गुविंद रूप गुन जोवनाभिराम की ।
दुति की दमक झीनें झूनै की झमक आज,
झूमि[1] झूलनि झुकनि स्यामा स्याम की ।। ५४ ।।

अथ सरद

।। कवित्त ।।

प्रफुलित सुमन गुविन्द मुष चंद उदै,
चांदिनी विमल सारी जरी के फरद[2] की ।
तारागन मुक्त मांग मल्ली माल मंडन,
कुमुद चारु चकई ज्यौं सौं तैं सब रद की ।
तारक विरह तम बृंद की अमंद दुति,
हार कचकोरनि द्रगनि कें दरद की ।
बाढ़ै नेह नद की तरंग अभिरामनी,
गुविंद आज भामिनी ए जामिनी सरद की ।। ५५ ।।[3]

लाल

मालिनि ज्यौं कर मैं कमल लियें आगें षरी,
चौसर चमेली के रुचिर रचि लाई है ।
जौहरी की जुवती ज्यौं तेज भरे तारागन,
हीरन की हारावलि बिबिधि दिषाई है ।
पच्छिम के ओर की प्रबीन मृगनैंनी अंग,
औढ़ै चारु चद्दरि ए चांदनी सुहाई है ।
लाल लषि लीजै यह रावरे रिझावन,
षवासि ज्यौं सरद चंद आरसी लै आई है ।। ५६ ।।

---

1. अ०—'झूमि झूमि'
2. अ०—'परद'
3. अ०—' ए भामिनी गुविंद आज जामिनी सरद की'

चंद निसि ललना वदन लषि धाई किधौं,
पारद की षांनि फैलि आई आसमान है ।
कैधौं सुष के प्रबोध सुषित सकल सुर,
लोकनि के कलहास भासै भासमान हैं ।
मेरे जानि मदन महीप सब जीति छीति(छिति),
ऊरध चढ़ाये कित्ति करि षासमान है ।
कैधौ तारागन मुकताहल के झूमकांनि,
चांदनी न होइ चारुताई कौ बितान है ।। ५७ ।।

सोभ

देषियै पियारे कान्ह सरद सुधारे सुधा,
धाम उजियारे चौकी चामीकर दरसैं ।
चोभैं चांदी चमकैं चदोये गुही मोतिनि की,
झलकति झालरैं जुन्हाई जोति परसैं ।
हीरा सी हसनि हीरा हार की लसनि सौंधैं,
सारी रही सनि कबि सोभ छबि सरसैं ।
कोरि कोरि कला मुष चंद तैं सरस प्यारी,
बादिला फरस रूप झलाझल बरसै ।। ५८ ।।

पावन पुलिन पौंन सीतल सुगंध मंद,
मोहै मकरंद अरविंदनि के बृंद की ।
रची रास मंडली रसिक रस रीति की सु,
रूप गुन गति भेद गोविंद अनंद की ।
रमक झमक ठमकति पग नूपर की,
तैसी ए दमक तन भूपन सुछंद की ।
चीर की चमक चटकीली छबि चंद्रिका की,
चंद बदनी की चारु चांदनी की चंद की ।। ५९ ।।

पुलिन पवित्र दोऊ मित्र सषी मंडल मैं,
तैसौं रसरास कौ बिलास कौ वढ़ायवौ ।
मुरज मृदंग मुह चंग कठ तारनि कौ,
नूपुर कौ नाद संच सुरनि[1] मिलाइवौ ।

---

1. अ०—'स्वरनि'

सरस समाज साज राग रागिनी कौ नीकौ,
श्री गुबिंद अंग कौ सुधंग(सुढंग) कौ दिषायवौ ।
लंक कौ चलैवौ मंद मंद मुसकैवौ गैवौ,
नैननि नचैवौ बीन बंसी कौ बजायबौ ।। ६० ।।

पावन पुलिन प्रेम पूरन प्रवीन प्यारी,
श्री गुबिंद चंद उजियारी है उमंग की ।
रास रस मंडली रसिक रिझवार रची,
वारि डारी आभा कैऊ रति की अनंग की ।
रूप गुन गति भेद भाव की झमक तामैं,
रमक मिली हैं राग रागिनी के रंग की ।
वीन की वजनि गरजनि पग नूपुर की,
मृदु मुरली की माई मधुर मृदंग की ।। ६१ ।।

सरद उजियारी फुलवारी मैं विहारी प्यारी,
श्री गुबिंद तैंसी वनी मंडली सषीन की ।
प्रेम को प्रकास सस रस कौ विलास तामैं,
राग रागिनी हैं सुर सात ग्राम तीन की ।
उरप तिरप के संगीतनि के भेद भाव,
नीकी धुनि नूपुर की किंकिनी चुरीन की ।
लीन भई मुरली मृदंग की नवीन गति,
वीन की वजनि औ वजावनि प्रवीन की ।। ६२ ।।

अथ हेमंत

।। सेनापति कौ कवित्त ।।

हेमंत तुपार के बुषार से उषारत है,
पूस मास होत सन हाथ पाय ठिरकैं ।
दिन की छुटाई औ बडाई वरनी न जाइ,
सैंनापति रह्यौ जिय सोचिकैं सुमरिकैं ।
सीत सैं सहस कर सहस चरन ह्वै कैं,
ऐसैं जात भाजि तम छावतु हैं घिरिकैं ।
जौ लौं कोक कोकी सौं मिलन की है तौ लौं राति,
कोक अधबीच ही तें आवतु है फिरिकैं ।। ६३ ।।

विहारी

।। दोहा ।।

मिलि विहरत बिछुरत मरत, दंपति रति रस लीन ।[1]
नूतन विधि हेमंत रितु, जगत जुराफा कीन ।। ६४ ।।

।। कवित्त ।।

दावैं चारचौं कोर राजैं नूपुर निसान वाजैं,
छाजैं छबि कर कुच भट भिरिबौ करैं ।
सिंहासन[2] सेज सोहै सीस सीसफूल छत्र,
अलक अनौषे चारु चौर ढ़रिबौ करैं ।
मंत्री मैंन मंत्र देत भांयनि बिटति भूरि,
बंदीजन भूषन बिरद ररिबौ करैं ।
हिम की हिमाई सुषदाई श्री गोविंद दोऊ,
एक ही रजाई मैं रजाई करिवौ करैं ।। ६५ ।।

अथ ससिर[3]

।। सैंनापति कौ कबित्त ।।

ससिर मैं ससि कौ स्वरूप पावै सविताहू,
घामहू मैं चांदिनी की दुति दमकति है ।
सेनापति सीतलता हौंति है सहस गुनी,
रजनी की झांही दिनहूं मैं झमकति है ।
चाहत चकोर सूर ओर द्रग छोर करि,
चकवा की छाती तचि धीर धसकति है ।
चंद के भरम मोद हौति है कुमोदनि,
ससांक संक पंकजनी फूलति सकति है ।। ६६ ।।

---

1. अ०–यह दोहा अलवर प्रति में इस स्थान पर नहीं है । अगले कवित्त के बाद दिया गया है । इससे कोई अंतर नहीं पड़ता क्योंकि हेमंत का प्रसंग चल रहा है ।
2. अ०–'सिंघासन' (इस प्रकार का वर्तनी भेद अनेक स्थानों पर दिखाई देता है ।
3. दोनों प्रतियों में 'ससिर' ही दिया हुआ है ।

विहारी

रहि न सकी सब देस मैं, ससिर सीत के त्रास ।
गरम भाजि गढ़ मैं लुकी, तिय कुच अचल मवास ।। ६७ ।।

अथ होरी

।। कवित्त ।।

एक ओर प्यारी है दुलारी सुकुमारी अरु,
एक ओर रसिक विहारी है विहार मैं ।
दुहूं संग श्री गुविंद सषिन समाज आज,
रूप गुन जोवन के आनद अपार मैं ।
होरी वर जोरी झकझोरनि मरोरनि तैं,
कटि लचकनि कच कुचनि के भार मैं ।
अति अनुरागनि मैं रूप रंग रागनि मैं,
बागनि मैं फागनि मैं फागुन वहार मैं ।। ६८ ।।[1]

लसति[2] असित सित लोहित ललित सु तौ,
चोवा चारु अबिर गुलाल रोरी रषियां ।
छूटैं कल कुटिल कटाछिनि की पिचकारी,
मंद मंद हसनि मृदंग चंग लषियां ।
भाय भरी भौंहै सन मोहत गुविंदजू कौ,
वरुणी पलक[3] बनी सोहैं संग सषियां ।
होरी रंग बोरी चित चोरी की षिलारनि ए,
गोरी भोरी नवलकिशोरी तेरी अषियां ।। ६९ ।।

---

1. यह कवित्त अलवर वाली प्रति में नहीं है । अलवर की प्रति में लिपिकर्ता का ध्यान संक्षेपण की ओर है । शायद वह यह सोचता है कि यदि उदाहरणों में एक छंद कम भी हो तो कोई हानि नहीं है । इसी प्रकार अनेक शब्दों के आने पर २, १ शब्द देकर 'इत्यादि' लिख देना भी इस प्रति में कई स्थानों पर पाया गया । मूल प्रति में जो रूप रहा होगा वह जोधपुर वाली प्रति के सदृश माना जा सकता है ।
2. अ०—'लसत'
3. अ० —'वनक'

डफहि बजाइ गाइ गीत प्रीति रीति ही के,
दीजियै न गारी पिचकारी नीकैं छोरियै ।
अतर अरगजा लै अबीर गुलाल लाल,
डारियै रसाल फूलमाल नांहि तौरियै ।
प्यारी सुकुमारी यह रसिक बिहारी तुम,
वारी गहि बांह कहूं भूलि न मरोरियै ।
होरी मैं गुविंद बराजोरी जिनि कीजै अजू,
रोरी दै कैं गोरी भोरी रंग सौं न बोरियैं ॥ ७० ॥

केसरि गुलाबनि के हौदनि पैं मची फाग,
बाग अनुराग रंग रागहि बढ़ायकैं ।
होरी मैं गुविंद बराजोरी करि गोरी भोरी,
गहि रंग बोरी मुष रोरी लपटायकैं ।
सैंन सकुमारी की सषिनु लषि घेरि लिये,
बंसी बनमाल पीत बसन छिनायकैं ।
आंषि आंजि मांडि मुष छाडे है बिहारी प्यारी,
गारी पिचकारी दै कैं तारी दै नचायकैं ।। ७१ ।।

जमुना के कूल हौं अन्हावन गई ही तहां,
भयौ श्री गुविंद कौ अचानक ही आयबौ ।[1]
मुकट की लटक चटक तन चंदन की,
भृकुटी मटक पीत पट फहराइबौ ।
मेरे चित छाय रह्यौ छिनहूं न छूटै उह,
छबि सौं गुलाल भरी मूठि कौ चलाइबौ ।
कटि कौ लचैबौ मंद मंद मुसकैबौ गैबौ,
नैंन सैंन दैबौ आली डफ कौ बजायबौ ॥ ७२ ॥[2]

कोऊ एक नारी रस रूप उजियारी प्यारी,
आवति ही जमुना के जल मैं अन्हायकैं ।
फागुन की वारी पुनि बिहारी पिलारी मिले,
अँधियारी गली मैं अचानक ही आयकैं ।

---

1. अ०—'आइबौ'
2. अ०—'बजाइबौ' ('य' 'इ' दोनों रूप पाये जाते हैं— एक प्रति में भी ये दोनों रूप स्थानापन्न हैं)

दै गुलाल झोरी भरि कनक कमोरी ढोरी,
अंग अंग रंग वोरी श्री गुविंद धायकैं ।
होरी मैं किशोरी झकझोरी मुष मीडि रोरी,
गही कुच जोरी गोरी चली मुसकायकैं ॥ ७३ ॥

॥ सवैया ॥

रोरी सौं मीडि महा मुष मंजु, निकुंजनि मांझ करी बराजोरी ।
जोरी गही कुच की सु गुविंद, सबै अंग अंगनि रंग सौं वोरी ।
बौरी जु बाहिर जैहै कोऊ, इहि औसर मैं घर ही मैं रहौरी ।
होरी मैं गोरी किशोरी कौं आज, भली विधि कै झकझोरी मरोरी ॥ ७४ ॥

रंग भिजै है रिझै है गुविंदजू, तारी दै गारी अनेक सचैगी ।
छीनि पितांवर बांसुरी मालनि, गालनि लाल गुलाल रचैगी ।
लै हैं सषी सब घेरि तबै यह, मूरति नांच अनौंषे नचैगी ।
रावरी छैलता जानि हैं जू, जब गोरी किशोरी सौं होरी मचैगी ॥ ७५ ॥

रोलियां मुष्ष लगांवदा लाल गुलाल, अबीर उडांवदा झोलियां ।
षोलियां गालियां तालियां दैंदा करैं,दागली विच्च वोलियां ठोलियां ।
घोलियां कित्तीनी साडड़ी जिंद, उसी सें लगी दिल प्रीति कलोलियां ।
चोलियां रंग गुबिंद भिजांवदा, गांवदा रंग रंगीलियां होलियां ॥ ७६ ॥*

॥ छन्द ॥

रंग भरि भरि भिजवइ मोरि अंगिया, दुइ कर लिहि सक न कपि चकरवा ।
हम सन ठन गन करत डरत नहि, मुष-सन लगवत अतर अगरवा ।
अस कसकस वसियत सुनु ननदी, फगुन के दिन इहि गुकुल नगरवा ।
मुहि तन तकत वकत पुनि मुसकत, रसिक गुविंद अभिराम लंगरवा ॥ ७७ ॥

॥ रेषता ॥

इन होलियौं के दिन मैं लला इस्क ना लगइये नाहक भरम धरैगा
लोग नजरिबाज है ।

---

*इस प्रकार की 'पंजाबी' प्रभावित भाषा का प्रयोग रीति-ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर मिलता है । (सम्पादक)

झोली गुलाल भरी उड़ाते आते हौ लपटाते करते हौ इस्तरावी
यह क्या मिजाज है ।
संदल कौं जाफरांन कौं अकसर लगाते मुष सें लगि जायगा कलंक
तौ फिरि क्या इलाज है ।
गोबिंद रसिक सजन तुम जाहर जहूर ज्यांनी घर जान दीजै मुज कौं
गुरजन की लाज हैं ।। ७८ ।।[1]

अथ मारुत[2] छबि बर्णनं

।। काहू[3] कौ कवित्त ।।

पंपा के सलिल मध्य झंपा करि ताही छिन,
चंपा कुसुमनि की लपट लूटि लायौ है ।
कासमीर देस की कुरंग नैंनी कुच तट,
केसरि कैं ले सदेस देस दरसायौ है ।
माधुरी लता कौ परिरंभि कंप ताकौ देत,
धरैं मंद ताकौं जनता कौं सरसायौ है ।
धीरनि अधीर कियैं नीरज कौ नीर लियैं,
वीर पंच तीर कौ समीर आज आय[4] है ।। ७९ ।।

धुरधंर

मदन महीप के बिच छन नजरिबाज,
पीछैं लगे आवत छपद करैं सोर हैं ।
सुकबि धुरधंर भनत अरबिंद बन,
चौकी भरैं चंपक चमेली चहु ओर हैं ।
सब हां के स्वारथ के सकल सुगंध सिय,—
राई सरबस्स के हरैया बरजोर हैं ।

---

1. अ०—प्रति में यह छंद भी नहीं मिलता । खड़ी बोली से प्रभावित इन छंदों को 'रेखता' कहा गया है—यह खड़ी बोली का ही एक प्रकार है और कहा गया है कि इसका प्रयोग मुसलमानों के द्वारा अधिक होता है ।
2. अ०—'पवन' (पर्यायवाची शब्द दिया गया है)
3. अ०—'काऊ' को ('य' 'इ' जिस प्रकार स्थानापन्न हैं उसी प्रकार 'हू' और 'ऊ' भी)
4. अ०—'आयौ'

कहां के समीर ए लुकंजन लगायें चले,
जात मलयाचल तें चंदन के चोर हैं ।। ८० ।।

बिहारी

रनित भृंग घंटावली, झरत दान मधु नीर ।
मंद मंद आवत चल्यौ, कुंजर कुंज समीर ।। ८१ ।।
चुंबत स्वेद मकरंद कन, तरु तरु तर बिरमाइ ।
आवत दक्षण देस तैं, थक्यौ वटोही बाय ।। ८२ ।।

अथ बियोग[1]

वांछित की अप्राप्ति, सो बियोग ।

।। काहू कौ कबित्त ।।

चंदहि निहारि अरबिंदिनी ज्यौं मुरझाइ,
चंदन के लागै देह दाह जिमि दहियै ।
चंद्रक छुवत चित चौगुनी उठति पीर,
धीर न धरात बीर कैसें कै निवहियै ।
अं(अँ)बुज अंगार होत भूषन पहार होत,
झार जिमि हार होत नीदहू न लहियै ।
रावरे बिना तौ वाकौं छिन होत छिनदा से,
छिनदा छमासी होति और कहा कहियै ।। ८३ ।।

अथ बियोग की दस दसा

१. अभिलाष २. चिंता ३. गुनकथन ४. स्मृति ५. उद्वेग ६. प्रलाप
७. उन्माद ८. व्याधि ९. जड़ता १०. मरण ।

अथ अभिलाष[2]

नैंन बैंन मन मिलि रहे तन मिलिबे की जो चाह, सो अभिलाष ।

---

1. अ०— + 'इति संजोग'
2. अ०— + 'लक्षन'

॥ कवित्त ॥

सील औ सुजस कुल कानि तजी जाके काज,
लाज के समाज साज दीनें मैं बहायकें ।
पानी पान भोजन सदन गुरजन तजि,
बन बन डोली तन मनहि मिलायकें ।
आनद के कंद श्री गुविंद व्रज चंद सोई,
कबहूं उमंग सौं मिलैंगे मोहि आयकें ।
जैसें मिलि विछुरि बहुरि निसि नाइका सौं,
आइ मिलै चंद्रमा अमंद छबि छायकें ॥ ८४ ॥

अथ चिंता

प्यारे के मिलाप के उपाय कौ जो बिचार सो चिंता ।[1]

॥ सोमनाथ [कौ] सवैया ॥

सास के त्रास उसास भरौं मन ही मन मांझ मसूसनि मारिवौ ।
घेरैं रहैं घर वाहिर नंद टरैं कितहू न कितौ पचि हारिवौ ।
नाथ सुजान वे बेपरवाह पहार हमैं निज पौरि बिहारिवौ ।
फेरि बनें किहि छंद सषी नंद नंदन कौ मुष चंद निहारिवौ ॥ ८५ ॥

सेवक

राधिका की जननी सौं जनी कोउ क्यौंहू स्वयंबर की बात चलावै ।
देवकुमार से गोप-कुमारनि आदर दै वृषभान बुलावै ।
केसव कैसै हू वाल उहै बरमाल सु मेरे हियें पहरावै ।
तो सी सषी सब दै संग ताके सु क्यौं यह बात सबै बनि आवै ॥ ८६ ॥

॥ कवित्त ॥

प्रेम भय भूप रूप सचिव सँकोच सोच,
विरह बिनोद पील पेलियत पचिकैं ।

---

1. अ०— +केसव को कवित्त

तरल तुरंग अवलोकन अनंत गति,
रथ मनोरथ रहे प्यादे गुन गचिकैं ।
दुहूं ओर परी जोर घोर घनी केसौराय,
होइ जीति कौंनकी को हारै हिय लचिकैं ।
देषत तुम्हैं गुपाल तिहि काल उहि बाल,
उर सतरंज कैसी बाजी राषी रचिकैं ।। ८७ ।।

अथ गुन कथन

बांछित[1] के गुननि के कथिवे कौ जो आधिक्य, सो गुन कथन ।

केसव

।। सवैया ।।

जौ कहु केसव सोम सरोज सुधा सुर भृंगनि देह दहै हैं ।
दारिम के फल श्रीफल विद्रुम हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं ।
कोक कपोत करी अहि केहरि कोकिल कीर कुचील कहे हैं ।
अंग अनूपम वा तिय के उनकी उपमां कहिवेई रहे हैं ।। ८८ ।।

विहारी

कहा कुसुम कहा कौमुदी, कितिकि आरसी जोति ।
जाकी उजराई लषै, आंषि ऊजरी होति ।। ८९ ।।

अथ स्मृति

प्यारे के मिलाप के अनुभव को जो स्मरण, सो स्मृति ।

।। नंदन कौ कवित्त ।।

नई भई बेदन निबेदन की गई भई,
जई भई जोग की सँजोग सुपनें भये ।
तन भयौ तल औ अतन भयौ ज्वाला-मूल,
सोम भयौ सूल सो तपन तपनें भये ।

1. अ० 'भांवत'

गोकुल के चंद कवि नंदन उदास भये,
वे बन बिलास निसि द्यौस जपने भये ।
लीन भये लोइन अधीन भये रोम रोम,
दीन भये प्रान पैं न कान्ह अपने भये ।। ९० ।।

आलम[1] :

जही कुंज कुंजतर गुंजत भमर भीरि,
तहीं तरुवर अव सिर धुनियत हैं ।
जही रसना तैं कही रस की रसीली बातैं,
ताही रसनां तैं गुन गन गुनियत हैं ।
आलम बिहारी बिन ह्वदै हौं अचेत भई,
ए हो दई हेत षेत कैसैं लुनियत हैं ।
जेही कान्ह निसि दिन नैंननि के तारे हुते,
तेही कान्ह काननि कहानी सुनियत हैं ।। ९१ ।।

केसव

सीतल समीर टारि चंद्र चंद्रिका निवारि,
केसौदास अैसें ही तौ हरष हिरातु है ।
फूलनि फैलाइ डारि झारि डारि घनसार,
चंदन कौ ढ़ारि चित्र चौंगुनौ पिरातु है ।
नीर हीन मुरझाइ जीवै नीर ही तैं छीर,
के छिमक्कें कहा धीरज धिरातु हैं ।
पाइ हैं तैं पीर किधौं यौही उपचारु करै,
आगि कौ तौ दाध्यौ अंग आगि ही सिरातु है ।। ९२ ।।

।। आनन्दघन कौ सवैया ।।

तव तौ छवि पीवत जीवत हे, अब सोचनि लोचनि जात जरे ।
हित पोष के तोष तैं प्रान पले, बिललात महा दुष दोष भरे ।
घन आनद मीत सुजान बिनां, सब ही सुष साज समाज टरे ।
तव हार पहार से लागत हे, अव आंनि कैं बीच पहार परे ।। ९३ ।।[2]

1. अ०—'काहू कौ कबित्त'
2. अ०—प्रति में आलम का यह सवैया नहीं है ।

अथ उद्वेग

अनायास ही सुषदाई ह्व दुषदाई ह्वै जाहि, सो उद्वेग ।

केसव

॥ सवैया ॥

चंद नहीं बिषकंद है केसव, राहु इहि गुन लीलि न लीनौं ।
कुंभज पावन जानि अपावन, धोषें पियौ पचि जान न दीनौं ।
या सौ सुधाधर सेस बिषधर, नाम धरयौ बिधि है बुधि हीनौं ।
सूर सौं माई कहा कहियै यह, पाय लै आप वरावरि कीनौं ॥ ९४ ॥

मोतीराम

॥ कवित्त ॥

मूल मलयज कौ समूल जरि जै यौ अरु,
गुन जरि जैयौ या सुगंध सहराई कौ ।
कटिजैयौ भूतल तैं केतु की कमल कुल,
हूजियौ कतल अलि कुल दुषदाई कौ ।
मोतीराम सुकवि मनोज मालती कैं हू जौ,
पूजौ जिन आस बिरही जन हसाई कौ ।
राज बंस हंसनि कौ बंस निरबंस जैयौ,
अंस मिटि जैयौ या कला-निधि कसाई कौ ॥ ९५ ॥

अथ प्रलाप

बिना बिचारें कछु बकि उठै, सो प्रलाप ।

देव

॥ कवित्त ॥

आई रितु पावस न आये प्रान प्यारे यातें,
मेघनि बरजि आली गरजि सतावैं नां ।

दादुर कुहकि बकि बक जिन फोरैं कांन,
पिकनि हटकि भूलि सबद सुनावैं नां ।
हौं तौ बिरह मैं अति व्याकुल भई हौं देव,
जुगनू चमकि चित्त चिनगी लगावैं नां ।
चातक न गावैं मोर सोर न मचावैं घन,
घुमडि न छावैं तौ लौ लाल घर आवैं नां ।। ९६ ।।

पीव पीव पपीहा पुकारत फिरत कहा,
पीव कौ संदेसौ मोहि आय कैं सुनाय दै ।
हाहा वलि पवन गवन तेरौ दिसि दिसि,
अैसे मैं रवन कौं भवन मैं बुलाय दै ।
दूतिका ह्वै दामिनि तू दौरि उहि देस जाय,
आनद के कंद श्री गुविंद जू कौं ल्याय दै ।
घोरि घोरि भूलि न बरसि रस सांवन मैं,
एरे घनस्यांम घनस्यांमहि मिलाय दै ।। ९७ ।।

नंददास जू

।। दोहा ।।

अहो चंद रसकंद तुम, जातु आहि उहि देस ।
द्वारावति नदनंद सौं, कहियौ बलि संदेस ।। ९८ ।।[1]

गंग

।। तुक ।।

गरजै घन ज्यौं लरजै जियरा बरजै किन री दरजै छतियां ।। ९९ ।।

---

1. अ०— +काहू कौ कवित्त
सीतल समीर उर तीर-सी लगति खरी
हरी हरी वेलनि पैं पावक पजारि दै ।
दादुरनि दूरि करि पिकनि विदारि वैरी,
वागिन तैं वाहिर मधुप मोरि मारि दै ।
पावस मैं पति बिन विपति वढ़ावै एतौ,
जीवनि जीवाय उपचारनि विचारि दै ।
दामिनी दवाइ राषि वादर विदा करि री,
बूदन वरजि वीर वकनी विडारि दै ।।

अथ उन्माद

चित्त भ्रम, सो उन्माद ।

॥ सवैया ॥

आनंदकंद गुविंद तुम्हैं रिस जानि, तिया उर मैं अनषावै ।
आये ही जानि कें आदर देत, महामुद ह्वै मधुरें मुसकावै ।
उठि चले जब जानति है तब, चारिक पैंड उहूं उठि धावै ।
बात बषानत जानि सुजान सु, बात कछू की कछू बतरावै ॥ १०० ॥

अथ व्याधि

कांम तै संतापादि विकार, सो व्याधि ।

॥ कवित्त ॥

चंद्रक न षावै तन चंदन चढ़ावै नहीं,
देषैं अनषावैं चंद्र चंद्रिका सुभाय की ।
भोजन न भावै नही भूषन बनावै न तौ,
सोवै न सुहावै सौंधी सेज सुषदाय की ।
रसिक गुविंद स्याम सुंदर सुजान विन,
अैसी गति भई नई दुलही के काय की ।
बीर की सौं बीर बलवीर वैद बेग ल्याव,
बडी बिथा व्यापी बुरी बिरह वलाय की ॥ १०१ ॥

अथ जड़ता

बांछित के बियोग के दुष तैं[1] अंगनि की जो नष्ट चेष्टा, सो जड़ता ।

॥ सवैया ॥

आनदकंद गुबिंद विना उर, सुंदरि कैं अति पीर पिराई ।
और की और दसा अंग अंग, भई सुभई सु कही नहि जाई ।

1. अ०—'विरह तैं' केवल इतना दिया हुआ है ।

सैंन सनान की भोजन की सुधि, भूषन हूं की सबै बिसराई ।
बूझति बात सषी संग की सु, कहैं अपनी न सुनैं न पराई ।। १०२ ।।

अथ मरण लक्षण

प्राननि को अभाव[1], सो मरन सो रस मैं बर्नियै[2] नही ।

अथ बियोग शृंगार के पांच भेद ।।५।।

१. अभिलाष २. ईर्षा ३. बिरह ४. प्रवास ५. श्राप ।

अथ अभिलाष

सुनैं तै अथवा देषे तें मिलिवे की चाह जो चित्तमैं, सो अभिलाष । कोऊ याही सौं पूर्वानुराग कहैं हैं । सुनिवौ तीनि बिधि ।।३।।:—
दूती मुष, सषी मुष, बंदी मुष ।

अथ दूती मुष श्रवण

।। कवित्त ।।

रसिक सुजाननि सनेहिन के सिर-मौर,
कुंवर किसोर है व्रजेस सुषकारी के ।
सुनि नव बाम काम हूं तैं घनस्यांम जू के,
अंग अंग अति अभिराम बैसबारी के ।
दूती नैं बषानैं त्यौंही मानैं मन मौंहिनी कैं,
गुन गन गरेब गुबिंद गिरधारी के ।
सुंदरी सुनत मुष चंदहि नवायौ पुनि,
फूले अरबिंद से सुछंद द्रग प्यारी के ।। १०३ ।।

---

1. अ० —'प्राणाभाव'
2. अ०—'कहिए'

अथ सषी मुष श्रवण

सषी के वचन तैं श्रवन सुनि जाके गुन,
तन भौ विकल वात कौंन कौ सुनाइये ।
चंदन गुलाव घनसारनि के अंग राग,
लागि उठे आगि के समान दुषदाई ये ।
सीतल समीर दई तीर हू तैं तीषी भई,
वेदन गुबिंद की सौं कहां लौं गनाइये ।
एरे मन मेरे अब ताही कौं तु देष्यौ चहै,
तोकौं कौंन भांति समुझाइ सुष पाइये ।। १०४ ।।

अथ बंदी मुष श्रवण

।। सवैया ।।

राजकुमार अनेकनि कैं गुन दान, कृपान जिती छबि छाजै ।
ते सव भाट वषानत गोविंद, भीम महीपति के दरवाजै ।
जानि समैं नल कौं पहलैं दमयंती, पिता ढ़िग आनि विराजै ।
कान लगाइ सुनौं चित दै हित सौं, उतकंठित ह्वै कछु लाजै ।। १०५ ।।

अथ दर्शन चारि

१. चित्र २. स्वप्न ३. इंद्रजाल ४. साक्षात ।

अथ चित्र दर्शन

केसव

।। कवित्त ।।

रूठिवे कौ तूठिवे कौ मृदु मुसिकाइ कैं,
विलोकिवे कौ भेद कछू कह्यौ न परतु है ।
केसौराइ बोलैं बिन वोलनि के सुनैं विन,
हिलनि मिलनि बिन मोहि क्यौं सरतु है ।
कौलग अलौनौं रूप प्याय प्याय राषौं नैंन,

नीर देषैं मीन कैसें धीरज धरतु है ।
चित्रिनी बिचित्र किन नीकैं ही चितै जै अब,
चित्र चितये तें चित्र चौगुनौ जरतु है ।। १०६ ।।

अथ स्वप्न दर्शन
देव

॥ सवैया ॥

बितान तनैं जहँ फूलनि के, रितु सारद की जौन्ह की जोति अमंद ।
प्रिया सपने मैं लषौ कवि देव, सुजांनी भलौं मिटि हैं दुष-दंद ।
लियौ चहै अंक भुजा भरि कैं तब ही, कोऊ कूकि उठ्यौ मति मंद ।
षुलै अषियां तौ न चंद मुषी न, चँदोवा न चांदनी चंदन चंद ।। १०७ ।।

मतिराम

आवत मैं हरि कौं सुपनैं लषि, नैं सिकु बात सँकोचनि छोडी ।
आगै ह्वै ठाढ़े भये मतिराम औ, लीनैं चितै चष लालच औडी ।
ओठनि कौ रस लैंन कौं मेरी, गही कर कंजनि कंपत ठोडी ।
औरं भटू न भई कछु बात गई, इतनैं ही मैं नींद निगोडी ।। १०८ ।।[1]

विहारी

देष्यौ जागत वैस ही, सांकर लगी कपाट ।
कित ह्वै आवत जात भजि, को जानत किहि बाट ।। १०९ ।।
सोवत सुपनैं स्यांम घन, हिलिमिलि हरत बियोग ।
तब ही टरि कितहूं गई, नीदौ नीद न जोग ।। ११० ।।

अथ इंद्रजाल दर्शन

॥ कवित्त ॥

सुभग सिंगार अंग अंग सुकुमार चारु,
हार हियैं सौरभ अपार वाके तन मैं ।

1. अ०—प्रति में मतिराम की उक्ति बिहारी के दोहों के बाद दी गई है ।

रूप गुन जोवन अनूप छवि छाजै राजै,
बाग मैं गुविंद अति आनद के गन मैं ।
बीनां कौं बजावै मंद मंद मुसकावै गावै,
नैंननि नचावै भाव ल्यावै भ्रू-भ्रमन मैं ।
अैसी सषी सांवरी सलौंनी लषि स्यांमां जू कै,
लाष लाष भांति अभिलाष वटौ मन मैं ।। १११ ।।

अथ साक्षात दर्शन

।। काहू कौ सवैया ।।

वंसी बजावत आनि कढचौ सुगली मैं, छली कछु टौंनां सौ डारैं ।
फेरि चितै तिरछी करि दीठि चल्यौ, गयौ मौंहन मूंठि-सी मारैं ।
ता घरी तैं घरी-सी धरी सेज पै, प्यारी न बोलति प्राण से वारैं ।
जागि है जीहै तौ जीहै सवै न, तौ पी हैं सवै विषनंद के द्वारैं ।।११२।।

केसव

केसव कैसैं हूं ईठि न दीठत, दीठि परे अति ईठ कन्हाई ।
ता छिन मन मेरें कौं आंनि भई, सुभई कहि क्यौंहू न जाई ।
होयगी हांसी जु आवै कहूं कहि, जानि हितू हित बूझन आई ।
कैसैं मिलौं री मिले बिन क्यौं रहौं, नैंननि हेत हियें डर माई ।।११३।।

मतिराम

न्यौंते गये कहूं नेह लग्यौ मतिराम, दुहूं के लगे द्रग गाटे ।
लाल चले घर कौं तब बाल के, अंग अनंग की आगि सौं दाटे ।
ऊंचे अटा चढ़ि कांधै सहैली कै, ठोडी दियें चितवै दुष वाढ़े ।
मौंहन हूं मन गाढ़ौ कियें पग द्वैक, चलैं फिरि होत हैं ठाढ़े ।।११४।।

बिहारी

।। दोहा ।।

चूनरी स्यांम स तार नभ, मुष ससि की उनहारि ।
नेह दवावत नीद ज्यौं, निरषि निसा-सी नारी ।।११५।।

लटकि लटकि लटकत चलत, दटक मुकट की छांह ।
चटक भरचौ नट मिलि गयौ, अटक भटक बन मांह ।।११६।।

अथ ईर्षा

परायो उत्कर्ष बिषैं असहनता, सो ईर्षा सो तीन बिधि:-
श्रवन, दर्शन, अणुमान[1] ।

अथ श्रवण ईर्षा

।। सवैया ।।

बिहरै ब्रजचंद गुबिंद सौं आज, अनंद सौं इंदु-मुषी दुलही ।
अषि मीचन षेलन कौं इन संग, उहै ललचावति है अतिही ।
यह बात सुआनि अचानक ही सषि, काहू नैं कौंन हूं भांति कही ।
सुनि कैं अनषाइ रिसाइ हिये पिय सौं, तिय मान कियौ तवही ।।११७।।

मुकंद

भूलिहु काहू नारि कौ, लियौ नाम घनस्याम ।
सुनत सेज तजि उठि चली, रस मैं रिस ह्वै वांम ।।११८।।

भूलि कह्यौ कहुँ सुपन मैं, सीता स्याम सुजान ।
सुनत अनषि उठि प्रात ही, कियौ राधिका मांन ।।११९।।

अथ दर्शन ईर्षा

।। कवित्त ।।

करत बिलास इंदुमुषि अरविंद नैंनी,
रसिक गुविंद के समीप सचु पाइकैं ।
देषत ही गह्यौ हाथ हाथ मैं सु प्राणनाथ,

---
१ अ०— 'अनुमान'

सौति सिर सुमन पराग बरसायकैं ।
ताही छिन छबीली छुडाइ गलबाह् अन,
षाइ सतराइ भौंह नैंननि रिसायकैं ।
बीरी बगराय बैंदी भाल की मिटाय अंग,
अंग अकुलाय बैठी मांन कुंज जायकैं ।।१२०।।

मुकंद

लषि मुकंद उर मुकर मैं, निज बिंब सुवाल ।
आनि नारि कौ मानि भ्रम, मान कियौ ततकाल ।।१२१।।
दुरि मुरि काहू नारि सौं, कही बात कछु कान्ह ।
प्रतिबिंबित लषि मुकर मैं, कियौ मानिनी मान ।।१२२।।
पति हित सौं कोउ नारि की, ओर लषत लषि लीन ।
तज्यौ षेल सतरंज कौ, मान माननी कीन ।।१२३।।

हरिबंस गुसाई जू[1]

हरि उर मुकर बिलोकि अपनपौ,
बिभ्रम बिकल मान जुत भोरी ।।१२४।।

अथ अनुमान ईर्षा

।। कवित्त ।।

रसिक गुविंद स्यांम सुंदर दुराये तुम,
उर नष चंद चारु अंबर उढ़ायकैं ।
अंजन की आभा अधरनि मैं अनौषी सु तो,
ढ़ांपी इक हाथ भली भांति सौं बनायकैं ।
औपैं उह अंगना के (सैं) अंगनि के अंग लगे,
सरस सुगंध वृंद सहज सुभायकैं ।

१ अ०— अ० प्रति में हरिबंस गुसाईं जू की पंक्तियां नहीं हैं ।

चारी चहु ओर करैं चतुर विहारी पय,
कैसें धौं छवीले छैल राषौगे छिपायकैं ॥१२५॥

अथ बिरह :

प्यारे के अनागम के कारण चिंतवन करि कैं जो दुष्ष, सो बिरह ।

केसव

॥ सवैया ॥

सुधि भूलि गई भूल ए किधौं काहू कि, भूले ही डोलत वाट न पाई ।
भीत भयौ किधौं केसव काहू सौं, भेट भई किधौं भामिनी भाई ।
आवत हैं किधौं आई गये किधौं, आंवहिगे सजनी सुषदाई ।
आये नदनंदकुमार बिचारि सु, कौन बिचार अवार लगाई ॥१२६॥

कान्ह

यह चांदनी कान्ह मलीन भई, गन तारनि के पियरान लगे ।
चिरियां चहु ओर करैं चरचा, चकई चकवा नियरान लगे ।
निसि मैंन मरोरनि मांझ सिंगार, कछू जियरा न लगे ।
मन मौंहन तो हियरान लगे, नथके मुकता सियरान लगे ॥१२७॥

विहारी

नभ नाली चाली निसा, चट-काली धुनि कीन ।
रति पाली आली अनत, आये बन-मालीन ॥१२८॥

अथ प्रवास

नाम ही तैं लक्षण जानि लीजै ।[1]

---

1. अ०— प्रति में स्पष्ट नहीं है—'अथ प्रवास नाम ही ॥ लछ्छन है प्रवास ॥'

प्रवास त्रिबिधि :—

१. भूत २. भविष्य ३. वर्तमान

अथ भूत प्रवास

॥ प्रहलाद कौ कवित्त ॥

छूटि छूटि परै आज वेंदी मेरे भाल पै तैं,
मुष पै तैं मोतिनु की लरी लरकति है ।
चूरेहू की कील डग भरत निकसि जाति,
जव तव जूरेहू की गाठि भरकति हैं ।
जानी न परति परदेस पिय प्रहलाद,
निकसि उरोजनि तैं आंगी अरकति हैं ।
नती तरकति कर चूरी चरकति सिर,
सारी सरकति आंषि बांई फरकति है ॥१२६॥

अथ भविष्य प्रवास

॥ गंग कौ कवित्त ॥

वैठी तिय सषिन मैं ललन चलन सुन्यौं,
सुष के समूह मैं वियोग आगि भरकी ।
कहै कवि गंग वाकैं अंग कैं बसनहू कौं,
परसी जे सषी ताकैं व्यथा भई ज्वर की ।
प्यारी कौं परसि पौंन पौंन गयौ मांनसर,
परसति औरै गति भई मानसर की ।
सूषि गयौ सर औ सिवार जरि छार भये,
जल जरि वरि गयौ पंक सूषि दर की ॥१३०॥

[1]अंग राग अंग करि मोती-माल ग्रीव धरि वैठि,
बाल सौहैं अति चांदिनी बिमल मैं ।

1. अ०—प्रति में 'काहू को कवित्त' दिया गया है ।

आनद की लहरैं सु राग-रंग गहरैं यौं,
बार बार बलकति जोबन के बल मैं ।
ताही समैं आली नंदनंदन गवन सुन्यौं,
सामुहैं निहारी मानौं वारी है अनल मैं ।
मोतिन के हार की नछार रही उर पर,
अंग-राग उडिगौ अबीर ह्वै कैं पल मैं ।।१३१।।

बाजू-बंद बलयादि बाहू तौ छिटकि परे,
नैंननि तैं आसू इकसार चले वहिकैं ।
धीरज पलकहू न ठहरयौं चपल अति,
चित्त अगवानी भयौ मारग कौं गहिकैं ।
गवन रवन कौ श्रवन सुनि निहचैकैं,
सवही सिधारे संग गोविंद उमहिकैं ।
प्रीतम सुजान के पयान समै पापी प्रान,
तू पयान ना करै करैगौ कहा रहिकैं ।

अथ वर्त्तमान प्रवास

।। गंग कौ कवित्त ।।

काहू कह्यौ आन आनि अनक परि यौं कान,
मथुरा हू छाड़ी कहू दूरी केसौराय गौ ।
आज यह वात कोऊ प्यारी कौं जतावो जिनि,
मुरझानौं गात सो निपट मुरझा[य] गौ ।
चंदन की चोली औ कपूर च्वाँयैं अंग अंग,
बिरह की आंच तैं अवाह ज्यौं लगायगौ ।
गंग कवि वृंदावन चंद-मुषी चंदहि,
निहारैगी तौ चंद जरि जायगौ ।।१३३।।

अथ श्राप

नाम ही लक्षण है ।

॥ सवैया ॥[1]

प्यारी तिहारी लिषी नव मूरति, मांनवती मन मांहि छक्यौई ।
दोष मिटावन कौं अपनौं सिर नाई कैं, पाय लगैवौ न क्यौंई ।
एते मैं आडे भये असुआ, छबि देषन काज मुकंद जक्यौई ।
का बिधि ह्वै है मिलाप अबै बिधि, या बिधिहू नहि देषि सक्यौई ॥१३४॥

प्रष्ण : -

यह प्रवासई क्यों न होइ श्राप वर्नन कैसें ।

उत्तर :—

श्राप वर्नन कवि की इछा ।
माद्री कौ औरु राजा पांडु कौ श्रापजन्य बिरह भारतादिक प्रसिद्ध है, यातैं ।

॥ कुलपति[1] कौ सवैया ॥

हेरि टरचौ दिन मैं बन ब्याध यौं, सांझ समैं चकवा जुग पाये ।
आदर सौं बतरांन लगे कि, बजी निसी मैं करिहैं मन भाये ।
एतेई मांझ वयारि वही छुटि, आपनैं आपनैं पथ सिधायें ।
बंदिहू मैं बिधि मंद मिलाप, न देषि सक्यौ कहि कैं मुरझाये ॥१३५॥

बिहारी

इन अषियां दुषियानी कौं, सुष सिरज्यौ ही नांहि ।
देषत बनैं न देष तैं, अन देषैं अकुलाहि ॥१३६॥

कहूं न्यारे हू बिभावादिक रस कौ प्रगटें हैं ।

---

1. अ० + 'मुकुंद कौ' ।
2 अ० —प्रति में केवल 'कु०' दिया गया है ।

अथ बिभाव निकरि

कुलपति

॥ सवैया ॥

भूमि भुके वदरा चहु औरनि, दामिन रूप अनूप दिषायौ ।
फूल कवान (कमान) चढ़ी लषियै, सुनियै यह मोरनि कूक सुहायौ ।
कारी हरी सित पीत घटा छबि, सीरौ सुगंध समीर सुहायौ ।
अंतहू मांन रहैगौ न प्यारी, करै किन प्रीतम कौ मन भायौ ॥१३७॥

अथ अनुभाव निकरि

॥ कुलपति कौ कवित्त ॥

जब लषि पै है तब लोचन सिरैं है सु तौ ।
बाढ़ी उर मांझ अति अतन की आगि है ।
मौन न रहत कछू कहि न सकत पुनि,
तलावेली उर मैं उठति जागि जागि है ।
मगन भये तैं कही सुधि वुधि जै है सु तौ,
जागत बिहात क्यौ हूं छिनक मैं भागि है ।
लागै हूं न पल हौं तौ भई हौं विकल तैं तौ,
झूठें ही कह्यौ हौ आंषैं देषैं आंषि लागि है ॥१३८॥

अथ संचारी भाव निकरि

आनंद सौं उमगे तकि दूरि तैं, चौंके से चाहत रूप नवीनें ।
रोस उदास परेषे हुलास सु, प्रेम के त्रास भये अति दीनैं ।
सौ हैं किये तैं लजौं है पिजौंहैं, रिझौंहैं भयै छबि जीतत मीनें ।
सोच सकोच सयानप सील, सुभायनि ये द्रग देषन कीनें ॥१३९॥

अैसे और हू ठौर जथा संभव जानि लीजै ।

अथ हास्य रस

बिकृत अकार, विकृत वेष, बिकृत बाणी, बिकृत चेष्टानि कैं देषैं ते प्रगट होइ अलौकिक बस्तु जो मन मैं, सो हास्य। विकृत आकारादि आलंबन, तच्चेष्टा बिसेस उदीपन, बदन नेत्र संकोचनादि अनुभाव, चपलता, उत्कंठा, निद्रा, अवहित्था हर्षादिक संचारीभाव, हास्य स्थायी भाव। सेत बर्ण, प्रथम देवता, सो हास्य छ प्रकार—१. स्मित २. हसित ३. विहसित ४. उपहसित ५. अपहसित ६. अतिहसित।

॥ छप्पय ॥

स्मित कछु पिलित कपोल जथावत द्रग अद्दश्य रद।
हसित पिलित से द्रग मुषादि दिषयत कछु रदसद।
सनद रक्त मुष कुटिल नांक छबि मंद सु विहसित।
पिलत नांक उपहसित द्रष्ट कुंचित सिर कुंचित।
अपहसित थान विन सजल द्रग कंप ग्रीव सिर गुविंद भनि।
अति हसित थूल श्रुति कट्ठ नयन अश्रु श्लेष कर पति धरनि ॥१४०॥

अथ स्मित

॥ सवैया ॥

वादि सिवा सिव सौं निज देह दुरायौ बिभूति के डेल में नीकौ।
हारि रहें हरि जू हठि हेरि तिलोकनि मैं न मिल्यौ तन तीकौ।
आपहि तें प्रगटि जब गोबिंद देषि प्रभाव यौं संभु सती कौ।
नारि नवाइ कियौ मधुर स्मित गोला वगाय दियौ भस्मी कौ ॥१४१॥

इहां सिव आश्रयालंबन, सिव कौ प्रगटिबौ बिषयालंबन, तच्चेष्टा बिसेष उद्दीपन, नारि नवायबौ अनुभाव, चपलता अवहित्था संचारी भाव, हास्य स्थायी भाव।

अथ हसित त्रिभंगी

श्रीपति नारायण सुजस परायण, नारद कौं कपि वदन दियौ।
छल नगर बसायौ जज्ञ रचायौ, मुनिवर तहां प्रवेस कियौ।

पहरन बरमाला बाहन बाला, छिन छिन उझकत बीच सभा ।
गोविंद सुर सैंनी सैंना बैंनी, हसति परस्पर देषि प्रभा ।।१४२।।

इहां देव-सभा आश्रयालंबन, नारदजू विषयालंबन, तिन कौ उझकिबौ उद्दीपन, सैंना बैनी अनुभाव, अवहित्था संचारीभाव, हास्य स्थाई-भाव ।

विहारी

रबि बंदौ कर जोरि यौं, सुनैं स्यांम के बैन ।
भयेह सौंहैं सषिनु के, अति अनषैं हैं नैंन ।।१४३।।

इहां गोपी आश्रयालंबन, श्रीकृष्ण बिषयालंबन, ताके बचन उद्दीपन, सैंना बैंनी अनुभाव, हर्ष संचारी भाव, हास्य स्थायी भाव ।

अथ विहसित

मुकंद

।। सवैया ।।

जानि फुलेल निसि मैं मसी, जल लै मुष लेप कियौ सुषकारी ।
सोइ कैं भोर उठ्यौ अलसात, मुकंद कहै सुभई छबि न्यारी ।
आंनि अथांई पै वैठ्यौ जहां, ढ़िग ही पनघाट भरैं पनहारी ।
देषत वा मुष की सुषमा सब, आपस मैं बिहसैं नर नारी ।।१४४।।

इहां नर नारी आश्रयालंबन, मुष-सोभा बिषयालंबन, ताकी चेष्टा उर्द्दीपन, सैंना वैनी अनुभाव, हास्य स्थायी भाव । (हर्ष अवहित्था संचारी-भाव)

विहारी

पर तिय दोष पुरान सुनि, लषि मुसकी सुषदानि ।
वस करि राषी मिश्र हू, मुह्द आई मुसकानि ।।१४५।।

इहां मिश्र आश्रयालंवन, सुषदानि जो नाइका सो विषयालंवन, ताकौ घूंघट मैं मुसकाइबौ उद्दीपन, सैंना वैंनी अनुभाव, अवहित्था संचारी भाव, हास्य स्थायी भाव ।

अथ उपहसित

॥ दोहा ॥

तिय संग निसि रमि भोर ही, कहत फिरत अज्ञान ।
सुनि सुनि नाक फुलाइ कै, हसत तटस्थ सुजान ॥१४६॥

इहां याकौ कहिवौ बिषयालंबन, तटस्थ आश्रयालंवन, बिधिवत बतायबौ उद्दीपन, नाकफुलायबौ अनुभाव, अवहित्था संचारी भाव, हास्य स्थायी भाव ।

बिहारी

सुत पितु मारन जोग लषि, भयौ भयें सुत सोग ।
फिर हुलस्यौ उह जोइसी, समुझ्यौ जार सजोग ॥१४७॥

इहां जोइसी आश्रयालंवन, जोइसिनि बिषयालंबन, पुत्र जनम के गृह उद्दीपन, नेत्र संकोचन अनुभाव, उत्कंठा हर्ष संचारीभाव जानि लीजै । हास्य स्थायी भाव ।

अथ अपहसित

॥ काहू कौ कवित्त ॥

आयौ परदेस तें कितेक दिन बीतें कंत,
बैठ्यौ चित्रसारी सो सवारी बहु भायकैं ।
लेषक के साज कौं सिंगार मिसरानी जानि,
मसि मुष लाइ यौं फुलेल चित चायकैं ।
हंस पाक अंजन दै तिलक सु हरताल,
दीपक कौं साजि चली मंदिर सुभाइकैं ।
देषि भय भेस काहू पौंन कौ प्रवेस जानि,
कूदि परे मिश्र जू अटा तें अकुलाइकैं ॥१४८॥

इहां मिश्र विषयालंबन, तटस्थ ग्राश्रयालंबन, मिश्रानी के गुन उद्दीपन, बदन नेत्र संकोचनादि ग्रनुभाव ग्ररु ग्रवहित्था संचारीभाव जानि लीजै। हास्य स्थायी भाव ।

विहारी[1]

बहु धन लै ग्रैसान कैं, पारौ देत सराहि ।
बैद वधू तव बिहसि कैं, रही नाह मुष चाहि ।।१४६।।

इहां बैद-बधू ग्राश्रयालंबन, बैद बिषयालंबन, ताकी नपुंसकता उद्दीपन, सैंनां बैनी ग्रनुभाव, उत्कंठा हर्ष संचारीभाव जानि लीजे। हास्य स्थायी भाव ।

ग्रथ ग्रति हसित

सोमनाथ

।। सवया ।।

जांनि कैं ग्रांवदिनी वर की, चित चायनि सौं तितहीं करि कैं रुष ।
ठाढ़ी भई सिगरी तिय गांउ की, नीकैं बरात कौ देषन कौं सुष ।
वैल पै नंग भुजंग के भूषन, भक्षत भंग बिसारत हैं दुष ।
ग्रैसे निहारत ही हर कौं, हहराय हसी सब ग्रंचल दैं मुष ।।१५०।।

इहां सिब विषयालंवन, गांउ की स्त्री ग्राश्रयालंबन, सिव की चेष्टा उद्दीपन, बदन नेत्र संकोचनादि ग्रनुभाव ग्ररु ग्रवहित्था संचारीभाव जानि लीजै। हास्य स्थायी भाव ।

केसव

।। सवैया ।।

ग्राई है एक महाबन तें तिय, गावति मांनौं गिरा पग धारी ।
सुंदरता जनु काम की कामिनि, बोलि कह्यौ वृषभांन दुलारी ।

---

1 ग्र०—प्रति में बिहारी का दोहा नहीं है।

गोपी कैं ल्याई गुपालहि वे अकुलाइ, मिली उठि सारद भारी ।
केसव भेटत ही भरि अंक हसी, सब कीक दैं गोपकुमारी ।।१५१।।

इहां गोपी आश्रयालंबन, राधा कृष्ण विषयालंबन, तिन कौ मिलिबौ उद्दीपन, वदन नेत्र संकोचनादि अनुभाव अरु चपलता उत्कंठा हर्ष संचारी भाव जानि लीजै । हास्य स्थायी भाव ।[1]

अथ करुणा रस

अनिष्ट वस्तु प्राप्ति भये तैं प्रगट होइ सोक की वृद्धि जो मन मैं, सो करुणा । सोच्य वस्तु आलंबन, ताके गुन उद्दीपन, दैव निंदा पृथ्वी—पतनादि अनुभाव, निर्वेद अप्समार मोह विषाद दीनतादि संचारी भाव, सोक स्थायी भाव । कपोत समान बरण ।

जमराज देवता

।। कवित्त ।।

इंद्रपुरी इंद्र जीति इंद्रजीत नांउ पायौ
बांध्यौ हनुमंत महा गोविंद वली भयौ ।
ताही कौं भषत अब स्वान ए सिचान आदि,
दई निरदई अैसौ कौतुक कहा ठयौ ।
रोइ रोइ राछिसी यौं सबद सुनावै उप-,
-जावै उर दुष्ष कौ समूह सब कैं नयौ ।
मो-सी दीन दृष्षित कौ द्वार बिसराय हाय,
हौं न जानौं अैसौ सुत भौंन कौंन कैं गयौ ।।१५२ ।।*

---

1 अ०—प्रति में व्याख्या नहीं दी गई है । पर नीचे लिखा बिहारी का दोहा और दिया गया है । वि० वहुधन लै अैसान करि पारौ देत सराहि ।
बैद वधू यह भेद लषि, रही नाह मुख चाहि ।।

* ग्रंथ में अनेक स्थानों पर छंदों की संख्या नहीं दी गई है । अलवर एवं जोधपुर वाली दोनों प्रतियों में छंदों का क्रम नहीं बैठता क्योंकि—

(1) संख्या में अंतर है ।
(2) दोनों प्रतियों में दिए गए उदाहरणों के छंद न्यूनाधिक हैं।

इहां मंदोदरी आश्रयालंबन, इंद्रजीत कौ मरिबौ विषयालंवन, ताके गुन उद्दीपन, देव निंदा, अश्रुपात अनुभव, मोह अप्समार, दीनता विषाद संचारी भाव । सोक स्थायी भाव ।

करुणा रस कौ अरु बियोग शृंगार कौ भेद इहां सोक स्थायी भाव उहां रति स्थायी भाव और उदाहरण एक सौ है ।

अथ रौद्र रस

अंतित क्रोध की वृद्धि तैं प्रगट होइ अलौकिक बस्तु जो मन मैं, सौ रौद्र । सत्रु आलंबन, ताकी चेष्टा बिसेस उद्दीपन, नेत्र मुष अरुणता सस्त्र प्रहारादि अनुभाव, गर्वमति उग्रता आवेगादि संचारीभाव क्रोध, स्थायीभाव। रक्त वर्ण[1] ।

रुद्र देवता

॥ कवित्त ॥

श्री गोविंद सुघट सुभट्टनि के ठट्टनि तैं,
विटप बिकट्टनि कटाय उपटाय हौं ।
मठ्ठ मठ्ठ जुट्टि जुट्टि राछिसिनी रुद्दित यौं,
प्रगट प्रचंड घनैं घोर घोष छाय हैं ।
भृकुटी चढ़ाय कहैं अंगद सौं राघौ दश—
कंधरं के कंध धाय धूरि मैं मिलाय हौं ।
निपट निसंक कहौं लंक करौं रंकिनी ज्यौं,
नाम रामचंद्र आज तव ही कहाय हौं ॥ १५३ ॥

इहां श्री रामचन्द्र आश्रयालंबन, रावन बिषयालंबन ताके गुन उद्दीपन, भृकुटी चढ़ायवौ अनुभाव, उग्रता संचारी भाव, क्रोध स्थायी भाव ।

1 अ॰ + 'देवता'

।। केसव की छप्पै ।।[1]

मधु मद मर्द्दन कियौ वहुरि मुर मर्द्दन कीनौं,
मारचौ कर्कस नर्क संष हति संष जु लीनौं,
निह कंटक सुर क्टक कट्यौ कैटभ बपु षंडचौ,
षरदूषन त्रिसरा कवंध जिहि षंड विहंडचौ,
कुंभकरन जिहि संहरचौ पल न प्रतिज्ञा तें टरौं ।
जिहि बांन प्रांन दसकंठ के कंठ दसौं षंडन करौं ।।१५४।।

इहां विभावादिक वैसे ही जानि लीजै ।

।। सूरदासजू कौ पद ।।

जौ हौं हरिहि न सस्त्र लिवाऊं ।
तौ लाजौं गंगा जनिनी कौं, सांतन सुत न कहांऊं ।। इत्यादि ।।

भीष्म जू आश्रयालंबन, भारत बिषयालंबन श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा उद्दीपन, अनुभाव, संचारी, स्थायी वैसौ ही जानि लीजै ।।

सोमनाथ

जौ पै नंदनंदन कहांऊं मथुरा मैं ।
आज कंस कौ निपट निरबंस करि आऊ मैं ।।

इहां श्रीकृष्ण आश्रयालंबन, कंस विषयालंबन ताकी दुष्टता उद्दीपन, अनुभाव, संचारी, स्थायी वैसैं ही जानि लीजैं ।[2]

अथ वीर रस

उत्साह की वृद्धि तें प्रगट होइ अलौकिक वस्तु जौ मन मैं, सो वीर-रस । जाहि देषै उत्साह वढै सो आलंबन ताकी चेष्टा उद्दीपन, सूरता,

---

1 अ०—प्रति में यहां से सामग्री नहीं है ।

2. अ०—यहां तक की पूरी सामग्री नहीं है । 'वीर रस' से शुरु होता है । उदाहरण और व्याख्या की पूरी सामग्री अलवर की प्रति में नहीं मिलती ।

धीरता, प्रभाव, पराक्रम पराक्षेप वाक्यादि अनुभाव, हर्षादिक संचारी भाव, उत्साह स्थायी भाव । सुवर्ण बर्ण । महेंद्र देवता । सो बीर-रस चार विधि—जुद्धबीर, दानवीर, धर्मवीर, दयावीर ।

अथ जुद्ध वीर

।। कवित्त ।।

क्रुद्धित ह्वै जुद्ध मध्य वापुरे विबुध वृंद,
भीत कै भजाय गरवायौ अपमान है ।
तेरे सिर कट्टन मैं मेरी ये सुभट्टताई,
भट्टनि के ठट्ट मैं न पावै सनमान है ।
मो कर कोदंड तैं प्रचण्ड छुटे वानि कौं,
बेग वहै गोबिंद उदंड बलबान है ।
ब्याल भाल उदिज्ज्वाल गृस्यौ जगज्जाल सो ही,
रुद्र कछू सहि है औ बिश्व मैं न आंन है ।।१५६।।

इहां श्री रामचंद्र आश्रयालंबन रावन विषयालंबन, ताके गुन उद्दीपन, पराक्षेप बाक्यादि अनुभाव, हर्ष गर्व संचारी भाव, उत्साह स्थायी भाव ।

रौद्र कौ अरु जुद्ध वीर कौ भेद—

जहां समता की सुधि रहै सो जुद्धबीर अरु सम विषम की सुधि नही, सो रौद्र ।

अथ दानवीर

इहां तीर्थपात्र और दान समय कौ ज्ञान ए बिभाव ।

।। सवैया ।।

जाचक आनि सधारन जे जन, जाचत मोहि तिन्हैं लषि जीजित ।
प्रान प्रजंत बिभौ जितनी पुनि दै, हित सौं अति आदर कीजित ।
आयें हौ आप मया कैं महेंद्र गुबिंद, बिनैं नल की यौं सुनीजित ।
प्राननि तैं प्रिय बस्तु कहा सु तौ, दै कै तुम्हैं जग मैं जस लीजित ।।१५७।।

इहां नल आश्रयालंबन, इंद्र विषयालंबन, ताकौ मांगिवौ उद्दीपन, प्रभाव अनुभाव, हर्ष संचारी भाव, उत्साह स्थायी भाव ।।

कुलपति

।। सवैया ।।

केतिक दानि कौं मेरु की संपति को, जग मांझ कुबेर कहायौ ।
बादि ही कौं जननी जनें जाहि रहै, चुप यौं तकि जाचक आयौ ।
कुंडल औ रसना हकि ते कहैं, दीवें कौं जाकौं तें ज्यौ तरसायौ ।
सीसहू काटि कृपान सौं दैंउगौं, होइ जौ भिक्षक कौ मन भायौ ।।१५८।।

इहां जगदेव आश्रयालंवन, कंकाली विषयालंवन, ताकौ मांगिबौ उद्दीपन, प्रभाव अनुभाव, हर्ष संचारी भाव, उत्साह स्थाई भाव ।

अथ धर्मवीर

।। सवैया ।।

धाम धरा धन द्रोपदी हू (पुत्र) पुनि, आपनी देह हू जानौ वृथा ही ।
भ्रातहू पुत्र पउत्रहू मित्रहू नातै, गुबिंद जिते जग मांही ।
लोकहू लाज प्रजा गज बाजहू की, रतिहू मतिहू अवगांही ।
राज समाज सबै सुष साज सु, धर्म बिना कछु काज के नांहीं ।।१५९।।

इहां युधिष्टिर आश्रयालंबन, कैरव - सभा बिषयालंबन, ताके गुन उद्दीपन, धीरता अनुभाव हर्ष संचारीभाव, उत्साह स्थायी भाव ।

अथ दयावीर

।। सवैया ।।

सिंह[1]जू आज प्रसंग मैं आनि परी, यह नंदिनी धेनु दुष्यारी ।
सांझ परी पय पीवन कौं बछरा, उतकंठित है अति भारी ।

1. अ० —'सिंघ' कई अन्य स्थानों पर भी यह भेद मिलता है ।

दीजियै याहि अवै बिसराइ गुबिंद, इती विनती है हमारी।
मोतन कौं भषि मित्र भली विधि तृप्ति ह्वै, कीजियै वृत्ति तिहारी।।१६०।।

इहां और कौ दुष दूरि करिबौ बिभाव, गर्व, धर्म संचारीभाव ।

।। कुलपति कौ सवैया ।।

देषत मेरे को जीव हनैं सुनिकैं धुनि, कोस हजार क धाऊं ।
और कौ दुष्ष न देषि सकौं जिहि भांति, छुटै तिहि भांति छुटांऊं।
दीनदयाल है छत्रिय धर्म तहां, सिव हौं जग व्याधि बहाऊं ।
तू जिन सोचै कपोत कपोतक, आपुनी देह दै तोहि बचाऊं ।।१६१।।

अथ भयानक रस

भय की वृद्धि तैं प्रगट होइ अलौकिक वस्तु जो मन मैं सो भयानक, रस । जाहि देषैं भय होइ सो आलंबन, ताकी घोर चेष्टा विसेष उद्दीपन, बैवर्ण्य गद गद बाक्यादि अनुभाव, आवेग कंप अप्समारादिक संचारी भाव, भय स्थायी भाव । कज्जल वर्ण कालदेवता ।

।। कवित्त ।।

घोर घोर बदन रदन भुजदंड वेष,
घोर धुनी सोहैं संग सभा जातुधानि की ।
कारे कारे विकट कठोर अंग भारे भारे,
उपमां कराल महाकाल के समान की ।
चपला - सी चपल चलावै बहु ओर द्रष्टि,
कहति गुबिंद भरी गरब गुमान की ।
अैसे दुरबुद्धी दुराचारी दुष्ट रावन कौं,
बाग मैं बिलोकि भई कंपमांन जांनकी ।। १६२ ।।

इहां सीताजू आश्रयालंबन, रावन बिषयालंबन ताकी घोर चेष्टा उद्दीपन, वैबर्ण्य अनुभाव जानि लीजै । कंप संचारीभाव, भय स्थायीभाव ।

अथ वीभत्स रस

जुगुप्सा की वृद्धि तैं प्रगट होइ अलौकिक वस्तु जो मन मैं, सो वीभत्स। मसान भूमि प्रेतादि आलंबन, आंत बिदारणादि उद्दीपन, नेत्र निमीलन रोमांचादि अनुभाव, आवेगादि संचारीभाव, जुगुप्सा स्थायीभाव। नील बर्ण। महाकाल देवता।

।। कवित्त ।।

कमल करनि के गुविंद करणाभरण,
आंतनि के डोरा मंगलीक जे धरत हैं।
नसा जाल आभूषन साल गज षाल माल,
रुंडनि की मुंडनि की गैंद उछरति है।
श्रोनित के अंग राग चरबी महा मद कौं,
प्याले षोपरीनी के मैं पीवति फिरति है।
भाय भरी भूत भाम भूतनि सौं भेट,
भारत मैं भली भांति भांवरें भरति हैं।। १६२।।

इहां प्रेतादि बिषयालंबन, देषनवार आश्रयालंबन, आंत बिदारणादि उद्दीपन, देषनि वारेनि के अंगनि मैं रोमांच, नेत्र निमीलनादि अनुभाव अरु आबेगादि संचारीभाव जानि लीजै। जुगुप्सा स्थायीभाव।

अथ अद्भुत रस

आश्चर्य की वृद्धि तैं प्रगट होइ अलौकिक वस्तु जो मन मैं, सो अद्भुत रस। बिलक्षण बस्तु आलंबन ताकै गुन उद्दीपन, संभ्रमादि अनुभाव, बितर्क हर्षादि संचारी भाव, बिस्मय स्थायी भाव। पीत बर्ण। मदन देवता कोऊ ब्रह्मा हूं कौं कहैं हैं।

।। सवैया ।।

वावन[1] रूप अनूप उहै असुरेंद्र के, द्वार गयौ ह्वै भिषारी।
मांगी मही पग तीन गुविंद छली, छिन मैं वढ़िगौ अति भारी।

---

1 अ० 'बावन';

एकहि यौं पग पेलि पताल, दुती पग मैं इल संपति सारी ।
अद्भुत कौतुक देषि भयौ विसमै, वलि भूपति बिक्रम धारी ।। १६४ ।।

इहां वलि आश्रयालंबन, बावन विषयालंबन ताकौ बढ़िवौ उद्दीपन, संभ्रम अनुभाव, बितर्क हर्ष संचारीभाव जानि लीजै । विस्मय स्थायी भाव असें औरहू ठौर जथा संभव जानि लीजै । सो अद्भुत चार प्रकार-अत्युक्ति, चित्रोक्ति, भ्रमोक्ति, बिरोधाभास, अथ अत्युक्ति। अर्थ कौ अतसै बर्नन कीजै सो अत्युक्ति ।

।। सवैया ।।

सबही के सहाय गुबिंद सदां, भगवान बराहावतार हरी ।
धसि सिंधु कलेस कैं ल्याये मही, निज दंत पैं देषि कैं दुष्ष भरी ।
जिहि हार उडग्गन दर्पन चंद, कदंब्यनी बिंदुका भाल धरी ।
श्रुति भूषन शूर सही सुरवाहिनी, मालती माल रसाल करी ।। १६५ ।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

आई वरसांनैं तैं बुलाई वृषभान सुता,
निरषि प्रभानि प्रभा भानु की अथै गई ।
चक्क चकईनि कौं चुकाये चक्षु चितै चारु,
चौंकत चकोर चका चौंधी-सी चकै गई ।
नंदजू के नंदन कैं नैंननि अनंदमई,
नंदजू के मंदिरनि चंदमई छै गई ।
कंजनि कलिनुमई कुंजनि अलिनुमई,
गोकुल की गलिनु नलिनु मलिन ह्वै गई ।। १६६ ।।

अथ चित्रोक्ति

अर्थ कौ बिचित्र बर्नन कीजै, सो चित्रोक्ति ।

।। कवित्त ।।

द्वै गिरि उगेलैं मुकतावलि तडित इक,
तामैं तैं समूह सुमननि कौ झरतु है ।

थावर ह्वै मधुकर सरद तुसार कर,
बिजन बयारि इछ्या जिय मैं धरतु है।
सोये जुग समर सरासन सिथल-बंध,
छायौ अंधकार यौं गुविंद उचरतु है।
असी छवि आली री अलौकिक बिसेष ताहि,
देषि देषि मेरो मन कौतुक करतु है।।१६७।।[1]

अथ भ्रमोक्ति

उपमेय बिषैं उपमान मांन कौं भ्रम हौई, सौ भ्रमोक्ति।

।। सवैया ।।

सूरज की किरनैं परचंड लगी, निज गंडथली मैं निहारी।
सीचत सूंडि सौं नीर निकारि, कियौ निधि तुछ्छ हुतौ अति भारी।
ता मधि पंक तहां मय नांक मैं, कंद की बुद्धि गुबिंद बिचारी।
दंत गडाई रहे सु बिनायक, होहु सहाय सदा सुषकारी ।। १६८ ।।

सोभ

आली बन माली पैं सिधारो प्यारी राधे आज,
सघन तमाली झुकी झिलमिली जाती हैं।
अंगही के सहज सुगंध अनंदमई,
भीरैं जे अलि दिनि की रंगरली जाती हैं।
ठौर ठौर मोरनि की कोरैं दरसात सोभ,
भौंरैं बैंनी ब्याल कैं नजरि छली जाती है।
चाहि चाहि चंद-मुषी चांदिनी चहूंघां चाली,
चंचल चकोरनि की चुंगै चली जाती हैं ।। १६९ ।।

मुकंद जू कौ

।। दोहा ।।

ढ़ाक कुसुम भ्रम तैं अली, परन लग्यौ सुक तुंड।
तिहि जंवूफल जानि कैं, ऊंचौ कियौ भुसुंड ।। १७० ।।[2]

---

1. अ० + प्रति में सोभ का कवित्त यहीं दे दिया गया है। जो० प्रति यह में कवित्त भ्रमोक्ति के उदाहरण स्वरूप दिया गया है।
2. अ० —"मुकंद जू कौ" दोहा अ० प्रति में नहीं है।

अथ बिरोधाभास

पद विरुद्ध अबिरुध अरथ जहां बिरोधाभास ।

केसव

।। कवित्त ।।

परम पुरुष कुपुरुष संग सोभियत,
दिन दान मति अरु दान सौं न रति है ।
सूरज कुल कलस राहु कैं रहत सुष
साधु कहैं साधु परदार प्रिय अति है ।
अकर कहावत धनुष धरैं देषियत,
परम कृपाल औ कृपान कर पति है ।
विद्यमान लोचन ह्वै हीन बाम लोचन तैं,
केसौदास राजा राम अद्‌भुत गति है ।। १७१ ।।

अथ सांतिरस

निर्वेद की वृद्धि तैं प्रगट होइ अलौकिक वस्तु जो मन मैं, सो सांतिरस । जगत की अनित्यता आलंबन, पुन्याश्रम हरि क्षेत्र उद्दीपन, रोमांचादि अनुभाव, हर्षादिक संचारी भाव, निर्बेद स्थायी भाव । चंद्र समान बर्ण । नारायण देवता ।

।। सवैया ।।

फूल प्रजंक सिला अहि हारहु, दुज्जन सज्जन हूं हितकारी ।
कीचहू कंचन कीच कपूरहू, नीचहू भूपतिहू अति भारी ।
दुष्षहू सुष्षहू मान समान, सबै न टरै मति टारी ।
बैठि कहूं बन पुन्य के मध्य प्रलापौ, गुबिंद बिहारी बिहारी ।। १७२ ।।

इहां वस्तु की अनित्यता बिसयालंबन, कहनबारौ आश्रयालंबन, पुन्य बन उद्दीपन. रोमांच अनुभाव, हर्ष संचारी भाव जानि लीजै । निर्बेद स्थायी भाव ।

अरु रस परसपर प्रगट होत है, श्रंगार तें हास्य, रौद्र तें करुणा, बीरता, अद्भुत; बीभत्स तैं भयानक, असे औरहू ठौर जथा संभव जानि लीजै।

सवैया

पंचमुषी शिव के द्रग पंद्रह, आंनि कैं मूंदि करी चतुराई।
कोमल हाथनि दक्ष सुता, सु पवित्र करै सुकृती हू सदांई।
ह्वै कर बीन नवीन बजै कहि कौ, हौं गुबिंद यहैं धुनि छाई।
मौन किये असटादस सौं सुत सोव, कृपा करि होहु सहाई ।। १७३ ।।

इहां शृंगार तें हास्य तातें अद्भुत प्रगट भयौ। पुन :

।। कवित्त ।।

रावन कुबुद्धीनें विरुद्ध हित जुद्ध मध्य,
क्रुद्ध कैं घनास्त्र रामचंद्र पै चलायौ हैं।
ताकै प्रतीकार कौं प्रभंजन प्रबल सस्त्र,
साजि कैं गुविंद चाप चाव सौं चढ़ायौ है।
सनमुष चंचला की चकाचौंधी चितै चारु,
सीता सुधि आइ कें सुरूप चित छायौ है।
गात मैं पुलक प्रेम वाढ्यौ रघुनाथजू के,
हाथ मैं सरासन सरस सिथलायौ है ।। १७४ ।।

इहां बीर तें शृंगार प्रगट भयौ ।। पुनः

।। कवित्त ।।

श्रोनित चुचात गात तात कौं सकल मात,
दीन ह्वै रुदन करें बिबिधि प्रकार है।
देषत ही अधर चवाय भृकुटी चढाय,
अरुन अरुन नैंन कीनें तिहि वार है।
क्रुद्धित अधिक जिय जुद्धनि के जैतवार,
गोबिंद बलिष्ट बीर बिक्रम अपार है।

षंडन सहस्र भुज-दंडनि प्रचंड धार,
धार्‌यौ भृगुनंद ग्रैसो कठिन कुठार है ।। १७५ ।।

इहां बीभत्स तैं ग्ररु करुणा तैं रौद्र प्रगट भयो । पुनः

।। सवैया ।।

विपरीति समैं पिक बैनी की बैनी कौ, रूप उरोजनि बीच षग्यौ ।
पिय ग्रानद नीद मैं सूंचत स्वप्न, मनौं कहु जुद्ध ही हौंन लग्यौं ।
तब ही षुली ग्रांपि मुकंद कहैं, छवि देषत ही वह ठीक ठग्यौ ।
जिय जानि कृपानि महाभय मांनि, सुग्रासन कौं तजि ऊठि भग्यो ।। १७६ ।।

इहां शृंगार तैं भयानक प्रगट भयौ । ग्रैसैं ग्रौरहू ठौर जथा संभव जानि लीजै ग्रर रसनि को परसपर विरोध हू है । शृंगार कौ, बीभत्स कौ, हास्य कौ, करुणा कौ, वीर भयानक कौ, रौद्र कौं, ग्रद्‌भुत कौ ग्रैसे ग्रौर हू ठौर जथा संभव जानि लीजै ।

।। मुकंद जू कौ सवैया ।।

चंदन चंद्रक चर्चित चारु, सरोज की सेज सुगंधित साजति ।
ता पर चंद्रिका मध्य मुकंद जू, चंदमुषी पति संग बिराजति ।
बंक लगे कुच बीच नष-छत, श्रोनत की तहं यौं छवि छाजति ।
छाती छबीली की कुंकुम पंक, ग्रलंकृत मांनौ भली विधि भ्राजति ।। १७७ ।।

इहां शृंगार मैं बीभत्स है, यह बिरोध है । ग्रैसै ग्रौर हू ठौर जथा संभव जानि लीजै ग्ररु कहू विरोध नहीं हूं है । ग्रगांगी कौ वर्नन है जहां ग्रौरु देस काल कौ भेद है तहां ।

ग्रथ ग्रंगांगी कौ बर्नन

।। सवैया ।।

जा करि कैं छवि पावति ही रसना, सु यहै कर है सुषदानी ।
जंघ उतंग उरू कटि नाभि, उरोजनि कौं परसै हौ गुमानी ।

मोचत हौ नित नीवी के बंद, गुविंद कही कहीकैं यौं कहांनी ।
भारत भूरीश्रवा भयौ भंग कटचौ, कर जोवति रोवति रानी ।।१७८।।

इहां शृंगार अंग है करुणा अंगी है असै होइ तौ दोष नहीं ।

अथ देस काल के भे[द] कौ उदाहरन

।। सवैया ।।

एक धरैं कमलांसनि पै कर, एक सुदर्शन चक्र धरै है ।
एक बिषातुर संभु के सीस समुद्र मथान मैं एक, अरै हैं ।
वेद पुरान बषानत हैं जिहि, नाम लियैं मन काम सरैं है ।
असे गुविंद चतुर्भुज राय, सहाय सदां सब ही की करै हैं ।।१७६ ।।

इहां शृंगार, रौद्र, करुणा, अद्भुत, ए च्यारि रस एक ही ठौर हैं। परि देस काल कौ भेद है यातैं दोष नही ।[1] यह असं लक्ष क्रम ध्वनि विषै रस निरूपण भयौ । अथ रस कौ कारण भाव है यातैं भाव निरूपणं देव, मुनि, राजा इन बिषयक मन की जो प्रीति सो भाव । अरु प्रधान तैं संचारी कौ निरूपण सो भाव ।[2]

अथ देव रति भाव ध्वनि

।। कवित्त।।

स्वर्ग समुद्र सैल भूतल रसातल पताल,
आदि कहूं क्यौ न जनम लस्यौ करैं ।
काहू जाति काहू पांति काहू भांति देषि देषि,

---

1. अ० + असे और हू ठौर जथा संभव जानि लीजै ।

2. अ० + सवैया
राजत भूप अनूप हिमांचल गोविंद आनंद सो वड़ भागी ।
उत्तम वात सदा सिव कीत हो नारद आनि कही रस पागी ।।
बैठी पिता ढिग पारवती सुनिकै स[ब]भांतिन सौं अनुरागी ।
क्रौडन के सत पत्र के पत्रनि नारिन वाई संमारन लागी ।

सज्जन सराहैं भावै दुर्ज्जन हस्यौ करैं ।
पूज्य अमरनि के पुरंदरादि देवनि के,
मुकट सिंघासन की सिढ़ीनु घस्यौ करैं ।
अैसे व्रज चंद श्री गुविंद के पदारबिंद,
जौ पै उर अंतर निरंतर बस्यौं करैं ।।१८०।।
स्वर्ग कौं जु चाहै सो तौ स्वर्ग ही सिधावौ किन,
पावैं किन मुक्ति जानैं मुक्ति जु बिचारी है ।
ध्यावत व्रह्म सो तौ व्रह्म ही कौं ध्यावौ जावौ,
सक्ति ही मैं मिलौ जांनै शक्ति चितधारी है ।
हौं तौ श्री गोविंद जू के पद अरिविंदनि की,
दासी सुषरासी बार बार वलिहारी है ।
मेरैं सरबस्व सरवोपर सुजान सदा,
सघन निकुंज के बिहारी पिय प्यारी है ।।१८१।।

।। राजा नागरीदास कौ सवैया ।।

जाति के हैं हम तौ ब्रजवासी रही कोउ नांहि नें जाति की वाधा ।
देस है घोष न चाहत मोष कौं तीरथ श्री जमुना सुष साधा ।
संतनि कौ सतसंग अजीवका, नित्य बिहार अहार अगाधा ।
नागर कैं कुल देव गोवर्द्धन, मौहन मित्र है इष्ट है राधा ।।१८२।।[1]

बिहारी

मेरी भव वाधा हरौ, राधा नागर सोइ ।
जा तन की भांई परै, स्यांम हरित दुति (द्रुति) होइ ।।१८३।।

अथ मुनि रति भाव ध्वनि

।। सवैया ।।

आजु भ[यौ]कृति कृत्ति महा यौं, गुविंद कहैं मम भाग जगे हैं ।
श्री मुनि नारद दर्शन तैं अघ ओघ, सबै दुष दुरि भगे हैं ।

1 अ० + नागरीदास का सवैया अलवर वाली प्रति में नहीं है ।

जद्यपि चाहौं सुनौं तब आनन उत्तम, बात हियै मैं षगै हैं ।
आंवते आपुने मंदिर मैं कहौ का कौं, कल्यान भले न लगें हैं ।।१८४।।

।। व्यास जू कौ पद ।।[1]

विहारहि स्वामी बिन को गावै ।
बिन हरि बंस राधावल्लभ कौं को रस रीति सुनावै ।।
रूप सनातन बिन को वृंदा बिपिन माधुरी पावै ।।
कृष्णदास बिन गिरधर जू कौं कौ अब लाड लडावै ।।
मीरांबाई बिन को भक्तनि पिता जानि उर लावै ।।
स्वारथ परमारथ जैमल बिन को सक बंध कहावै ।।
षरमानंद दास बिन अब को लीला गाय सुनावै ।।
सूरदास बिन पद रचना कौं कौंन कवैं कहि आवै ।।
और सकल साधू अनन्य बिन को कलि काल कटावै ।।
व्यास दास कैं इन बिन अब कौ तन की तपति बुझावै ।।१८५।।

।। कवित्त ।।[1]

पावन गुबिंद घर बगर नगर कीनौं,
दीनौं अति कृपा कैं सुहांवन दरसु है ।
हरिजू के प्यारै सब जगत तें न्यारे रहैं,
सदा मतवारे छके प्रेम सुधा रसु हैं ।
बदन निहारौं हसि आरती उतारों पद,
रज सिर धारौं वारि डारौं सरवसु है ।
भई मन भाई आये संत सुषदाई या तें,
धन्य धन्य माई मेरें आजु कौ दिवसु है ।

अथ राज रति भाव ध्वनि

श्री अवधेस कुमार तिहारे तुरंगनि की अवली बिचरै हैं ।
रेनु उडै तिन के षुर की सु चढ़े,न भयै पुनि भू पै परे हैं ।

1-1. अ०— 'व्यास जू कौ पद' तथा कवित्त अलवर वाली प्रति में नहीं दिया गया है । उसमें केवल एक सवैया ही उदाहरण स्वरूप दिया गया है ।

तातें भई अति गंग मैं कीच, कवीजन गोविंद यौं उचरै है ।
संकित भारनि धारि सकै सिव, सीस तैं धार धरा पैं धरै हैं ।।१८७।।

सेवक

।। कवित्त ।।

कीनें छत्र छिति पति केसौदास गनपति,
दसन बसन बसुमति करचौ चारु है ।
विधि कीनों आसन सरासन असमसर,
आसन कौं कीनौं पाक सासन तुषार है ।
हरि कीनौ सेज हरि प्रिया करचौ नक मोती,
हर कीनौं तिलक हरा[री]हू करचौ हार है ।
राजा दसरत्थ सुत सुनौ राजा रामचंद्र,
रावरौ सुजस सब जग कौं सिंगार हैं ।।१८८।।

।। कवित्त ।।

पायक पवन कैसे मन कैसे मीत श्री,
गुबिंद सुषदायक हैं छबि के निकेत हैं ।
मोती सिर मोतिनु कलंगी गजगाह जीन,
जटित जराय कैं जँजीरनि समेत हैं ।
चित्रित हैं चित्र चारु नृत्यत विचित्र गति,
चौपनि सौं चतुर चुरायैं चित्त लेत हैं ।
पुत्र भये आज महाराज दसरत्थ साजि,
अैसें बाजि केते कबिराजनि कौं देत हैं ।।१८९।।

अैसें हीं स्त्री पुत्रादिकनि बिषयक मन की जो प्रीति, सो भाव कहियै । अथ प्रधान तैं संचारी कौ निरुपण ।

॥ सवैया ॥[1]

राजत भूत(प) अनूप हिमाचल गोबिंद आनंद सौं बड भागी ।
उत्तम बात सदा सिव की तहं, नारद आनि कही रस पागी ।
वैठी पिता ढ़िग पारबती सुनी कैं, सब भांतिंन सौं अनुरागी ।
क्रीडन के सत पत्र के पत्रनि नारि नवाइ सँभारन लागी ॥१९०॥

इहां सिव विषै उत्कंठा भई ।

अथ रसाभास

रस सौं भासैं अरु है नही, सो रसाभास

॥ सवैया ॥

जोवन रूप अनूप भरी गन(गुन), आगरि नागरि है रस भौई ।
नाग कुमारि नरी अमरी तिहु लोक मैं अैसी तिया नही जौई ।
या मिलिवे कौ उमाह गुबिंद, सलाह यही सुनियौं सब सोई ।
बाण-प्रहार अनेक प्रकार सौं, राम किनि कोई ॥१९१॥

इहां रावण कैं प्रीति है सीता जू कैं सर्वथा नंहीं, यातैं रसाभास है ॥ पुनः

मुकंदजू

॥ सवैया ॥

कहि को बड भागी है ता बिन तू छिन हूं भरि ना सचु पावति है ।
रन प्रान तजे समुहाय सु को जिहिं तू अब ढूढति आवति है ।
जनम्यौं सुभ लग्न मै को जिहि तू मिलिवे कौं महा अकुलावति है ।
सुकृती उह कौंन मुकंद कहै जिहि मैंनपुरी तुव ध्यावति है ॥१९२॥

इहां या सामान्या की प्रीति धन मैं अरु धनीनि की प्रीति या मैं यातैं रसाभास है ।

---

1 अ०—प्रति में उदाहरण स्वरूप दिए गए ये कवित्त और सवैया छंद नहीं हैं और न इनकी व्याख्या ही दी गई हे ।

।। दोहा ।।[1]

रामचंद्र की अरि-बधू, बिहरति कपिनु समेत ।
इक कपौल इक कुच गहैं, इक भुज भरि भरि लेत ।।१९३।।

इहां एक नाइका सौं अनेक नायकनि की रति, यह अनुचित रति है, यातें रसाभास है ।

ऐसो वर्नन रस मैं कीजै नही । अरु कहूं नपुंसक कौ बर्नन होइ तहां रसाभास है । अरु एक नायक सौं अनेक नाइकानि की रति होइ तौ रसाभास नही ।

।। मुकंदजू कौ कवित्त ।।

कहूं द्रग लागे कहूं जागे कहूं अनुरागे,
कहूं रस पागे कहूं झूंठी सौंहैं खातु हौ ।
कहू घात कहूं बात कहूं मन ललचात,
कहूं कौं चलत पुनि कहूं चलिजातु हौ ।
कहू उघडत घुमडत कहूं घनस्यांम,
कहूं गरजत कहूं रंग बरसातु हौ ।
कहूं सांझ कहूं अध राति कहूं पाछि राति,
कहूं प्रात आंनि कैं मुकंद मडरातु हौ ।।१९४।।

इहां एक नायक सौं अनेक नाइकानि की रति है ऐसो होइ तो रसाभास नही । पुनः

---

1 अ—इस दोहे के स्थान पर अलवर प्रति में सोमनाथ का दोहा दिया गया है—
होरी मैं कोउ वाल के गहे उरोज गुपाल ।
तव ही काहू ग्वाल नैं आनि अमैंठयौ गाल ।।
इह अनुचित रति है ऐसो वरनन रस में कीजैं नहीं ।
व्याख्या दोनो में एक प्रकार की ही है । (सम्पादक)

॥ कवित्त ॥

उर उरझांहीं एक देति गलबांहीं अरु,
एक मन मांहीं मिलिवे कौं ललचाति है।
एक गहै हाथनि सौं हाथ एक हुलसाति,
एक गात गात सौं लपटाति है।
एक द्रग जोरैं एक भौंहनि मरोरैं एक,
जोबन के जोरैं बतराति सतराति है।
एक करैं चारी एक भरैं अंकवारी वारी,
प्यारी एक एक प्यारी देषि मुसकाति है ॥१९५॥

इहां एक ही समैं एक नायक सौं अनेक नाइकानि की रति है, इहां रसाभास नही।

अथ भावाभास

भाव सौं भासै है अरु है नही, सो भावाभास।

सोमनाथ

॥ दोहा ॥

कैसैं नृत्यत हरषि कैं, लै गति परम बिचित्र।
निकसति मूढ़ मृदंग मुष, महा मधुर धुनि मित्र ॥१९६॥

इहां चिंता वृथा है।

॥ काहू कौ दोहा ॥

दीपक[1] के भोयैं नहीं, जरि जरि मरैं पतंग ॥१९७॥
इहां उत्कंठा वृथा है।
फोदा[2] पग ऊचे करै, मति गिरि परै अकास ॥१९८॥
इहां चिंता वृथा है।

---

1 अ०—'दीपग'
2. अ० + एक प्रकार का छोटा पक्षी जो आकाश की ओर पैर करके सोता है।

ए जाडा रहि है कहां वाजति लूवां ।।१९९।।
इहां चिंता वृथा है ।[1]

अथ भाव-सांति

भाव कौ जो समन, सो भाव-सांति ।

।। सवैया ।।

केलि मैं भूलि पिया रसिया नैं तिया, ढ़िग आन कौ नाम जु लीनौं ।
सो सुनि कै अनषी बिलषी उपज्यौं, उर मैं इक भाव नवीनौं ।
मांन मनावै गुविंद तबै बहु भांति, सो भांवतौ देषि अधीनौं ।
नैंननि तें असुवा दिय डारि सु, आनन तैं हरवैं हसि दीनौ ।।२००।।

इहां हसिवे मैं ईर्षा-भाव की सांति भई ।

सोमनाथ

सजि सिंगार पिय पै गई, अति विनोद सरसाय ।
लषि सूनी सुष सेज तिय, बदन गयौ मुरझाइ ।।२०१।।
इहां हर्ष-भाव की सांति भई ।

कुलपति

सुनत बैन कछू और से, पिय सौं तकी रिसाइ ।
लषि ललेचौंहैं लोइननि, भूलि गये सब भाइ ।।२०२।।

इहां कोप-भाव की सांति भई ।

अथ भावोदय

भाव कौ जो उदय, सो भावोदय ।

1 अ०—अलवर प्रति मैं नहीं है ।

॥ सवैया ॥

विनती कर जोरि हहाकरि, पां परि बार अनेक ही ठोडी गही ।
तउ चंद-मुषि व्रजचंद गुविंद कौं, पीठि दै वैठी नई दुलही ।
हरिजू हठि रूठि कै ऊठि गये सु, लगी मन मैं पछितान सही ।
अषियां जल बाल भरी तिहि काल, सषीनि की ओर निहारि रही ॥२०३॥

इहां विषाद-भाव कौ उदै भयौ । पुनः

॥ कवित्त ॥

रूप गुन जोबन अनूप सबिलास सिवा,
सरस सुवासनि सुदेस केस भीने हैं ।
पीठि पै भ्रमर भीरि भ्रमत निसंक सोई,
सौं हीं षरे संकर बिलोकत प्रवीने हैं ।
गंग की तरंगनि के संग संग स्यांम रंग,
कहत गुविंद प्रतिविंवित नवीने हैं ।
जमुना के भ्रम तैं रसाल बाल ततकाल,
लोचन बिसाल लाल लाल करि लीने हैं ॥२०४॥

इहां ईर्षा-भाव कौ उदय भयौ ।[1]

अथ भाव संधि

द्वै भावनि कौ जो मिलाप, सो भाव संधि ।

1 अ० + यातै लाल लोचन करि लीनें । इसके उपरान्त 'अ' प्रति में सोमनाथ का यह दोहा और दिया गया है—

आयौ गोरस लैंन कौ, उह सांवरौ गुपाल ।
चहू ओर चितई चकित, अलवेली नव बाल ।

।। कवित्त ।।

आनंद के कंद श्रीगुविंद रामचंद्र चारु,
सुजस अपार कवि कौविद करत हैं ।
सीता जू सरस सुषदानी महारानी जू के,
मिलिवे कौं मन मांझ महा उमहत हैं ।
रावन के हाथनि कौ सराघात उतपात,
तातैं भांति भांति गात ताडित रहत हैं ।
अैसे रघुवीर महावीर धीर जुद्ध समैं,
दुष्ष सुष्ष दोऊ एक संग ही सहत हैं ।।२०५।।

।। विहारी कौ दोहा ।।

पिय बिछुरन कौ दुसह दुष, हरष चलन प्यौ सार ।
दुर्य्योधन ज्यौं जानियत, प्रान तजति इह बार ।।२०६।।

इहां बिषाद अरु हर्ष दोऊ भावनि की संधि है ।

कुलपति

इत गुजरन उत हरि बदन, लषे जमुन के तीर ।
रहि न सकै देषि न सकै, दुहु मिलि करी अधीर ।।२०७।।

इहां लज्जा अरु उत्कंठा दोऊ भावनि की संधि है ।

अथ भाव सबलता

पांच सात भावनि कौ जो मिलाप, सो भाव सवलता ।

।। कवित्त ।।

अैसै मैं असोकताई सोई सुषदाई कबू,
वा मुष रसीली वातैं सुनि हौं श्रवन मैं ।
मोर कर केवान वलबांन आगैं सत्रु कहा,

सीता बिन सून्यताई छाई तृभुवन मैं ।
तजी कथा ताकी छवि न्यारी है जनकजा की,
वृथा मम जीवन सु कहां गई बन मैं ।
ग्रैसें श्री गुविंद रामचंद्र जू मिलाप काज,
ग्राप ग्रति ग्रातुर ग्रनेक भांति मन मैं ।।२०८।।

इहां निर्वेद उत्कंठा गर्व भ्रममति स्मति दीनता विषाद इन भावनि कीं सवलता है ।

कुलपति

।। दोहा ।।

द्रग ललकैं राते भये, रूपे झलकै ग्राइ ।
नेह भरे लषि लोइननि, सकुचे परसत पाइ ।।२०९।।

इहां उत्कंठा, कोप, उदासीनता, लज्जा इन भावनि की सबलता है ।

कुलपति

रस साहिब सब भांति हू, कहूं भाव सरसात ।
ज्यौं सेवक के व्याह कौं, राजा चलै बरात ।।२१०।।

इति भाव ।

ग्रथ बिभाव

बिसेस भाव करि कैं ग्ररु रस कौं प्रगट करै, सो बिभाव ।

ग्रथ शृंगार के विभाव

।। दंडक छंद ।।[1]

दंपति रूप जोबन लछिन जाति जुत, सहचरी सुरभि पिक हंसवानी,

1 ग्र०—'झूलना'

फूल फल दल बिपिन बाग जल जंत्र, जल सरस जलचर कमल अलि कहानी,
मोर चातक सुवा सारिका सब्द घन, तडित धारा हरी भुव बषानी,
अमल आकास उडगन निसा चंद्रिका, चंद्र चक्कोर कुमुदिनि फुलानि,
सदन सुष सेज सुभ धूप दीपावली, षान अरु पान सब सुगंध सानी,
सुरंग भूषन बसन मृदंग वीनादि नद, नृत्य गति राग रागिनी बिधानी,
मनमथ कथादि सुबिभाव शृंगार के, सबनि मैं एक मन की प्रधानी,
रसिक जन सुनहु गुबिंद इहि बिधि कहै, सुकवि सिरमौर पंडित प्रमानी ।।२११।।

सो बिभाव दुहु बिधि--आलंवन, उद्दीपन ।

अथ आलंबन लक्षण

जाहि अवलंव्य करि कैं अरु रस प्रगट होइ, सो आलंबन ।

सो द्वि विधि-आश्रयालंवन, विषयालंबन ।

जाके देंषतैं रस प्रगट होइ, सो विषयालंवन । जाहि आश्रय करि कै रस प्रगट होइ, सो आश्रयालंवन ।

अथ विषयालंबन कौ उदाहरन

।। सवैया ।।

प्रीति ही कौ प्रति रूप सषी प्रतिबिंब सु पुन्यलता कौं सही है ।
सुंदरता कौ समूह भली विधि, नैंननि कौं अधि देवत ही है ।
अंकुर आंनंद कौ कलपद्रुम, मो मन कामना कौं दुलही है ।
मैंन के मंत्र की सिद्ध प्रसिद्ध मनौं हर प्यारी उहै सु उही है ।।२१२।।

ऐसें हीं आश्रयालंबन कौ उदाहरण जानि लीजै । आलंबन परस-पर नाइका नाइक ही है । उद्दीपन अनेक प्रकार हैं ।

अथ उद्दीपन

जो रस की दीप्ति करै, सो उद्दीपन ।

।। कवित्त ।।

सांझ समैं अंबर अरुण ताज वनिका है,
दंपति कौ प्रेम नाट्य नीकें छवि पायौ है ।
रसिक गुविंद भौर भीर कौ सरस सोर,
मंगल-चारन होत लागत सुहायौ है ।।
तारागन सुमन समूह बरसावत,
मनोज के नचायबे कौ आगम जतायौ है ।
आज रितुराज महाराज कौं रिझांवन,
सुघर सूत्रधार चारु चंद्र चलि आयौ है ।।२१३।।

इत्यादि और हू जथा सभव जानि लीजैं ।

अथ हास्यरस के बिभाव

अंग वेषादिक कौ बिकार अलंकारनि की बिपरीतितादि ।

मुकुंद

।। सवैया ।।

निज छांह कौं देषत रीझत है, पुनि हाथ उठाय कपावतु हैं ।
सिर चालन कैं मुष मोर चलै, सब अंगनि कौ मटकावतु हैं ।
चुटकी दै षुजावत कान फिरै, फिरकी लियै लंक लचावतु है ।
इमि नंदकुमार अनेक प्रकार, मुकंद विनोद दिखावतु है ।।२१४।।

अथ करुणा रस के बिभाव—श्राप, क्लेश, बंधन व्यसन, प्रियनष्टतादि ।

मुकंद

।। सवैया ।।

सानुज राम गुविंद सिया, बन कौं गये छाडि यहै रजधानी ।
सोक भयौ सिगरी नगरी मैं, वढ़ो उतपात महा दुषदानी ।

प्रान पयान करचौई चहैं न, रहैं यौं कहैं नृप दीन ह्वै वांनी ।
एकहू मेरी न मानी तवै तू, प्रसंन भई अब कैकैई रानी ।।२१५।।

अथ रौद्ररस के भिवाव

आयुधनि कौ त्रिस्कार, निठुर बाणी-श्रवन, सत्रु-दर्शन, संग्राम दर्शनादि ।

।। कवित्त ।।

कहत गुविंद जग बंद भृगुनंदन जू,
मेरे जानि तुम्हरी कुठार धार राति है ।
प्रगट करति अंधकार की विसेष रेष,
सत्रुनि के हृदै मैं व्यथा कौं उपजाति है ।
वद्ध किये क्रुद्धित ह्वै जुद्ध मैं विरुद्धिनी के,
मद्दित दुरद्दनि के कुंभ केऊ जाति है ।
तिन तैं निकसि मुकतावलि उडावलि सु,
बिषरी सरस दिसि दिसि दरसाति है ।।२१६।।

अथ वीर रस के विभाव

उत्साह बिस्मय मोह अविषादादि ।

।। सवैया ।।

एहो गुबिंद डरावण रावण, जीति कैं लोक कियेॅ॥बस तीनौं ।
सीस दसौं भुज बीस हथ्यार, भयानक भेष कौं धारिजु लीनौं ।
सौ अब क्रुद्ध ह्वै जुद्ध मचावत, आवत संकहि देत न बीनौं ।
राम प्रसंन मुषी मुष तै, मृदुहास स्वरूप ही उत्तर दीनौं ।।२१७।।

अथ भयानक रस के विभाव

सिंघ सर्पादिक भयानक वस्तुनि कौ दर्शन, प्रेत-संगम, मसान-भूमि इत्यादि ।

।। कवित्त।।

जिह्व[1] छुरी धार औ जँभात बार बार बार,
उग्र निग्म गोविंद नषावली प्रकास मैं ।
भृकुटी कराल बिकराल मुष वड़े दाढ़,
दंत कट-कटत बिकट्ट कट्ट हास मैं ।।
प्रलैकाल अग्नि ज्वाल झाल श्रैसे लाल नैंन,
संपासी चपल द्रष्टि चलै आसपास मैं ।
भांति भांति भीम भेष देषि श्री नृसिंघ कौं,
कपे हिरण्यकस्यप के अंग अंग वास मैं ।।२१८।।

अथ वीभत्स रस के विभाव

दुर्गंध वस्तुनि कौ दर्शन उद्वेजनादि

।। कवित्त ।।

विहरैं भवानी भव भूमि समसान की मैं ।
संग श्री गुबिंद भक्त बिबिधि प्रकार हैं ।
नसा जाल आभूषन अंग राग श्रोनित के,
करन करीनि के करनि लिये थार हैं ।।
भरि भरि अधर असोक फूल दंत कुंद,
हाथ जल जात बरसात बार बार हैं ।
पूत भूत प्रेतनि पिसाचनि के प्रीति सौं,
पुरारि जू कैं आगै श्रैसैं नृत्यत अपार हैं ।।२१९।।

अथ अद्भुत रस के बिभाव

कारज कें अनुकूल चातुरी अनौषी बाणी माया इंद्र-जालादि ।

---

1 प्र० 'जीभ'

॥ सवैया ॥

देषत ही बिसमै करि डारै, नृसिंघ कौ रूप अलौकिक माई ।
तीक्षण नौंक अयालनि की अति है, कहै कौ लौं गोविंद बडाई ॥
पेट फट्यौ निधि कौ तिन तैं कढि कैं पुनि आंत सु बाहिर आई ।
सो अब दामिनि ह्वै दमकै दसहू दिसि डोलति देत दिषाई ॥२२१॥

॥ इति बिभाव ॥

अथ अनुभाव

रस के अनुभव कौ प्रगट करै, सो अनुभाव ।

अथ शृंगार रस के अनुभाव

नेत्र मुष प्रसन्नता मृदुहास मधुर वाणी धृति प्रमादादि ।

॥ सवैया ॥

मृग षंजन गंजन रंजन नैंन, सुअंजन की पुनि रेष दई ।
मन कौं सब भांति प्रसन्न करै, बचनामृत रचनां जू नई ।
कबि गुविंद और कहा बरनैं, सुषमां अंग अंग अनूप ठई ।
मृदुहास ही उत्तर दै पिय कौं, भ्रुव वाक बिलासनि सौं चितई ॥२२२॥

अथ हास्य रस के अनुभाव

बिकृत आकार बान वाक्य अंग बेषादिक कौ बिकार ।

॥ सवैया ॥

षोपरी के पपरानि दिपावलि शंभु, करि कइलास मैं माई ।
चंद अमंद कीजे रसमी सु गुविंद, अनंद सौं बाती बनाई ।

नागनि के फन की मनि दीप सिषा कैं, जगामग जोति जगाई ।
मित्र के ग्रैसें चरित्र बिलोकि, उमां कौं हसी मुष ग्राई ।।२२३।।

ग्रथ करुणा रस के ग्रनुभाव

।। सवैया ।।

निःश्वास, ग्रश्रुपात, मोह, बिलाप, देह व्यथा, मुष-सुष्कादि ।

ब्रजचंद गुबिंद गये जब तें, बिरहानल ताप तई सु तई ।
मुदरी ग्रंगुरीनि की उद्धवजू, इन कंकन रीति लई सु लई ।।
जल धार धरा पै धरें ग्रषियां, निस बासर नीद गई सु गई ।
कुच कुंकुम भोजि रही सु रही, उर पीर ग्रनेक भई सु भई ।।२२४।।

ग्रथ रौद्र रस के ग्रनुभाव

नेत्र मुष ग्ररुणता, ग्रोष्ट पीडन, दंत कटकटाहट, ग्राकुलता, सस्त्र-प्रहारादि ।

।। कवित्त ।।

क्रुद्धित ह्वै ग्रधर चवाय द्रग ग्ररुणाई,
भीम भयकारी भारी भृकुटी चढाय कैं ।
जुद्ध मैं विरुद्धी दुरबुद्धिनि के जे दुरद्द,
बिंधि रुद्ध से दिये ग्रकास कौं बगाय कैं ।।
कहत गुबिंद भीरि भृंगनि की भीत भई,
गंडथली छंडि उडी ग्रति ग्रकुलाय कैं ।
मेरे जानि संक दै कलंक की लपट लगी,
निपट निसंक ह्वै मयंक ग्रंक जाय कैं ।।२२५।।

ग्रथ वीर रस के ग्रनुभाव

सूरता, धीरता, प्रभाव, पराक्रम, पराक्षेप बाक्यादि ।

।। कवित्त ।।

जुद्धनि की दीक्षानि कौं दानि महा अभिमानी,
सोई इंद्रजीत अगवानी इहि बार है ।
ताके दुहु पछि्छनि कौं रावन रछक प्रति–
पछि्छनि के पछि्छ कौ बिपछि्छ करतार है ।।
श्री गुविंद अंगदादि भट भयभीत होत,
बार बार कहैं अैसैं अंजनिकुमार है ।
सुनि सुनि संध्या के करत रामचंद्र जू कैं,
भयौ बाय कुंभक मैं कछु न बिकार है ।।२२६।।

अथ भयानक रस के अनुभाव

सवैया

प्रगटे नरसिंघ सुरासुर कैं बिसमै, सब भांति बढ़ाइ दिये ।
कहि गोबिंद रूप कराल अयालनि के, अति तीक्षरण अग्र किये ।।
तिन तें उड मंडल पात दिषात हलावतु हैं सब ही के हिये ।
प्रहलाद भयौ भयभीत उहै, छबि देषत ही द्रग मूंदि लिये ।।२२७।।

अथ वीभत्व रस के अनुभाव

संपूर्ण अंगनि कौं सकुचावनौं निष्टीवन उद्वेजनादि ।*

।। सवैया ।।

रूप अनूप धरयौ नरसिंघ अभै बर गोबिंद भक्त कौं दीनौं ।
तीछन सस्त्र नषावलि के सजि, सत्रु कौ पेट बिदारन कीनौं ।।

---

* अ० प्रति में लिपिकार की लेखनी द्वारा यह पंक्ति काटी हुई है ।
(पत्र सं. ३४)

आनन मध्य जँभात समैं रबि कौ, तन नैंन निहारि नवीनौं ।
ग्रास सुरारि के श्रोनित कौ जिय जानि, रमा मुष कौं ढ़कि लीनौं ।।२२८।।

अथ अद्भुत रस के अनुभाव

स्वर भेद, देह कंप, नेत्र चकितता, हाहाकार, साधुवादादि ।

सवैया

सूर सधीर उदार अनूपम अर्जुन, भूप भले वडभागी ।
कीरती कौ लौं गुविंद कहैं दसहू दिसि जोति जगामग जागी ।।
तोसर आगैं निवात कवच्च अवद्ध चमू मरिगी कछु भागी ।
सो छबि देषत देवनि के द्रग की, पलकैं अजहूं नहीं लागी ।।२२९।।

।। इति अनुभाव ।।

अथ सात्विक भाव

विशुद्ध सत्व तैं प्रगट्यौ जो मन कौ बिकार, सो सात्विक भाव ।

सो अष्ट बिधि—१. स्तंभ, २. स्वेद, ३. रोमांच, ४. स्वरभंग ५. कंप, ६. बैबर्ण्य, ७. अश्रु, ८. लीनता ।

अथ स्तंभ

गति कौ रुकिबौ, सौ स्तंभ ।

।। सवैया ।।

पीन नितंब महा कटि छीन सु, अंगनि मैं अति कोमलताई ।
तैसोई भार उरोजनि कौ उर पैं, सिर केसनि की सरसाई ।
का बिधि जैबौ बनैं अपने घर, देह दसा छलकैं छवि छाई ।
मंद हसी व्रजचंद गुविंद की, देषि भई सु कही नहि जाई ।।२३०।।

मतिराम

देषत ही मतिराम रसाल गही, मति प्यारी की प्रेम नैं गाढी ।
चाहिवे की चित्त चाह भई पै गई, हिय तैं कुलकानिन काढ़ी ।
संग सषीनि कौं जानि दुरावति, आंनन आंनद की रुचि बाढ़ी ।
पाइ परे मग मैं नमरूकैं भई, तब लाजनि कैं मिस ठाढ़ी ।।२३१।।

अथ स्वेद

हर्ष तैं प्रस्वेद जुक्त जो अंग, सो स्वेद ।

।। सवैया ।।

स्वेद के बुंद लसैं तन मैं पुनि, कुंचित केसनि की सरसाई ।
मांनौं फनिंद के नंद अमीहित, इंदु पैं आनि रहे मडराई ।
त्यौं श्रम के जल कै कनके कुच के, पर गोबिंद यौं छबि छाई ।
मैंन मनौं मन रीझि अलौकिक, फूलनि की बरषा बरषाई ।।२३२।।

मतिराम

किंकिनी नेवर की झनकारनि चारु, पसारि महा रस जालहि ।
काम-कलोलनि मैं मतिराम कलानि, निहाल कियौ नदलाल हि ।
स्वेद के वुंद दिपै तन मैं रति, अंतर ही लपटाय गुपाल हि ।
मांनौं फले मुकताफल पुंज सु, हेमलता लपटानी तमालहि ।।२३३।।

।। दोहा ।।

कुच तैं श्रम जलधार चलि, मिली रुमावलि रंग ।
मनहु मेरु की तरहटी, भयौ सितासित संग ।।२३४।।

विहारी

रहौं लषे वैंनी गुही, गुहवे के त्यौं नार ।
नीर चुचावन ह्वै गये, नीठि सुषाये बार ।।२३५।।

अथ रोमांच

रोमांच रोम हर्ष ।

॥ सवैया ॥

सीतल भूतल कुंज की त्यौं ही गुबिंद, कलिंदी की सीतता वाढ़ी ।
सीतल कुंद की चंदन की अरबिंद के वृंद की गंध जु गाढ़ी ॥
सीतल चंद्र की चंद्रिका चारु बयार, तुसार मैं बोरि कैं काढ़ी ।
यातैं अलीरी कपोल थली मैं भली बिधि होति रुमावली ठाढ़ी ॥२३६॥

अथ स्वर भंग

मद तैं बाणी कौ जो भेद, सो स्वरभंग ।

॥ सवैया ॥

बोलत ही लषि लै हैं सुजान गुबिंद, यौं चंद-मुषी जिय जानी ।
नैंन नवाइ लिये पलकैं जुत सो छबि, क्यौं हू न जाति वषानी ॥
घूंघट के पट सौं मुष ढ़ांपि अली, इमि चातुरता अति ठांनी ।
मौंहनी मौंहन देषत ही मुष, मौंन रही न कही कछु वानी ॥२३७॥

मतिराम

जाहि लै आई अलि रति मंदिर, जाकी लगै रति ज्यौं परछांहीं ।
आय गये मतिराम तहीं जिनि, कोटिक कांम-कला अवगांहीं ॥
देषत हीं सिगरीं वेटरीं पकरी, हसि कैं तिय की पिय बांहीं ।
लाजनि तैं मतिमंद भई, कही मुषचंद मरू करि नांहीं ॥२३८॥

॥ दोहा ॥

कहा जनावति चातुरी, कहा चढ़ावति भौंह ।
अध निकरे अषरानि तैं, सौंहैं कीजति सौंह ॥२३९॥

अथ कंपा

अनुराग तैं कंपमान जो अंग, सो कंपा ।।

।। कवित्त ।।

सरस रसाल माल मुहि पहराइबे कौं,
गुहि गुहि ल्यावत गुबिंद बल बीर है ।
बन उपबन घन बीनत फिरत फूल,
बनि बनि रैंनि दिना जमुना के तीर है ।।
कोमल कमल पग कंटक अटक कौ न,
करत अँदेसौ ग्रैसो चित्त अति धीर है ।
ग्रैयै यह वैरिनि समृति सौति हौति ग्रांनि,
कौतुक से करति कपावति सरीर है ।।२४०।।

मतिराम

।। सवैया ।।

इंदुमुषी अरबिंद की माल ही, गुंदति रूप अनूप निहारचौ ।
काम सरूप तहीं मतिराम, अनंद सौं नंदकुमार सिधारचौ ।।
देषत कंप छुटचौ तिय तन यौं, चतुराइ कौ व्यौंत बिचारचौं ।
सीरौ सरोज लगै सजनी कर, कंपत हार न जात संवारचौ ।।२४१।।

।। दोहा ।।

लाल बदन लषि बाल के, कुचनि कंप रुचि होति ।
चपल होत चकवा मनौं, चाहि चंद की जोति ।।२४२।।

विहारी

कारे वरन डरांवनें, कत आवत इहि गेह ।
कै बा कह्यौ सषी लषैं, लगै थरहरा देह ।।२४३।।

अथ वैवर्ण्य

मुष-सोभा पलटै, सौ वैबर्ण्य ।

।। कवित्त ।।

सघन निकुंज मंजु गुंज अलि पुंजनि की,
कंजनि की सैंनी सनी सरस सुबास है ।
ता पै इंदुमुषी अरबिंद नैंनी आनँद सौं,
रसिक गुबिंद संग करति बिलास है ।।
एते मैं अचानक ही काननि मैं परी आंनि,
निपट कठोर कूर कुक्कट की भास है ।
ताही छिन मंद मुष सुंदरी कौ भयौं ज्यौं,
दिवेंद्र के उदोत होत चंद्र कौ प्रकास है ।।२४४।।

मतिराम

छल सौं छबीली कौं सहेली सु लिवाइ लांई,
ऊपर अटारी चढ़ि रूप रच्यौ ष्याल कौ ।
कवि मतिराम भूषननि की झनक सुनि,
चाय भौ चपल चित्त रसिक रसाल कौ ।।
आलीं चलीं सकल बिलोकिवे कौ मिसु करि,
आवत निहारि रूप मदनगुपाल कौ ।
लालन कौ बदन सु इंदु सौ बिलोकि अर-
बिंद सौ बदन कुमिलाइ गयौ बाल कौ ।।२४५।।

।। दोहा ।।

बाल रही इक टक निरषि, लाल बदन अरबिंद ।
सियराई नैंननि परी, पियराई मुष चंद ।।२४६।।

अथ अश्रु

हर्ष तें प्रगट होइ जो नेत्र-जल, सो अश्रु ।

॥ कवित्त ॥

उज्जल अवास सुष-सेज औ सुबास लषि,
अमल अकास औ प्रकास चारुचंद कौं ।
कोकिल की बानी सुनि कीर की कहानी सुनी,
सुनि कैं अलाप अली आलिनि के बृंद कौं ।
आवति विलौकि मित्त हित सौं हरषि चल्यौ,
इंदीबर नैंननि प्रबाह मकरंद कौ ।
परत उरोजनि पै आनि आनि मेरे जानि,
उर सौं कहत आछैं गुबिंद कौं ॥२४७॥

मतिराम

वैठे हुते लाल मन मौंहन मोहिनी बाल,
छिनक सकोच राषैं गुरजन भीरि (कौ) ।
कबि मतिराम दीठि और की बचाय देषैं,
देषत ही और भये राषैं अवधीर कौ ।
तनु की सँभार भूली मन की तरंग फूली,
आँषिन मैं छायौ पूर आनंद के नीर कौ ।
उंमगि हिये तें आयौ प्रेम कौ प्रवाह या तें,
लाज गिरि गई जैसें तरु गिरै तीर कौ ॥२४८॥

॥ दोहा ॥

विन देषैं दुष के चलैं, देषैं सुष के जांहि ।
कहौ लाल इन द्रगनि के, असुवा क्यौं ठहरांहि ॥२४९॥

अथ लीनता

हर्षं तैं अंगनि की जो नष्ट चेष्टा, सो लीनता ।

॥ कवित्त ॥

मुषहि नवायौ नही सिर कौं कपायौ नही,
तन न चलायौ सिथलायौं न बसन कौं ।
मुरि मुसकायौ नही पुनि कछु गायौ नही,
भाव कौं बतायौ न सुनायौ न बचन कौं ॥
आंषैं मटकाई नही भृकुटी चढ़ाई नही,
कहत गुविंद गह्यौ गाढ़ें प्रेमपन कौं ।
जकी थकी रही री दुलारी सुकुमारी प्यारी,
देषि सुषकारी श्री बिहारी के बदन कौं ॥२५०॥

मतिराम

॥ सवैया ॥

जा छिन तैं छवि सौं मुसकात कहूं, निरषे मतिराम बिलासी ।
ता छिन तैं मन हीं मन मांझ पिवै, मधुरी मुसकानि सुधा-सी ॥
नैंन निमेष न लागति नैंक चकी, चितवै तिय देव तिया-सी ।
चंदमुषी न हलै न चलै निरबात, निवास मैं दीप सिषा-सी ॥२५१॥[1]

ए सात्विक भाव अनुभाव ही हैं, इन सौं कोऊ संचारी हूक है हैं ।

अथ संचारी भाव

बिना नियम सब रसादिकनि मैं संचरैं, सौ संचारी भाव ।

---

1 अ० + अतिरिक्त —

तो मैं अनमिष नैंनता, मोहै मूरति मैंन ।
अनमिष नैंन सुनैं न ये, देखत अनमिष नैंन ॥

॥ कवित्त ॥

आदि निर्वेद संक श्रम औ समृति चिंता,
त्रास तर्क नीद स्वप्न दीनता विषादि ग्लानि ।
अवहित्था आलस अपसमार मोहावेग,
कोप उनमाद व्याधि जडता मरन मानि ॥
काल्हि लौं ए भाव भये आज भाव नये नये,
हर्ष गर्व मति औ असूया मति धृति जानि ।
चंचलता बीड़ा वोध उतकंठा उग्रता,
गुबिंद रामचंद्र जू ए मेरैं उर होत आनि ॥२५२॥

अथ निर्वेद

अपमांन तैं अथवा तत्वज्ञान अपनपे कौ जो निदरिवौ, सो निरबेद ।

॥ कतित्त ॥

प्रथम अजोज्ञ यहै रावरण कें सत्रु सोऊ,
तापस गुबिंद पुनि आनि ठाढ़ौ द्वार है ।
एते पै असुर-कुल सकल बिनासै मोहि,
जीवत ही ऐसी होति बिबिधि प्रकार है ॥
धिक इंद्रजीत कौं जगायौ कुंभकरण सु,
करि है कहा धौं अब याहू कौं धिकार है ।
स्वरग गमैंटीकी विजै तैं गरबित अति,
ऐसे इन भुजनि धिकार बार बार हैं ॥२५३॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

हित-रस ठान्यौं न भगति-रस जांन्यौ नही,
भयौ न निकाम लीन भयौ नही काम सौं ।
वाला उर राषी नही राषी नही माला उर,
स्यांमा सौं सनेह न सनेह घनस्यांम सौं ॥

सेये न नितंब न उतंग शृंग गिरि के न,
मानी रति धाम सौं न मांनी कुंज धाम सौं ।
भूमनि भूमायौ यौं ही जनम गमायौ मन,
रामा सौं रमायौ न रमायौ मन राम सौं ।।२५४।।

अथ संका

आपने किये दोष तें प्रगट भयौ जो अनर्थता कौ जो चिंता, सो संका ।

।। सवैया ।।

कलत्र जु सत्रु की आई सु आई, भरी गुन जोबन रूप महा ।
पुनि संग ही सत्रु हू सस्त्र लियें इत, आये सु आये ही लैंन लहा ।।
रति कें रघुनंदन सिंधु कौं वांधि, गुबिंद चमूं सजि कें दुसहा ।
धनु वांन लै लंक मै ग्रंहै निसंक न, जानियैं ता छिन ह्वै है कहा ।।२५५।।

अथ श्रम

पराभव तें प्रगट्यौ जो चित्त मैं षेद, सो श्रम ।।

।। कवित्त ।।

छाडि घर नगर डगर लीनौं कानन कौं,
गात जलजात कै से पात सकुचात हैं ।
मृदु पद कंजनि उलंघे कोस द्वैक जवै,
गोरी भोरी वूझै यह प्रीतम सौं वात है ।
अवजु कितेक दूरि दंडक सघन वन,
सुनत गुबिंद नैंन नीर सौं चुचात हैं ।
गहैं निज हाथनि सौं हाथ रघुनाथ ग्रैसें,
सीताजू के साथ अकुंलात चले जात हैं ।।२५६।।

अथ स्मृति

समान बस्तु देषे तें पूर्व बस्तु को जो स्मर्ण, सो स्मति ।

।। सवैया ।।

रैवतकाचल मैं जल-केलि करें, जदुवंस के लोग लुगाई ।
चंदमुषी मकरंद भरचौ अरविंद, लै कोऊ कढ़ी सुषदाई ।।
सो लषि रीझि गुबिंद उहै सुधि सिंधु,मथान की कीनी कन्हाई ।
अैसैं हीं सिंधु तैं सिंधु-सुता हू लियैं, कर बारिज बाहिर आई ।।२५७।।

अथ चिंता

अप्राप्ति वस्तु कौ जो ध्यान, सो चिंता ।

।। सवैया ।।

सानुज राम गये मृग संग गुविंद, अकेली सिया सुकुमारी ।
सामुहैं देषि वुरे मुष रावण दुष्ट, औ भेष भयानक धारी ।।
ब्याकुल भीत सबै अँग अंग, उपाय कछू न बनैं सुषकारी ।
लीनैं सँकोचि बिलोचन ता छिन, सोच भयौ उर मैं अति भारी ।।२५८।।

अथ त्रास

उतपात तैं चित्त कौं जो छोभ, सो त्रास ।

।। सवैया ।।

सुक सारण दूत सुरारि सबै, कपि सैंन की लैंन सुधी पठये ।
दोऊ बंदर रूप धरें बिचरें सु, बिभीषन नैं पहचानि लिये ।।
गहि बांधि कैं रीस ह्वै कीस सबै, डरपावत एक तै एक नये ।
रघुनंद गुबिंद पै जात उहै, अकुलात महा भयभीत भये ।।२५९।।

अथ तर्क

संदेह तैं प्रगटचौ जो मन कौ बिचार, सो तर्क ।

॥ सवैया ॥

भान पयान[1] कियौ असमान तैं, दूसरौ रूप धरैं किधौं सोहै ।
मूरतिवंत कृसान किधौं निरधूम, प्रभा सब कौ मन मोहै ॥
भानु चलै तिरछी गति ऊरध जात कृसान विष्यात सु तोहै ।
फैलत आवत भूलत आप अमंद, गुबिंद न जानियै कोहै ॥२६०॥

अथ नीद

चिंता आलस तैं अंतहकर्ण की जो गुप्ता, सो नीद ।

॥ सवैया ॥

अर्थ समर्थ निरर्थक हूं पद, आलस के भरे अक्षर भारी ।
नींद मैं श्री व्रजचंद गुबिंद कह्यौ, मुष नाम सिया सुकुमारी ॥
सो सुनि राधिका नागरि कैं बढ़िगौ, उर मैं अति संसय भारी ।
भोर भयैं हसि कैं बस कैं रिस कैं, पिय कौं डरपावति प्यारी ॥२६१॥

अथ स्वप्न

मिद्धा नारी कौ अरु मन कौ जो संजोग, सो स्वप्न ।

॥ सवैया ॥

सुष-सेज पै सोवत सुंदरी सुंदर, प्रेम छकी छबि पावति है ।
सुपनै मधि कंत इंकत बिलोकि, मुदे द्रग ही मुसकावति है ॥
कल कोक कलानि के भेद बिभेद, गुबिंद अनंद बढ़ावति है ।
अधरामृत पीवति प्यावति मानौं, भुजा भरि कंठ लगावति है ॥२६२॥

अथ दीनता

दरिद्रादिक तें प्रगटी जो चित्त मैं बिकलता, सो दीनता ।

---

1. अ० 'भयान'

षाट परचौई रहै घर मैं पति, है घर छप्पर जीरन धारी ।
पूत प्रवास सगर्भ बधू सुत हौंन की है दिना द्वैं मैं तयारी ।।
कीजै उपाय कहा इहि औसर, गोबिंद की गति है कछु न्यारी ।
ऐसी दसा अपनी लषि कैं उर, सास कैं त्रास भयौ अती भारी ।।२६३।।

अथ बिषाद

उपाय के अभाव तैं प्रगट्यौ जौ बल नास, सो बिषाद ।।

।। सवैया ।।

सागर के तट पैं इक सैल पैं सीता कौं, सोध सँपाति सुनायौ ।
सुंदर बात सुनैं कपि वृंद के मध्य, गुबिंद अनंद ह्वै आयौ ।।
सिंधु अगाध बिलोकत चित्त, उलंघंन कौं अति ही ललचायौ ।
छाडि कैं आसनं निरास उसास लै, ह्वै कैं उदास महा दुष पायौ ।।२६४।।

अथ ग्लानि

बीर्ज नास तैं प्रगट्यौ जो चित्त मैं षेद, सो ग्लानि ।

।। सवैया ।।

मृदु कंज कली मसली के समान, प्रभा अंग अँगनि की दिषई ।
रुचि सैंन सनान की भोजन की, गुरु लोगनि के कहिवे तैं लई ।
निकलंक मयंक कपोल प्रभा, गज दंत के टूक नये ज्यौं ठई ।
व्रजचंद गुबिंद तिहारे मिलैं, व्रज भामिनि की गति ऐसी भई ।।२६५।।

।। लाल कौ कवित्त ।।

बिबिधि कलानि केलि कीनी रस भीनी अति,
रंगति सनी सब रजनी बितै रही ।
अर सौंहै गात हरि प्रात उठि जात लषि,
तिय की बदन दुति जानैं को कितै रही ।।
फिरि मिलिवे कौं कह्यौ चाहै पै कह्यौ न जाइ,

बांह परिरंभन के चाव कौं रितै रही ।
तरुन तपन ताप तापित कुरंग रुचि,
लोचननि लाल मुष चंदहि चितै रही ।।२६६।।

अथ अवहित्था

आकार दुरावनौं, सो अवहित्था ।

।। कवित्त ।।

छाडि घर बगर नगर तव सौं दरहू,
जाइ गही पाय रैंन रिपु बलबांन की ।
सोऊ श्री गुविंद सिंधु सेत बांधि आयौ धायौ,
जुद्ध का क्रुद्ध ह्वै सजैं कबांन बान की ।।
सुष सौं बसीजै तौ सुनीजै जू सलाह यही,
ढ़ील जिन कीजै दीजै राघव कौं जानकी ।
रावण सुनत मुसकावनि-सी करि पह–
रावन सु वाकौं लग्यौ माल मुकतान की।।२६७।।

अथ आलस

षेद मैं क्रियान मैं जो अनादर, सो आलस

।। कवित्त ।।

रुकमनि रानी श्री गुविंद जू के मन मानी,
सब सुष सानी बैठी बानिक बनायकैं ।
हास कै बिलास कौं हुलास सौं हरषि हिय,
हार कौं हरत हरि हरवैंसैं आयकैं ।।
षेद सौ जनाति निज हाथनि सौं पी कौ हाथ,
पकर्यौ न जात सगरभ तन पायकैं ।
सहज सुभाय जदुराय दिसि चितै चाय,
मृदु मुसकाय रही द्रग सकुचायकैं ।।२६८।।

अपस्मार

गृहादिक भूतादिकनि के आवेस तें मन कौं जो त्रस्कार, सो अप्समार ।।

।। सवैया ।।

भूतल लागि परचौ परसिद्ध सबै, अंग मै अति पीर पिरानी ।
तुंग तरंग बिसाल भुजानि, झुलावतु है अति ही मन मानी ।।
डारतु हैं मुष तें पुनि फैंन, पुकारत है बहुभांति की बांनी ।
रोग मृगी कौ भयौ उर सिंधु कैं, आंनंदकंद गुबिंद यौं जानि ।।२६९।।

अथ मोह

अकस्मात अपूर्व बस्तु देषे तें चित्त कौ जो बिकार, सो मोह ।

।। कवित्त ।।

सिंधु मथिवे तें कढ़ी इंदिरा अनौषी लियैं,
हाथ भली कली मुकलित लजात की ।
मंद-मंद हसनि अमंद मुष-चंद अर–
विंद द्रग सुंदरता पट फहरात की ।
होइ गई जड देह इंद्रहू की रुद्रहू की,
बिधिहू की सकल सुरासुर के साथ की ।
देषत ही छबि नई मति हरि लई भई,
जकित थकित गति गोबिंद के गात की ।।२७०।।

अथ आवेग

अकस्मात कुवस्तु देषे तें मन संभ्रम होइ, सो आबेग ।

।। सवैया ।।

कज्जल रूप सबै तन तैसे, कठोर कुबाक्य नवीनें ।
रीस भरे दस सीस मुकंद सु, बीस भुजानि मैं आयुस (ध) लीनैं ।

अैसो डरावरण रावरण औचक, देषत ही मन संभ्रम भीने ।
कंप रुमालि उठी तन मैं ततकाल, अधो द्रग जानकी कीनैं ।।२७१।।

अथ कोप[1]

पराहंकार दूरि करिवे की जौ इछ्या, सो कोप ।।

सवैया

केतौ वक्यौ तक्यौ द्रोपर्दा कौ तन, ते अपने फल वेग लहैगौ ।
भीम गुबिंद विचारै मनै या अनीति कौं, कोऊ कहां धौं सहेगौ ।।
सो ही करौं अब दाय उपाय यहै, पछिताय षिसाय रहैगौ ।
भूलिहु अैसे कठोर कुवाक्य दुसासन, काहू कबू न कहैगो ।।२७२।।

अथ उन्माद

काम सोकादिक तैं प्रगट्यौ जो चित्त-भ्रम, सो उन्माद ।।

।। कवित्त ।।

लषन प्रचंड मारतंड तैं तपत तन,
तातैं चलि लीजै छांह सघन लतान की ।
यह तौ निसाकर दिवाकर न होइ अब,
कैसें लष्यौ या मैं छबि मृग कीन आन की ।।
बचन सुनत गति भई सो कही न जाइ,
श्री गुबिंद रामचंद्र सुंदर सुजान की ।
हा हा मृगनैंनी सुषदैनी मन हरि लैनी,
कहां गई कहां गई कहां गई जानकी ।।२७३।।

कौंन तुव नाथ नाथ कहाय हमैं कहीं मैं,
लषन तब दास आस है कृपानिधान की ।

1 अ०—'क्रोध' इसके पश्चात् हासिए में ऊपर लिखा है—'पराहंकार.......सो क्रोध'

कौन हम बडे तुम बडे कहा भगवान,
कौंन (भ)गवान राम जीवनि जिहान की ।।
तौ क्यौं या सघन बन बीच भटकत फिरै,
ढूढ़त हैं देबी कौं जु प्राननि समान की ।
कौन देवी जनकाधिराज तनया यौं सुनि,
कहत गुविंद कहां हाहा प्रिय जानकी ।।२७४।।[1]

अथ व्याधि

वात पित्त कफादिक तैं प्रगट्यौ जो ज्वर-विकार चित्त मैं, सो व्याधि ।

।। कवित्त ।।

सर बिलास कौ निवास कइलास श्री गुबिंद,
कहैं ठौर ठौर झरत किलाल की ।
उमया रवन निज भवन बनायौ तहां,
पवन प्रचंड चली आवति हिमाल की ।।
सीत भीत कंपित अधिक उर अंग अंग,
तातैं अति वृद्ध भई ज्वर बिकराल की ।
संकर सुघर बर ताके हरि कौं यह,
ओढ़ि लई साल वाल कुंजर विसाल की ।।२७५।।

अथ जडता

व्यवहार विषैं असमर्थ ज्ञान, सो जडता ।

।। कवित्त।।

सिंघ गही धेनु बन नंदिनी अचानक ही,
दूरि ही तैं दौरि दायौ प्राननि कौ दीनौ है ।

1. अ०—अलवर प्रति में दूसरा उदाहरण नहीं है ।

गोबिंद कृपाल भुवपाल क्रुद्ध कैं बिसाल,
जुद्ध कौं सरासन सुभट साजि लीनौं हैं ।।
निपट अनिष्ट द्रष्टि क्रूर सारदूल की,
विलोकित बिचित्र चित्त अति भय भीनौं है ।
कंक पंष नष छबि भूषित दिलीप पानि,
बान रह्यौ ऐसें ज्यौं चितेरे चित्र कीनों है ।।२७६।।

अथ मरन

मूर्छा बिसेस जो जीव त्याग तें प्रथमावस्था, सो मरन ।

मरन दसा कौ निषेध करि आये तैसें ही मरन संचारी भाव कौ निषेध जानि लीजै ।

अथ हर्ष

वांछित वस्तु की प्राप्ति तें प्रगट्यौ जो मन-संभ्रम, सो हर्ष ।।

।। सवैया ।।

फूल प्रजंक पै बैठी तिया तहां, आये गुविंद निकुंज विहारी ।
प्रीतम देषत ही हित सौं चित्त मैं, वढ़िगौ अति आनंद भारी ।।
आतुर ही मिलिवे कौं उठी सु छुटि, मुकतावलि सीस तें सारी ।
टूटी तनी अगिया की गिरयौ उर कौ, अँचरान सँभारति भारी ।।२७७।।

अथ गर्व

संपूर्ण तें अधिक वृद्धि जो अपनपे विषैं, सो गर्व ।।

।। सवैया ।।

है कर मैं कर बांन जहां लगि, टूटौ न टूटौ यहै धनु जो है ।
जाति सभा सब लैहौं सिया सु, गुबिंद चितै छबि सौं मन मोहै ।।

मो तैं न ह्वै है सुबात कितेक है, वीस भूजा सरवोपर सोहै ।
मो सम बिक्रमताई महा करि है, सु तौ या जग मै जन को है ।।२७८।।

अथ मद

मादक बस्तु तै प्रगट्यौ जो चित्त मैं हर्ष कौ आधिक्य, सो मद ।

।। सवैया ।।

मधुरी मुष हास बिलास भरी, मृदु बैंननि मैं चतुराई ठई ।
गति गूढ़ चला चल सैंननि गोविंद नैंननि मैं अरुणाई नई ।।
भृकुटी पुनि बंक नचैं सकुचैं मनु, काहू नैं सीष यहै सिषई ।
मृदु पान तैं वा मुगधातन ए छबि, आप तैं आप ही आनि भई ।।२७९।।

अथ असूया[1]

परगुन मैं दोषारोपण, सो असूया ।।[1]

।। सवैया ।।

चातूर चंद-मुषी उमया तउ, मुग्ध गुबिंद लषि परती है ।
आदर सौं सिव भाल रसाल, सदा बसिबौ करिती है ।।
बाल कला बिधु की है तहां सु तौ, सौति समान हियैं अरिती है ।
राहु कौ भाव सिला सिल सैल पैं, पारबती लिषती फिरती है ।।२८०।।

अथ मति

जथार्थ ज्ञान होइ, सो मति ।

1-1. अ०—'ईर्खा'

।। कवित्त ।।

रावण कौं संककारी लंक कौ कलंककारी,
अंक कौं निसंककारी रषवारी लाज की ।
दुष के बिनास हित पास ही प्रगट राषि,
आंनि परि औचक सकल सुष साज की ।।
रे मन तू अगनि गनैं हौं सौ अगनि नाही,
पत्री यह प्यारे की हमारे निज काम(ज)की ।
रतन जटित जोति जागि रही जगमग,
मुद्रिका गुबिंद रामचंद्र महाराज की ।।२८१।।

अथ धृति

ज्ञान तैं प्रगट्यौ जो मन-संतोष, सो धृति ।।

।। कवित्त ।।

लछिमन सक्ति षाइ जाइ पर्यौ जुद्ध मैं सु,
हा हा कार ह्वै कैं तिहुलोक घोष छायौ है ।
हलचल निज दल बिकल बिलोकि बैद,
वेग ही बुलाय लायौ अंजनि कौ जायौ है ।।
या तन की चेष्टा सम होति न मृतक कियौं.
नारी देषि सवद सुषेन नैं सुनायौ है ।
सुनत गुबिंद रामचंद्रजू के उर अति–
कोमल मैं कछुक हरष होइ आयौ है ।।२८२।।

अथ चंचलता

बिनां बिचारैं कारज मैं जो सीघ्रता, सो चंचलता।

[सवैया]

छबि छाजत राजत रावण, राज सभा सजि देषत नृत्य नयौ ।
चहुं ओर चलैं चल चांमर चारु, सिघासन आसन छत्र छयौ ।।

रघुनंद गुबिंद लियैं कपिवृंद कौं, सैल सुबेल पै ठाट ठयौ ।
लषि कैं दस सीस कौं रीस कपीस ह्वै, कूदि कैं लंका निसंक गयौ ॥२८३॥

अथ व्रीडा

धृष्टता कौ अभाव, सो व्रीडा ।

[सवैया]

फूल प्रजंक बिराजत राम, गुबिंद अनंद सौं सारँग पानी ।
संग सगर्भ सुरूप सिया पिय, रीझि कै बूझि करी सुषदानी ॥
काप(य)र चित्त की वृत्ति अबै यह, सांची कहौ वतियां मन मांनी ।
जानकी आपुनैं आंनन नैंन नवाय रही, न कही कछु वांनी ॥२८४॥

अथ बोध

प्रथम ज्ञान जो स्मरण, सो बोध ।

॥ कवित्त ॥

जदुकुल जोंई पति संग रस भोंई सोंई,
पति हू तें पीछें श्रम पाइ रति रन कौं ।
पहलैं हीं जागीं अनुरागीं उर लागी रहीं,
मुदे ही द्रगनि लेत आनद मदन कौ ॥
उरझिबौ बेसरि अलक माल माल कौं,
गुबिंद अंग अंगनि कौ वदन बदन कौ ।
मेल भलै भुजनि भुजनि कौं जथावति ही,
राषति रही री भय मानि बिछुरन कौ ॥२८५॥

विहारी

॥ दोहा ॥

सोवति लषि मन मांन धरि, ढ़िग सोयौ पिय आइ ।
रही सुपन के मिलन मिस, पिय हिय सौं लपटाइ ॥२८६॥

अथ उत्कंठा

वांछित वस्तु के मिले की जो चाह, सो उत्कंठा ।

॥ सवैया ॥

दाय उपाय बिना इहि औसर, आज अचानक ही निधि पाई ।
काहू तिया नैं पठाई किधौं यह, आपही आतुर ह्वै उठि धाई ॥
हौंनी करै अनहौंनी करै गति, गोविंद की बरनी नही जाई ।
जा तिय कौं चित चाहत हौ सु, तौ दूतिका ह्वै हित सौं इत आई ॥२८७॥

अथ उग्रता

सूरत्व करि कैं प्रगटी जो चंडता, सो उग्रता ।

॥ कवित्त ॥

बिकट सुभट्टनि के ठट्ट अति जुट्टि जुट्टि,
लंक तैं निसंक ह्वै कें चढ़ि चढ़ि धाये हैं ।
निपट प्रचंड भुज-दंडनि तैं केऊ कपि,
षंड षंड कीनैं केऊ ठौर तैं भजाये हैं ॥
सीता की समृति तैं जु क्रुद्धित बिरुद्ध हित,
जुद्ध मध्य लछन समेत छबि छाये हैं ।
इंद्रजीत रावण कौं देषत गोविंद राम–
चंद्र के अरुण अंग अंग होइ आये हैं ॥२८८॥

इति संचारी भाव ।

अथ स्थायी भाव

अविरोधी अथवा बिरोधी ए दोऊ जाहि त्रस्कार नहीं करि सकैं असौ आनंद के अंकुर कौ जो कंद, सौ स्थायी भाव । सो अष्ट प्रकार १. रति,

२. हास, ३. सोक, ४. क्रोध, ५. उछाह, ६. भय, ७. जुगुप्सा, ८. विस्मय अरु निर्वेद हू स्थायी भाव है सांति रस कौ ।

अथ रति

बांछित वस्तु बिषैं मन की जो प्रीति, सो रति ।

अथ हास

बाणी बेषादिक के बिकार देषे तैं मन कौं जो विकार सो हास ।

अथ[सोक]

वांछित बस्तु के नास तैं चित्त की जो बिकलता, सो सोक ।

अथ क्रोध

सत्रु की करी अवज्ञा तैं मन कौ जो बिकार, सो क्रोध ।

अथ उत्साह

सूरत्व करि कैं प्रगट्यौ जो कारज कौ आरंभ, सो उत्साह ।

अथ भय

सिंह सर्पादिक बिक्रत बस्तु देषे तैं मन कौ जो बिकार, सो भय ।

अथ जुगुप्सा

मलीन बस्तु देषे तैं मन कौ जो बिकार, सो जुगुप्सा ।

अथ विस्मय

चमत्कारी अपूर्व वस्तु देषे तैं मन कौ जो बिकार, सो बिस्मय ।

जा जा स्थायी भाव कौ उदाहरण जा जा के रस तें जानि लीजै ।

अथ आठ द्रष्टि स्थायी-भावनि की हैं– १. स्निग्धा, २. हृष्टा, ३. दीना, ४. क्रुद्धा, ५. तृप्ता, ६. भीता, ७. जुगुप्सिता ८. बिस्मिता

अथ आठ द्रष्टि रसन की–

१. कांता, २. हास्या, ३. करुणा, ४. रौद्रा, ५. बीरा, ५. भयानक, ७. वीभत्सा, ८. अद्‌भुता ।

अथ वीस द्रष्टि संचारी भावनि की है (२०)–

१. मरण की शून्या, २. मोह की मलिना, ३. श्रम की श्रांता, ४. लज्जा की लज्जिता, ५. संका की संकिता, ६. आलस की मुकुला, ७. चपलता की अर्द्ध मुकुला, ८. ग्लानि की ग्लाना, ९. असूया की जिह्मा, १०. स्वप्न की कुंचिता, ११. तर्क की वितर्किता, १२. कोप की अभितप्ता, १३. बिषाद की बिसन्ना, १४. वोध की ललिता, १५. आवेग की बिकटा, १६. उग्रता की बिकोपा, १७. उन्माद की बिभ्रांता, १८. अप्समार की बिच्युता, १९. त्रास की त्रसिता, २०. मद की मत्ता ।

कोऊ इन तेरह ई कौं कहैं हैं—

१. लज्जा की कूणिता, २. मोह की बिकसिता, ३. उन्माद की अर्द्ध बिकसिता, ४. त्रास की चकिता, ५. निद्रा की सुप्ता, ६. आलस की घूर्णा, ७. चिंता की अलसा, ८. ब्याधि की बिवर्त्तिता, ९. गर्व की गर्बिता, १०. मरण की सून्या, ११. मद की स्तिमिता, १२. बिषाद की विसन्ना, १३. असूया की पर्यस्था ।

इति उणंचास द्रष्टि ।

जा जा स्थाई भाव के जा जा रस के जा जा संचारी भाव के उदाहरण तैं जा जा की द्रष्टि कौ उदाहरण जानि लीजै ।

इति श्री मद्वृंदाबन चंद्र चरणारविंद मकरंद पाना नंदित अलि रसिक गोविंद कबिराज बिरचितम् श्री रसिक गोविंदानंदघने रसभाव ,विभावानुभाव, सात्विक संचारी स्थायी वर्नन नाम प्रथम प्रबंध ।। १ ।।[1]

अथ नायका नायक वर्ननं

।। दोहा ।।

बरनौं[2] नायक नायका[3], रस आलंबन जांनि ।
इन हीं तैं शृंगार रस, प्रगट होत हैं आनि ।। १ ।।

प्रथम नायका है तदपि, नायक कहौं सुजान ।
ज्यौं पहलै सूची करत, पुनि कटाह निरमांन ।। २ ।।[4]

अथ नायक लक्षण

।। केसव कौ दोहा ।।

अभिमानी त्यागी तरुन, केलि कलानि प्रबीन ।
[4]भव्य छमी सुंदर धनी, सुचि रुचि सदा कुलीन ।। ३ ।।

इत्यादि गुन संयुक्त नायका नष्ट प्रीतिवान होय, सो नायक ।

।। दोहा ।।

सब सुष सार उदार अति, चतुर चारु रिझवार ।
तन सुकुमार अपार छबि, श्री ब्रजराज कुमार ।। ४ ।।

---

1. अ०—प्रबंध के अंत में दिया गया यह विवरण अलवर प्रति में नहीं है । "जानि लीजै" के फौरन बाद ही नायक, नायिका भेद प्रारंभ हो जाता है ।
2. अ०—'कहौं'
3. अ०—'नायकनि'

4-4. अ०—'ज्यौं तकुआ पहलै करत, पुनि अहीरनि निर्नानि'

।। कवित्त ।।

तन सुकुमार है री वदन सुढ़ार है री,
लोचन उदार छवि गोविंद अपार है ।
सुभग सिंगार है री उर पर हार है री,
मुकट धरनहार रूप कौ पसार है ।
अधर सुधा रहै री वंसी कौ उचार है री,
वारि वारि डारे केते कोटि कोटि मार है ।
सुषनि कौ सार है चतुर चित्त चारु है,
रसिक रिझवार व्रजराज कौ कुमार है ।।५।।

अथ नायक भेद–

नायक तीन—पति, उप-पति, वैश्यक ।

पति अरु उपपति के चारि भेद–

अनकूल, दक्षण, धृष्ट, सठ । पति विषैं सठत्व हैऊ, नही हू है । उपपति बिषैं सठत्व निश्चैं है । अनकूलादि भेद होंइ हू, नही हू होंइ ।

वैश्यक के तीन भेद हैं–

उत्तम, मध्यम, अधम । ए तीन भेद तीननि के हैं, कोऊ अैसैं कहैं हैं–

।। सुंदर कौ दोहा ।।

पति उपपति वैश्यकनि कौ, कबि कैं यहै बिचार ।
उत्तम मध्यम अधम ए, तीनौं तीन प्रकार ।।६।।

मध्यम मैं मानी अंतर्गत है, चतुर उत्तम मैं अंतर्गत है । प्रोषित आदि भेद उपपति अरु वैश्यक के हैं ।

सब नायकनि के सषा चारि प्रकार हैं–पीठि मर्द्द, बिट, चेट, विदूषक ।

नायक मैं अष्ट गुन हैं–

सोभा, बिलास, माधुर्ज, धैर्य, गांभीर, तेज, लाजित्य, औदार्य ।

अथ पति लक्षण

वेद बिधि तैं पारिग्रह्ण करै, सो पति ।

मतिराम

॥ सवैया ॥

पांय धरै दुलही जिहि ठौर, रहै मतिराम तहीं द्रग दीनैं ।
छाडयौं सषानि के संग कौ षेलिबौ, बैठे रहैं घर ही रस भीनें ॥
सांझहि तैं ललकें मन हीं मन, लालन यौं बस कैं रस लीनैं ।
लौंनी सलौंनी के सौंनें से अंगनि, गौंने की चूनरी टौंने से कीनें ॥७॥

॥ दोहा ॥

जा दिन तैं गौनौ भयौ, आई बाल रसाल ।
ता दिन तैं बिरहनि भई, हरि उर तैं बनमाल ॥८॥

॥ सवैया ॥

दीह दरी गिरि श्रृंग उतंग, मध्यान कौं भान तपै पुनि भारी ।
ब्याकुलता तन मैं श्रम स्वेद थकी, गति प्यास लगी अति न्यारी ॥
देषि कहैं रघुनंद गुबिंद सुनौं, अरबिंद-मुषी सुकुमारी ।
मो कर पैं कर कौं धरि कैं, हरवैं हरवैं चलि प्यारी ॥९॥

अथ उपपति

वेद-बिधि तैं पाणिग्रहण नही, केवल अनुरागवान ही होइ, सो उपपति ।

॥ सवैया ॥

भौंन के कौंन पै चंद दिपै अति, सुंदर कीवौ करै उजियारी ।
ताप हरै तन की मन की पुनि, नैंन चकोरनि कौं सुषकारी ॥
गोबिंद आनदकंद कहै मुही एक, लगै उर मैं डर भारी ।
आंनि अचानक अंतर जौ न करै, सजनी रजनी अंधियारी ॥१०॥

अथ वैश्यक

वैश्यक वेश्या प्रति प्रीति धन दै कैं करै है, यातैं रसाभास प्रसंग जानि कैं कह्यौ नही ।

अथ अनकूल

और नारी सौं प्रतिकूल एक नाइका-निष्ट प्रीतिवान होइ, सो अनुकूल ।

॥ कवित्त ॥

रूप गुन जोवन अनूप अंग अंग बास,
केस-पास भ्रू-बिलास बीरी मुष पान की ।
मंदहास सहज सुबास अलि आस पास,
जीवनि है मूरी निज प्रीतम के आंन की ॥
इक पतिनी कौं व्रत जगत बिष्यात सदा,
असी प्रीति रीति स्यांमसुंदर सुजान की ।
श्रीपति के संग श्री बिराजै श्री गुबिंद त्यौं ही,
आनंद के कंद रामचंद्र जूकैं जानकी ॥११॥

केसव

॥ सवैया ॥[1]

केसव सूधे बिलोचन सूधी, विलोकनि कौं अवलोकै सदाई ।
सूधी ये बात सुनैं समुझै कहि, आवति सूधी ये बात सुहाई ॥
सूधी ये हांसी सुधा निधि सौं मुष, सोधि लई बसुधा की सुधाई ।
सूधे सुभाव सवै सजनी बस, कैसें किये अति टेंटे कन्हाई ॥१२॥

विहारी

नहि हरि लौं हियरा धरौं, नहि हर लौं अरधंग ।
एक तहीं करि राषि हौं, अंग अंग प्रति अंग ॥१३॥

अथ दक्षरण

बहुत नाइकानि सौं समान प्रीति करै, सो दक्षरण ।

सवैया

द्वारिकानाथ सुधारण कौं चले जस, जुधिष्ठिर कैं सुषकारी ।
कंचन चौकी सनान करैं छबि देषन, आईं जिती निज नारी ॥
आंनदकंद गुविंद सुजान समान सवै, जिय जानि कैं प्यारी ।
रोम उठे अँग अँग नबीनें सुलीनें, दूहूं द्रग मूंदि मुरारी ॥१४॥

विहारी

गोपिनु संग निसि सरद की, रमत रसिक रस रास ।
लही छेह अति गतिनि की, सवनि लषे सब पास ॥१५॥

---

1. अ०—केशव का यह सवैया अलवर-प्रति में नहीं है ।

अथ धृष्ट

अपमान तें, लज्जा तें निडर अरु अनुरागवान होइ, सो धृष्ट ।

॥ सवैया ॥

पौढ़ी हुती परजंक निसंक, अचानक ही पग कौं सहरायौ ।
जागत गारि दै मार दै कंज की मैं, ढ़िग तें गहि बांह ऊठायौ ॥
द्वार कपाट दै पौढ़ि रही पैं, गुविंद कौ सौंह तऊ न लजायौ ।
देषौं कहां छल कै छिपि कैं छिन मैं, कित ह्वै इत ही फिरि आयौ ॥१६॥

विहारी

मारौ मनुहारचौ भरी, गारचौं षरी मिठाहि ।
वाकौं अति अनषाहटौ, मुसकाहट बिन नांहि ॥१७॥
लरिका लैवे के मिसैं, लंगर मो ढ़िग आइ ।
गयौ अचानक आंगुरी, छाती छैल छुवाइ ॥१८॥

॥ केसव कौ सवैया ॥

नेह भरे लै लै भाजत भाजन, कौंन गनें दधि दूध मठाये ।
गारि दिये तें हसैं बरजैं घर आवत, हैं जनु बोलि पठाये ॥
लाजकी ओर कहा कहौं केसव, जे कहियें ते सबै गुन ठाये ।
मां म पिवै इनकी मेरी माई को हैं, हरि आठहु गाठि अठाये ॥१९॥

आठौं गाठि के नाम

मनसा बाचा कर्मना, चितवनि बिहसनि लेषि ।
चलनि चातुरी आतुरी[1], आठौं गाठि विसेष[2] ॥२०॥

---

1. अ० — अलवर प्रति के आधार पर 'आतुरी'
2. अ०—'विसेषि'

अथ सठ

प्रीति मैं कपटी, सो सठ ।

अनत ही रति मांनि अंग वेष और ठांनि,
सापराध आप उठि आयौ मेरै भोर है ।
सषी के भरौसैं भरि लीनौं मैं भुजानि कछू,
पिय कौं रहसि कह्यौ ता सौं तिहि ठौर है ।।
अैसैं तौ न होइ यौं सुनाइ मुसकाइ चित,
चाय सौं नचाय नीकैं नैंननि की कोर है ।
लटकि लपटि लग्यौ झपटि उरोज अैसो,
निपट कपटकारी कपटी कठोर है ।।२१।।

मतिराम

।। दोहा ।।

निलज नैंन कुलटानि कें, आंनि बसे व्रजराज ।
हिये तिहारे तें सकल, मारि निकारी लाज ।।२२।।

विहारी

वे ही गडि गाडैं परी, उपट्यौ हार हिये न ।
आन्यौं मोरि मतंग मन, मारि गुरेरनि मैं न ।।२३।।

केसव

।। कवित्त ।।

काननि कैं रँग रंग नैंननि कैं डोलौ संग,
नासा-अग्र रसना के रस ही समाने हौ ।
और गूढ़ कहा कहौं मूढ़ हौ जू जाने जाहु,
प्रोढ़ रूढ़ केसौराय नीकै करि जाने हौ ।।

तन आन मन आन कपट निदान कान्ह,
सांची कहौ मेरी आंन काहे कौं डराने हौ ।
उह तौ बिकानी हाथ मेरैं हौं तिहारैं हाथ,
तुम ब्रजनाथ हाथ कौंन के बिकानें हौ ॥२४॥

अथ उत्तम

नाइका कोप हो तैं हूं मनाइवे मैं ततपर होइ, सो उत्तम ।

सुंदर

॥ सवैया ॥

आए चले पलिका पैल लो ललनां की, लषीं अषियां सतरानी ।
जानी की रोस भरी है तंहां लै महा रसिया रस की सव ठांनी ॥
मांगत काहू सहेली हू पैं कहि सुंदरि सौं, धौकि पानकि पानि ।
त्यौं अपनैं कर लै करि कैं हरि, दौरत बोलि सुधारस बानी ॥२५॥

अथ मध्यम

नाइका कोप हौ तैं अपनौं कोप अरु अनुराग प्रगट नही करै, केवल वा के मन के भाव कौं ग्रहण करै, सो मध्यम ।

सुंदर

॥ कवित्त ॥

ज्यौं ही चलि आये लाल दीठि भरि देषी बाल,
ठाढ़ी रही मुष मूंदैं मांनौं कंज-कली है ।
आदर न कछू कियौ आगैं ह्वै न पीउ लियौ,
बोली न बिलोकी ठौर तैं न हली चली है ॥

कान्ह हूं न कछू कह्यौ ज्यौं ही देषी त्यौं ही रह्यौ,
पुनि लागी करन सिंगार बोलि अली है ।
मौंहनी की यह रीति भांति देषि मौहन की,
मनसा पैं आनंद के फलनि सौं फली है ।।२६।।

अथ अधम

भय तैं, लज्जा तैं निडर अरु काम-केलि मैं कृति कृति, सो अधम ।

सुंदर

।। सवैया ।।

जाति चली ही अलीनि मैं काल्हि तहां, लषि आय कैं दीनौं ढ़का कौं ।
हौं तौ गई गडि लाजनि ही वे हसी, सब ओझिल दै अचरा कौं ।।
अैसौ महा अति ढ़ीठ सषी कही सुंदर, है यह जौ गुन जाकौ ।
ताकी तू बात चलावति है सुपनै हू, न देषियै री मुष वाकौ ।।२७।।

अथ मानी

मान जाकैं होइ, सो मानी। नाइका कछु कह्यौ नही करै तब नायक कैं मान होत है ।

।। केसव कौ सवैया ।।

आगैं कहा करि हौ तुम तौ, अब ही तैं हमैं इतनैं दुष दीनौं ।
केसव कैसै हूं लाज कि लाड तैं, भूलि गई तौ भई हित हीनैं ।।
भेटौ भई भरि अंक लला भरि, जीभन बोलियै बोल प्रबीनैं ।
देषे नही कबहूं भरि आंषिनी आज[1] ही कैसें चलै चित[2] लीनैं ।।२८।।

---

1. अ०—'आजु'
2. अ०—'चितु'

अथ चतुर

लक्षण नाम ही मैं है । चतुर दुविधि—बचन बिगि, चेष्टा बिगि ।

अथ बचन बिंगि चतुर

॥ सवैया ॥

गुंजत मंजु अली जमुना तट, फूल निकुंज बनी मन मानी ।
तैसी ए चंद्रिका चंद अमंद कहै, ब्रजचंद गुविंद यौं बानी ॥
सीतल मंद सुगंध समीर बहै, सुरतोत्सव के सुपदानी ।
पायक ज्यौं रति नायक सायक, चाप चढ़ाय चलै अगवानी ॥२९॥

अथ चेष्टा बिंगि चतुर

सुंदरि षरी ही निज मंदिर के आंगन मैं,
इंदिरा-सी सुंदर सरस छबि छायकैं ।
ताही मग आये हरि धीरी गति बीरी मुष,
हाथ मैं जंभीरी लै दिषाई सचु पायकैं ॥
चित्रिनी चतुर लषि कीनी चतुराई ता मैं,
दीनी श्री गुविंद कौं सहेट समुझाय कैं ।
चित्र कौ विचित्र मित्र द्वार पैं लिष्यौ हौ ताकैं,
स्याही की लगाई तुंद चंदमुषी चायकैं ॥३०॥

अथ प्रोषित

नाइका तैं बियोग है जाकौ, सो प्रोषित।

॥ कवित्त ॥

जाति हुती काल्हि ग्वालि जमुना के जल कौं,
गुविंद कहैं ताही मग मेरौ भयौ आयबौ ।
संग की सषी सौं बतरावति करति मिसु,
मो दिसि सरस हाव भाव को बतायबौ ॥

चित्त छाय रही उही छवि वा छबीली की सु,
छिनहूं न छूटै अंग अंग कौ दिषायबौ ।
कटि कौ चलैबौ मंद-मंद मुसकैबौ गैबौ,
नैंन सैंन दैबौ भृकुटीनि कौ नचायबौ ॥३१॥

अथ नर्म सषा

नायक सौं नाइका भली प्रकार आनि मिलावै, सो नर्म सषा ।

अथ पीठि मर्द्द

नाइका के मान दूरि करि, करिबे मैं चतुर, सो पीठि मर्द्द ।

॥ कवित्त ॥

मांनहूं तजैगी औ गुमान हूं तजैगी सत–
रान हूं तजैगी अरु पांन हूं चवावैगी ।
उठि हू चलैगी पति संग हू मिलैगी सब,
सौतिन के दूषन हूं भूषन बनावैगी ॥
मानद गुविंद सौं न मांन करि मानिनी तू,
मानि कह्यौ मेरौ न तौ फिरि पछितावैगी ।
सीतल सुगंध मंद मारुत अमंद चंद्र,
चंद्रिका समेत निसा असी नहि पावैगी ॥३२॥

अथ बिट

प्रीति बढ़ावने मैं चतुर, सो विट ।

॥ कवित्त॥

आनंद कौ कंद कुमुदेश्वर प्रगट भयौ,
औषधीस सुधामई जानत जिहान है ।
तैसौ भयौ नयौ नयौ मारुतेश्वर रुचिर चारु,
गोविंद सुगंध मंद सीतल बिधान है ॥

काम हूं तैं अति अभिरांम घनस्यांम बैद,
आयौ रस-दानी रानी सरस सुजान हैं ।
कहां धौं रहैगौ अब तेरे उर-अंतर मैं,
मांन ज्वर जदपि बिकार बलवान है ।।३३।।

अथ चेट

मिलावने मैं चतुर, सो चेट ।

सुंदर

।। सवैया ।।

दैव के जोग तैं आंनि जुरे जुग, कुंज मैं कान्ह[र]राधिका रानी ।
षेलि न बोलि सकै कहिसुंदर, मान ह्वै वैठि रहै चुप ठांनि ।।
मेरौ सकोच कियौ है इन्हे यह, चातुर चेटक यौं जिय जानि ।
या मिस आप उहां तै उठ्यौ, जमुना तट जात हों पीवत पानी ।।३४।।

अथ विदूषक

वाक्यादि चातुरता करि कैं अरु हास्यकार होइ, सो विदूषक ।

सोमनाथ

।। सवैया ।।

केलि निकुंज मैं कुंज बिहारी रमैं, तिय संग हिये सचुपायकैं ।
ए ससिनाथ जू ताही घरी उठि बोल्यौ, सषा छल बैंन बनायकैं ।।
आइये बीर बली बलदेव सुनी, यह स्याम सुजान सुभायकैं ।
आइ गये हरि चौंकत से बिहस्यौ, तव ओट लतानि की जायकैं ।।३५।।

अथ अष्ट गुन तिन मैं प्रथम सोभा

जा करि कै अनुरागिता झलकै, सो सोभा ।

॥ कवित्त ॥

दसरथ-नंद जगबंदन आनंदकंद,
छायौ तब कीरति कौ बिमल बितान है ।
जानकी के रवन सुजान उपमांन आन,
भानु-कुल भानु चहूं चक्कनि मैं आंन है ॥
मोही पै कृपाल रघिपाल भुवपाल राम,
असी भांति जानैं जिय जेतिक जिहांन है ।
ज्यौं नदी अनेक अनुकूल गनैं सिंधु कौं पै,
सिंधु कैं गुबिंद कवि सब ही समान हैं ॥३६॥

अथ बिलास

जा करि कैं गति मैं बिचित्रता जानि आइ, सो बिलास ।

॥ सवैया ॥

पाय धरे तैं धरा लचकै गज-मत्त ज्यौं, गोबिंद चाल चलंत है ।
लोचन चारु चितौं निके आगैं गनैं, तृन सौं जग असो लसंत है ॥
कौसलराज कुमार यहै सुकुमार हि तैं सुषमां सरसंत है ।
मूरतिवंत किधौं रस बीर कीधौं, अभिमान ही मूरतिवंत है ॥३७॥

अथ माधुर्ज

छोब के कारण हू मैं छोभ नही होइ, सो माधुर्ज ॥

॥ कवित्त ॥

प्रकट प्रचंड भुज-दंडनि मैं सस्त्र लै कैं,
लंक तैं निसंक कुंभकरन सिधायौ है ।
तैसौ संग बिकट बलिष्ट ठट्ट भट्टनि कौ,
कपिनु कौं कटक निपट्ट ही भगायौ है ॥
हनुमांन जांमुवान अंगद कपेंद्र आदि,
भीम भेष देषि भांति भांति भय षायौ है ।

आनद के कंद श्री गुबिंद रामचंद्र सो ही,
सौं ही जुद्ध काज बीर बिहसि बुलायौ है ॥३८॥

अथ धैर्य

बिघन होतें हूं कारज तें चलायमांन नही होइ, सो धैर्य ।

॥ कवित्त ॥

सीतल सुगंध मंद पवन चलायौ दर–
सायौ रितु सरस बसंत-सम यौ नयौ ।
मैंन मंत्र मोहिनी दिढ़ायौ री मचायौ फाग,
हाव भाव कौतुक कटाछिनि महा ठयौ ॥
मधुर मृदंग वीन वंसहि बजायौ राग,
रंग वरसायौ अनुराग घन ऊ नयौ ।
सब करि हारी सुर नारी यौं गुबिंद कहै,
तदपि पुरारी कौ बिकारी चित्त ना भयौ ॥३९॥

अथ गांभीर

भय सोकादिक तै चित्त मैं बिकार नही होइ, सो गांभीर ॥

॥ कवित्त ॥

राजनि के राजा महाराजा दसरत्थराज,
राज साज दैंन काज राघव तुलाये हैं ।
आनँद के कंद श्री गुबिंद रामचंद्र जू,
प्रफुल्लित मुषारबिंद आये छबि छाये हैं ॥
परम उदार रिझवार सुकुमार तिन्हैं,
कांनन कौं केकई के कहै तें पठाये हैं ।
जानकी रवन दुष दवन भवन छाडि,
तैसै हीं प्रसन्न मन बन कौं सिधाये हैं ॥४०॥

अथ तेज[1]

और के किये अपमानादिक कौ नही सहनौं, सो तेज ।

॥ कवित्त ॥

आनँद के कंद श्री गुबिंद रामचंद्र जू कैं,
सनमुष रावन डरावन कौं आयौई ।
जानकी कौं दैहैं न तौ बेगि फल पैहै दुष्ट,
अैसी भांति सबद सुग्रीव नें सुनायौई ॥
सुनत ही गरबाय भृकुटि चढ़ाय कैं सु,
प्रगट प्रताप आप अधिक जनायौ ही ।
बीस भुज सीस दस रीस ह्वै कपीस पर,
सायक लगाय चाप चाप चाय सौं चढ़ायौ ही ॥४१॥

अथ लालित्य

बाणी मैं वेषादिक मैं मधुरता सौ, लालित्य ।

॥ सवैया ॥

चंदमुषी अरविंद बिलोचनि अंग, अनंग के रंग सौं भीनी ।
जोवन रूप अनूप प्रभा सव ही बिधि, केलि-कलानि प्रवीनी ॥
जाति कहां इत आइये चाय सौं, देषत ही मति कौं हरि लीनी ।
हाथ मैं हाथ लै बात कही पुनि, सैंन संकेत कौं गोविंद कीनी ॥४२॥

अथ औदार्य

सत्रु मित्र मैं समान बुद्धि सो, औदार्य ।

1. अ० अलवर प्रति में पहले 'लालित्य दिया गया है, तदुपरान्त 'तेज'

॥ सवैया ॥

श्री रघुनंद गुबिंद अनंद के कंद हैं, को उपमा कवि टोहैं ।
कीरति की अति जोति जगामग, जागि रही सब को मन मोहैं ॥
सत्रुहू मित्र समान सवै जग मैं, जन अैसौ उदार सु को है ।
जैसी कपेंद्र पै सोहै कृपा दसकंध के बंधु पै तैसी एसो है ॥४३॥

इति नायक निरूपणं ।

अथ नाइका निरूपणं

जोवनादिक गुन-संजुक्त नायक के रति कौ आलंबन जो स्त्री, सो नाइका ।

॥ कवित्त ॥

मृदु अरविंद-सी अमंद चंद-सी सुगंध,
चंदन-सी भारी भौर भीर मडराति है ।
अंगनि मैं अंग राग नैंननि मैं रंग राग,
भौंहनि मैं हाव भाव मुरि मुसकाति है ॥
पट फहरात उघरात गात एक हाथ,
ढ़ापै इक हाथ जलजातहि पिराती है ।
गोबिंद अनंद सौं चितौतिचारु सोहै मोहै,
कोहै यह चित्तहि चुरायें चली जाति है ॥१॥

कृष्णलाल

छीबर छबीले वारी मुलकट नीले वारी.
लोचन लजीले वारी तिरछी चितै गई ।
चंपक बरन वारी कोमल करन वारी,
राते अधरनि वारी मैं न बीजवै गई ॥
कृष्ण बंक भौंहैं वारी नथुना चढ़ौं हैं वारी,
मुकता वडौ है वारी हित सौं हितै गई ।

मद गज चाल वारी घूंघट रसाल वारी,
लाल साल वारी बाल हाल मन लै गई ॥२॥

अथ नाइका भेद–

सो नाइका तीन बिधि–स्वकिया, परकिया, साभान्या ।

अथ स्वकिया भेद—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा ।

अथ मुग्धा भेद–

प्रथमावतीर्ण मदना, प्रथमावतीर्ण मदन बिकारा, रतौ बामा, मान कोमला, अधि लज्जावती ।

अथ मध्या भेद—प्रौढ़, जोवना, प्रोढ़ स्मरा, सुरत बिचित्रा ।

अथ प्रोढ़ा भेद–

कामांधा, घनतारुन्या, समस्त रस-कोविदा, भावोन्नता, आक्रांत लज्जा, आक्रांत नायका ।

अथ मध्या प्रोढ़ा के तीन तीन भेद है—धीरा, अधीरा, धीरा धीरा ।

ए छऊं द्वै द्वै प्रकार हैं—जेष्टा, कनिष्टा ।

अथ परकिया भेद– ऊढ़ा, अनूढ़ा ।

ए दोऊ छ प्रकार हैं–

गुप्ता, विदग्धा, कुलटा, लच्छिता, अनसयना, मुदिता । गुप्ता-त्रिविधि,[1] विदग्धा-द्विविधि,[2] अनसयना-त्रिविधि ।

---

1. अ० अलवर प्रति के अनुसार ये तीन भेद—'भूत' 'भविष्य' और 'वर्तमान' हैं ।
2. अ० अलवर प्रति में ये दो भेद—वाक्य और क्रिया बताए गए हैं ।

अैसैं तेरह भेद स्वकिया के, द्वे भेद परकिया के,एक भेद सामान्या कौ ।

ए तीनूं नाइका तीन विधि हैं–

अन्य संभोग दुषिता, मानवती, गर्विता । और भेद सब इनहीं मैं अंतर्गत हैं । ये सोरह भेद आठ आठ हैं । संपूर्ण मिलि कैं तीन तीन बिधि हैं । उत्तमा, मध्यमा, अधमा ।

अथ अष्ट भेद भरतोक्त

वासक सज्जा, विरहोत्कंठिता, स्वाधीन पतिका, कलहांतरिता, षंडिता, प्रोषित पतिका, अभिसारिका ।

अैसैं तीन सौ चौरासी भेद हैं ।

दिव्य, अदिव्य, दिव्यादिव्य इन भेदनि तैं ग्यारह सौ बावन होत हैं । दिव्य रुक्मिण्यादिक, अदिव्य मालती कंदलादिक । दिव्यादिव्य सची, उरबसी, द्रोपदी, तारा, मंदोदरी आदि ।

इन कें जोबन के अलंकार अठाईस हैं (२८)–

तिन मैं भाव हाव हेलाए तीन तौ सरीर तैं उतपन्न होत हैं । सोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्ज, प्रागल्भ्य, औदार्य, धैर्य । ए सात अनायास प्रगट होत है ।

लीला, बिलास, बिच्छिति, बिब्बोक, किलकिंचित, मोटायत, कुट्टमित, बिभ्रम, ललित, मद, विकृत, तपन, मौग्ध, बिक्षेप, कौतूहल, हसित, चकित, केलि । ए अठारै बिसेस जोवन तैं प्रगट होत हैं ।

अथ दूती

सषी, दासी, धाय, नटी, प्रतिवेसिनी, रजकी, सन्यासिनी, सिल्पिनी आदि ।

अरु स्वयं—ए दूती तीन प्रकार हैं–उत्तम, मध्यम, अधम ।

अथ दूती कर्म तीनि—कुल द्रव्यादि कथन, बिरह निबेदन, संगम ।

अथ सषी कर्म चारि—शृंगार, सिक्षा, उराहनौ, परिहास ।

अथ स्वकिया - अपनें पति सौं अनुराग करै, सौ स्वकिया ।

।। कवित्त ।।

सुरत भवन लौं गवन की अवधि सषी,
श्रवण लौं बचन अवधि जिय जानिये ।
चित्त की अवधि श्री गुविंद कंत परजंत,
मान की अवधि एक मौंन हीं लौ मानियैं ।।
हास की अवधि अधरानि हीं लौं लोयन,
बिलासनि की कोयनि लौ औधि उर आनियै ।
सावधि सकल नीति प्रीति एक नावधि यौं,
कुल की वधू की रीति बिदित बषानियैं ।।३।।

अथ परकिया

पर पुरुष सौं गुप्त अनुराग करै, सो परकिया ।

।। कवित्त ।।

बोल बिन आई बिन मोल ही बिकाई गुन,
रावरे निकाई आदि मो मन वस्यौ करैं ।
तो संग सुहाग अनुराग की सरस चाह,
कहे तैं हसी-सी है पैं प्राण तरस्यौ करैं ।।
रसिक गुविंद स्यांमसुंदर सुजान प्यारे,
सो ही कीजं जामैं रस-रंग बरस्यौ करैं ।
गोकुल मैं चहूं ओर चौगुनें चवायनि सौं,
दै दै कर ताली कोऊ आली न हरयौ करै ।।४।।

ऊधौराम

[कवित्त]

षीर मैं ज्यौं नीर ज्यौं समानी बूंद सागर मैं,
तिल मैं सुमन बास भोइगी सु भोइगी ।
तेरे देषिवे की वांनि नैंननि कौं परि आंनि,
लाज और कुल-कानि षोइगी सु षोइगी ।।
लोक परलोक की बिसारी सुधि ऊधौराम,
यही बात मन मांझ मोइगी सु मोइगी ।
रूप उजियारे गुन भारे प्रान प्यारे आंषि,
तो ही सौं लगी है हौंनी होइगी सु होइगी ।।५।।

अरु सामान्या गुनवान हूं पुरुष सौं अनुराग धन ही के लोभ तैं करति है । यातैं रसाभास प्रसंग जानि कैं कही नही ।

अथ मुग्धा

तन मैं जोबन की झलक कछुक आनिकै झलकी होइ अरु लज्जा के के आधिक्य तैं सूछम अनुराग करै, सो मुग्धा ।

।। कवित्त ।।

बानी की तरंगहू नवेली अलवेली की,
हेली ना भईं सुधारस के वृंद की ।
कुचनि की सोभा कर कंधहू कौ बंधु नही,
करिवे कौं लायक न दायक अनंद की ।।
कुटिल कटाछिन समेत न प्रकृति वाके,
नैंननि की सोहै मोहै सौंहैं व्रजचंद की ।
तदपि लुनाई अंग ऐसी कछु आई माई,
लषि ललचाई मति रसिक गुविंद की ।।६।।

अथ मध्या

लज्जा अरु मदन समान होय जाकैं, सो मध्या ।

।। सवैया ।।

सोइये तौ व्रजचंद गुबिंद की, सुंदरता द्रग देषी न जाई ।
जागियै तौ रति जंग प्रसंग, पिया संग जानि हिये मैं लजाई ।।
दोऊ बिचार बिचारत ही सजनी, रजनी सब यौं हीं बिताई ।
काम सँकोच की संधि कैं मध्य न जागि सकी न तौ नीद ही आई ।।७।।

बिहारी

समरस समर सकोच बस, बिबस न ठिक ठहराइ ।
दुहुं ओर ऐंची फिरैं, फिरकी लौं दिन जाय ।।८।।

भेटत बनत न भांवतौ, चित तरसत अति प्यार ।
धरति लगाइ लगाइ उर, भूषन बसन हथ्यार ।।९।।

अथ प्रोढ़ा

जज्जा तिरस्कार ऐसौ मदनानुराग है जाकैं, सो प्रौढ़ा ।

॥ कवित्त ॥

सरद उज्यारी फुलवारी मैं लसत प्यारी,
आये तहां चतुर बिहारी छबि छायकैं ।
देषत ह्यां चाय सौं सरस अंग अंग भाव,
सात्विक ह्वै आयौ उर आनँद वढ़ायकैं ॥
आदर कैं लीनैं वर सुंदर गुबिंद हरि,
इंदीवर नैंननि के पांवडे बिछायकैं ।
कीने कल कोक की कलानि के अनंत भेद,
कंत कौं इकंत मैं निसंक अंक लायकैं ॥१०॥

भगवंत[1]

आज मन भावन करी हौं अति पावन सु,
क्यौं हूं क्यौं हूं आवन भयौ है चित चैंनी सौं ।
लैहौं कंठ लाइ जैहैं बिरह बलाई भग-
वंत सुष पाइ वडे आदर की लैंनी सौं ।
कंचुकी उतारि उर अंचल उघारि डारि,
सकल सुगंध ढ़ारि दै हौं सुषदैंनी सौं ।
प्यार करि प्यारौ जौ लौं उर सौं बिहार करै,
तौ लौं उर हार तू बिहार करि बैंनी सौं ॥११॥

अथ मुग्धादिक के भेद—इनके नाम ही लक्षन हैं ।

अथ प्रथमावतीर्ण मदना

॥ कबित्त ॥

आई सिसुताई की तगीरी उर-पुर फिरी,
नृप मकरध्वज की नूतन दुहाई है ।

1. अं०—प्रति में यह कवित्त नहीं है ।

पीनताई कटि की नितंबनि छिनाई रोम,
राजी नैं हुलसि हरि कुच लघुताई है ।।
लैलई द्रगनि मृदुताई ऐपैं हौं न जानौं,
कौनैं मति रसिक गुबिंद की चुराई है ।
जानि कैं दुराजे की रजाई सुषदाई माई,
आपस मैं लूटि अंग अंगनि मचाई है ।।१२।।

विहारी

लाल अलौकि(क)लरकई, लषि लषि सषी सिहाति ।
आज काल्हि तैं देषियत, उर उक सौं हीं भांति ।।१३।।

अपनें तन के जानि कैं, जोवन नृपति प्रवीन ।
नैंन उरोज नितंव कौं, वडौ इजाफा कीन ।।१४।।

या सौं कोऊ अज्ञात जोवना कहै हैं ।

अथ प्रथमावतीर्ण मदन-बिकार

।। कवित्त ।।

आलस सौं मंद मंद धरा पैं धरति पाव,
भीतर सौं वाहिर न आवै चित चायकैं ।
रोकति द्रगनि छिन छिन प्रति लाज साज,
बहुत हसी की दीनी बानि बिसरायकैं ।।
बोलति बचन मृदु मधुर बनाइ उर–
अंतर के भाव की गँभीरता जनायकैं ।
बात सषी सुंदर गुबिंद की कहति तिन्हैं,
सुंदर विलोकैं वंक भृकुटी नचायकैं ।।१५।।

।। प्रसिद्ध कौ कवित्त ।।[1]

छाती देषि छांह देषि चलन प्रसिद्ध लागी,
औरैं गति लागी भुज दाहिनी ढुरावतें ।
लोलता मुचन लागी हसि सकुचन लगि,
वतियां रचन लागी रस के सुभावतें ।।
मुरि मुसकान लागी तानें आनि कांन लागीं,
देषि अनषांन लागी सौतिन कौं आवतें ।
ज्यौं ही ज्यौं बढ़न लागी भृकुटी चढ़न लागी,
घूंघट कढ़ने लागी जोवन जनावतें ।।१६।।

मतिराम

इतै उतै सकुचति चितै, चलति डुलावति बांह ।
दीठि बचाय सषीनि की, निरषति छिन छिन छांह ।।१७।।

या सौं कोऊ ज्ञात जोवना कहैं हैं ।

अथ रतौ बामा

प्रीतम प्रीति सौं न देषै ज़बै, नव नागरि नीचे कौं नैंन नंवावै ।
कंज कली ज्यौं रहै मुष मूंदि, कहै न कछू पिय जौ बतरावै ।।
प्रेम प्रजंक पैं पीठि दै प्रौढ़ै नई, कछू आपनी रीति चलावै ।
केलि मैं ऊठि चलै मिसु कैं तऊ, आनंदकंद गुबिंद कौं भावै ।।१८।।

1. अ० प्रति में नीचे लिखा दोहा और मिलता है—
तिय कित कमनैती पढ़ी, विन जिह भौंह कमान ।
चल चित वेऊत चुकति नहिं, वंक विलोकनि बान ।।

मतिराम

[सवैया]

साथ सषी कैं नई दुलही कौं भयौ, हरि कौ हिय हेरि हिमंचल ।
आय गये मतिराम जंही घर, जानि इंकत अनंग तैं चंचल ।।
देषत ही नदलाल कौं बाल के, पूरि रहे असुवानि द्रगंचल ।
बात कही न गई सु रही गहि हाथ दुहूं सौं सहैली कौ अंचल ।।१९।।

।। दोहा ।।

ज्यौं ज्यौं परसै लाल तन, त्यौं त्यौं राषै गोइ ।
नवल बाल डर लाज तैं, इंदु बधू-सी होइ ।।२०।।[1]

कोऊ या सौं नऊढ़ा कहै है ।

अथ माँन कोमला

।। सवैया ।।

सषी के सिषये बिन अँगनि आनि कैं, बिभ्रमता की नवानि परी ।
रचना बचनालि की बक्र बिलासमई, मुष तैं न कछू निकरी ।।
अति उज्जल गोल कपोलनि पं अषियाँनी तैं सज्जल धार धरी ।
पहिलैं ही गुविंद के दोष तैं प्यारी, रुषाई है तौं हू निकाई भरी ।।२१।।

1. अ० प्रति में नीचे लिखा सुंदर का कवित्त और मिलता है—
खेलन ही दुलहिनी सुंदर सहेली साथ,
सौनैं की-सी वेलि अलवेली वधू मई ।
आपस मैं सखी सब सराहति ताहि चाहि,
धाय कह्यौ दीठि लागि जायगी रह्यौ दई ।
तब मिसु घालि कह्यौ ष्याल ही मैं आये लाल,
तिहि काल उह बाल अैसे हाल है भई ।
आखैं भरि आई मुख पीरी परिझांही चौंकि,
चिरैया की नांई भागि भौंन कौंन मैं गई ।

अथ अधिक लज्जावती

॥ कवित्त ॥

क्यौं हूं क्यौं हूं चली चंद-मुषी व्रजचंद जू पैं,
लाज नैं लपेटि लई मारग मैं आयकैं ।
तदपि न केवल अलबेली चली उत ही कौं,
बचन सहेलिनु के सुन सुष पायकैं ।
देषत ही रसिक गुबिंद लई सुंदरि कौं,
भाय सौं भुजा भरि कैं मृदु मुसकायकैं ।
रोम की उमंग अंग अंग रति जंग भीत,
चहूं और चकित चितौति चित चायकैं ॥२२॥

॥ काहू कौ सवैया ॥

रंग कैं राति नई दुल ही, सषियानि बिसास दै सेज सुवाई ।
आवत ही रसिया अति चातुर, अंग सौ अंग छुवाइ जगाई ॥
ता समैं चौंकि परी चपला सम, रूप की बोलि इती छबि छाई ।
लीक दै मानहु कंचन से तन, काम सु नार सलाष लगाई ॥२३॥

विहारी

कत दल मलियत निरदई, दई कुसुम सौ गात ।
कर धरि देषौ धर धरा, उर कौ अजहु न जात ॥२४॥

॥ सुंदर [को] सवैया ॥[1]

पग सौं पग पींडुरी पीडुरी सौं गहि, सुंदरि जांघनि जोरि रही ।
कुच दोऊ गहे कर एक सौं ही कर, एक सौं घूंघरी गाढ़ै गही ॥

1. अ०—अलवर प्रति में यह सवैया नहीं है ।

इहि भांति लियैं डर प्रीतम कौ संग, सोवत हीं लड ही दुलही ।
अलि हौ तौ गई छकि सो छबि देपति, राति की रीझि न जाति कही ।।२५।।

या सौं कोऊ विश्रव्ध नवोढ़ा कहै हैं ।

अथ मध्या भेद

अथ आरूढ़ जोवना[1]

केसव

।। कवित्त ।।

चंद असौ भाल भाग भृकुटी कवान असी,
मैंन कैसें पैनें सर नैंननि बिलास है ।
नासिका सरोज गंध बाह से सुगंध वाह,
दारचौं से दसन के सौ बीजुरी सौ हास है ।।
भांई असी ग्रीवां भुज पांन सो उदर अरु,
पंकज से पाई गति हंस कै सी जास है ।
देषी है गुपाल एक गोपिका मैं देवता-सी,
सौंने सौ सरीर सब सौंधे-सी सुबास है ।।२७।।

लाल आनन मुकर-सी है रूप सुधारक-सी है,
सुधारस बरसी है वसुधा सुहाग है ।
सौरभ अतर-सी है उरज सतर-सी है,
सौति लषि तरसी है लाल मन लाग है ।
कंचन के सरसी है नैंन पंच सरसी है,
नैंक न कसर-सी है जोवन की जाग है ।
सब गुन सरसी है सोभा जल सरसी है.
तिन छिन दरसी है ता के भाल भाग है ।।२७।।

1. अ०—अलवर प्रति में 'प्रौढ़ जोवना'

॥ काहू कौ कवित्त ॥

द्रग तेरे देषैं मृग सेवत उजारि फिरैं,
कटि देषैं केहरि कुलहि तजि गयौ है ।
देह देषैं कंचन अगनि परै धाय धाय,
मुष देषैं कलानिधि कला-हीन भयौ है ॥
दसन की जोति देषि दारचौं हूं दरार षाति,
नासिका के देषैं कीर बनोवास लियौं है ।
चाल तेरी देषैं गजराज न धरत पाउ,
भौंह की मरोर तैं धनुष तो हि नयौ है ॥२८॥

अथ प्रौढ़स्मरा

॥ सवैया ॥

गुन जोवन रूप अनूप भरी, व्रजचंद गुविंद कौं भावति है ।
बहि अंतर गूढ़ अगूढ़ निरंतर, कोक-कलानि बढ़ावति है ॥
षग पुंज निकुंज के सिष्य किये, रति कूजित शब्द पढ़ावति है ।
तिन के मुष तैं नव कांम कथा, घनस्यांम कौं वांम सुनावति है ॥२९॥

अथ सुरत विचित्रा

केसव

॥ कवित्त ॥

केसौदास विलास मंद-हास जुत अवलो-
कन अलापनि कौ आनँद अपार हैं ।
वहिरत सात भांति अंत्र रति सात पुनि,
रति विपरीतिनी के बिबिध विचार हैं ॥

छूटि जात लाज साज भूषन सुदेस केस,
टूटि जात हार सब मिटत सिंगार हैं ।
कूजि कूजि उठैं रति कूजितनि सुनि षग,
सोही तौ सुरत सषी और बिवहार है ।।३०।।

बिहारी

तमक चमक हांसी ससक, मसक झपट लपटानि ।
ए जिहि रति सो रति मुकति, और मुकति रति हानि ।।३१।।

अथ सात वहिर रति

।। केसव ।।

आलिगन चुंबन परस, मरदन नषरद दान ।
अधर पान सौं जानिये, बहिरति सात सुजान ।।३२।।

अथ सात अंतर रति

स्थिक तिर्यक सनुमुष बिमुष, अध ऊरध उत्तान ।
सात अंत्र रति जानिये, केसवराय सुजान ।।३३।।

अरु द्वै बिपरीति रति

शृंगार बिपरीति, क्रिया बिपरीति । अैसैं सोरह रति हैं ।

अथ सोरह सिंगार

केसव

।। कवित्त ।।

प्रथम सकल सुचि मंजन अमल बास,
जावक सुदेस पास केस कौ सुधारिबौ ।

अंग राग भूषन बिबिधि मुष बास राग,
कज्जल कलित लोल लोचन निहारिबौ ।।
बोलनि हसनि मृदु चातुरी चलनि चारु,
पल पल प्रति पतिव्रत प्रति पारिबौ ।
केसौदास सबिलास करहु कुवरि राधे,
याही बिधि सोरह सिंगारनि सिंगारबौ ।।३४।।

कोक

[कवित्त]

उबटि अन्हाय अंग रागहि लगाइ नीकें,
बैंनी कौं गुहाइ मांग सोभा सरसाइयै ।
षौरिहि दिवाय द्रग अंजन बनाय तिल,
मिस्सीरद लाइ मुष वीरी दरसाइयै ।।
वचन सुनाइ सौंधै भाय अंग अंग छाय,
भूषन सुमन सुभ सुरति लषाइयै ।
महदी रचाय पाय जावक लगाइ सषी,
सोरह सिंगार साजि स्यांम पै सिधाइयै ।।३५।।

अथ द्वादश भूषन

।। दोहा ।।

सीस भाल श्रुति नासिका, ग्रीवां उर कटि वाहु ।
मूल पांनि अगुरी चरन, भूषन रबि अवगाह ।।३६।।

अथ प्रोढ़ा भेद

कामांधा

।। सवैया ।।

केलि समैं हसि कैं रस बात पिया रसिया सौं करें सुषकारी ।
और कहा कहियै सजनी धनि धन्नि हैं या जग मैं उनहारी ।।

मोचत नीबी कौ वंद गुविंद अनंद सौं श्री व्रजचंद विहारी ।
सांच कहौं मोहि ता छिन ही तैं रहै न कछु सुधि सौंहै तिहारी ।।३७।।

अथ घन तारुण्या

।। सवैया ।।

पीन नितंब महा कटि छीन उरोज उतंग लियैं कठिनाई ।
कोमल हास मनोहर वैंन सुनैं न बिलासनि की सरसाई ।।
भांईं भुजा भ्रुव वंक बनी गति मंद अमंद है अंग गुराई ।
आनँद कंद गुविंद किये वस सुंदरि तो तन की तरुणाई ।।३८।।

विहारी

लहलहाति तन तरुनई, लचि लग लों लफिजाइ ।
लगै लांक लोइन भरी, लोइन लेत लगाइ ।।३९।।

अथ समस्त रस कोबिदा

कहूं पीक कहूं लीक जावक की अंजन की,
सैंदुर की सीक कहूं कन श्रम नीर के ।
केसरि अगर मृग मद घनसार कहूं,
चोवा चंदनादि कहूं अतर उसीर के ।।
गोबिंद के संग की सुगंध मरगजी कहूं,
अैसे न सुगंध वृंद त्रिबिधि समीर के ।
उर मैं सुरत सुघराई सरसाई ताहि,
बाहिर बषानैं सब बसन सरीर के ।।४०।।

अथ भावोन्नता

बिकस्यौ कछु कंजनि कौ बन, मंजु गुबिंद बढ़ावतु है ।
मकरंद पराग सुगंध के वृंद दसौं दिसि कौं उफनावतु है ।।

तिहिं भार लियें गति मंद किये, इम नूंतन मारुत आवतु है ।
तिय सोवै हियें पिय के लगि कैं, तिहिं के तन ताप तचावतु है ।।४१।।

सुंदर

कान्ह आलिगन आसन चुंवन, कीने अनेक ते कौंन गनावै ।
यौं रति मांनै तऊ तिय कैं पति की, छतियां छिन छोडि न भावै ।
भौर भयौ पिय जानैं न जैसैं, इते पर ए चतुरांई चलावै ।
आंचर सौं ढ़कि मोती-मालहि, सुंदर सीतलताई दुरावै ।।४२।।

मतिराम

प्रान प्रिया मन भांवन संग, अनंग तरंगनि रंग पसारे ।
सारी निसा मतिरांम मनोहर, केलि के पुंज हजार उघारे ।।
होत प्रभात चल्यौ चहै प्रीतम, सुंदरि के हिय मैं दुष भारे ।
इंदु आनन दीप-सी दीपति स्यांम, सरोज-से नैंन निहारे ।।४३।।

अथ आक्रांत लज्जा

लोचन बिसालनि मैं अंजन रसाल भाल,
केसरि की षौरि नक-वेसरि सवांरियै ।
कुसुम हमेल हार बाजूवंद पौंहची गुहि,
अतर सुगंध वृंद अंवर मैं ढ़ारियै ।।
रसिक गुविंद स्यांम सुंदर सुघर मुष,
बास केस पास मोती मल्ली बिसतारियै ।
कीजै रस रंग के प्रसंगनि उमंगी मेरे,
अंग अंग सरस सिंगारनि सिंगारिये ।।४४।।

अथ आक्रांत नायका

।। कवित्त ।।

आसन औ चुंबन आलिंगन अनेक भांति,
जे जे कल कोक की कलानि के बिधान है ।

अंतर वहिर रति रीति बिपरीतिनि की,
नीति मैं निपुनन समांन उपमांन है ।।
अैसें अदभुत सुष सिंधु अवगाहै तौ हू,
चाहै नित नयौ नेह चित्त मैं न आंन है ।
सरस बिलासनि सौं रस बस दासी भूत,
कीनौं श्री गुविंद स्यांम सुंदर सुजान है ।।४५।।

अथ धीरादि भेद

।। दोहा ।।

मध्या धीरा वक्र वच, विषम बचन जु अधीर ।
दै उराहिनौं प्रीतम हि, मध्या धीरा-धीर ।।४६।।

प्रौढ़ धीर कोपै गुपत, कोपै प्रगट अधीर ।
गुप्त प्रगट कोपै सुतौ, प्रौढ़ा धीरा-धीर ।।४७।।

।। केसव कौ सवैया ।।

ज्यौं ज्यौं हुलास सौं केसवदास, बिलास निवास हियैं अवरेष्यौ ।
त्यौं त्यौं वढ्यौ तन कंप कछू भ्रम, भीत भयौ किधौं सीत बिसेष्यौ ।।
मुद्रित होत सषी बरही इन नैन, सरोजनि सांचु कैं लेष्यौ ।
तें जु कह्यौ मुष मौंहन कौ अरविंद, सौ है सुतौ चंद सौ देष्यौ ।।४८।।

अथ मध्या अधीरा

।। सवैया ।।

इक तौ अभिलाष अने वसैं, बहुरचौं सबिलास उहै दुलही ।
तुम्हरे उर अैसे कठोर मैं ठौर, कहां हमरे रहिबे कौं रही ।।
बिनती कर जोरि हहा करि पापरि, सौंह करौ पैं वृथा सव ही ।
कपटी हौ गुविंद जू जाहु नहो किनि, झूंठि इते कु कहां तें लही ।।४९।।

विहारी

पट सौं पौंछि परी करौ, षरी भयानक भेष ।
नागनि ह्वै लागी द्रगनि, नागवेलि रस–रेष ।।५०।।

अथ मध्या धीराधीरा

।। सवैया ।।

चुंबि भुजा भरि सुंदरि कौं अति, आनँद सौं रति रीति जु कीनी ।
बातनि कौं सुनि तैं उतकंठित, रैंनि बिदा करि दीनी ।।
मंद प्रभा मुषचंद की है जडता, तन मैं पुनि न्याय नवीनी ।
यौं कहि कैं नद नंद गुविंद सौं, इंदु-मुषी अषियां भरि लीनी ।।५१।।

अथ प्रौढ़ा धीरा

।। सवैया ।।

आवत ही लषि आदर कौं उठि आसन एक कौ बास गमायौ ।
पांनी के पांन के ल्यावन मैं न भुजा भरि गोबिंद कंठ लगायौ ।।
बोलि लई संग की सजनी बचनामृत हू न पियौ नहि प्यायौ ।
ऐसैं पिया रसिया सौं तिया मिसहीं मिस आपनौं कोप छिपायौ ।।५२।।

अथ प्रौढ़ा अधीरा

।। सवैया ।।

ईस के सीस पै चंद अमंद सु, दिव्य दिपै सुषमां सरसावै ।
तामैं उमा अपनौं प्रतिबिंब कौं, देषत ही उर मैं अनषावै ।।
लोचन लाल बिसाल कै भामिनि, भौहनि बंक निसंक चढ़ावै ।
ऐसी सिवा कबि गोबिंद कैं, सुकृपा कैं अनंद के वृंद वढावै ।।५३।।

अथ प्रौढ़ा धीराधीरा *

॥ कवित्त ॥

आवत ही रसिक गुबिंद ब्रजचंद जू कैं,
आदर कैं हेत उठी हिय मैं हरषियां ।
धीठचौं दै विहारी प्यारी निपट निसंक आंनि,
ठाढ़े सापराध सुतौ देषत अनषियां ।
कहां निसि जागे अनुरागे द्रग लागे कहौ,
कहां धौं रसाल मनिमाल लाल रषियां ।
अैसें कहि बाल ततकाल ही बिसाल जल,
जाल भरि लीनी उह लाल लाल अषियां ॥५४॥

अथ जेष्टा कनिष्टा

प्यारै को प्यार अत्यंत जासौं होइ, सो जेष्टा । सूक्षम होइ, सौ कनिष्टा ।

॥ कवित्त ॥

त्रिबिधि समीर भौंर भीर जमुना कैं तीर,
तैसी ए सरस छाया सघन लतानि की ।
तहां आंषि मीच नीके षेल मिस एक की सु,
एक कर मूंदि द्वै पलक अषियांनि की ॥
एकनि के एक कर पकरि कपोल कुच,
पांन करी माधुरी गुविंद अधरानि की ।
हौं तौ बिन मोल ही बिकाई सुनि माई आज,
देषि सुघराई स्यांम सुंदर सुजान की ॥५५॥

---

*अ० प्रति में बिहारी का नीचे लिखा दोहा भी है—

सकत न उव ताते वचन, मो रस को रस खोइ ।
खिन-खिन औटे खीर लौं, खरौ सवादिल होइ ॥

अथ परकिया भेद

ऊढ़ा—विबाहिता होइ, सो ऊढ़ा ।

मतिराम

॥ सवैया ॥

क्यौं इन नैंननि सौं निरसंक ह्वै, मोहन को तन पानिप पीजै ।
नैंक निहारैं कलंक लगै इहि, गांउ बसें कहौ कैसें कै जीजै ॥
होति रहै मन यौं मतिराम कहूँ, बन जाइ बडौ तपु कीजै ।
ह्वै बनमाल हियें लगिये पुनि ह्वै, मुरली अधरामृत लीजै ॥५६॥

केसव

॥ कवित्त ॥

पंथ न थकत पल मनोरथ रथनि के,
केसौदास जगमग जैसें गाये गीत मैं ।
पवन बिचार चक्र-चंक्रम न चित्त चढ़ि,
भूतल अकास भ्रमैं धाम जल सीत मैं ॥
कौ लौं राषौ थिरि बपु बापी कूप सर सम,
हरि बिन कीनें बहु बासर बितीत मैं ।
ज्ञान गिरि फोरि तोरि लाज तरु जाइ मिलौं,
आपही तें आपगा ज्यौं आप निधि प्रीत मैं ॥५७॥

॥ सवैया ॥

जाति भई संग जाति लै कीरति, केसव सो सब सौं हित षूट्यौ ।
गर्ब गयौ गुन जोबन रूप कौ, पुन्य सु तो पल ही पल बूट्यौ ॥
कान्ह निहारी ए आन कियें कहौं, लाज कौ नीकै ह्वै नांतौ ई टूट्यौ ।
छाडयौ सबै हम हेरि तुमैं तुम, पै तन कौ कपटौ नहि छूट्यौ ॥५८॥

अथ अनूढ़ा—अविबाहिता होइ, सो अनूढ़ा ।

मतिराम

॥ सवैया ॥

गोप सुता कहैं गौरि गुसाइनि, पाइ परैं बिनती सुनि लीजै ।
दीन दयानिधि दासी कैं ऊपर, नैंसुकि चित्त कृपा सु करिजै ॥
ब्याहि जो देहि उछाह सौं मोह न मात पिताहू कौ सो मन कीजै ।
सुंदर सांवरौ नंदकुमार बस्यौ उर, जो बर सो बर दीजै ॥५९॥

॥ दोहा ॥

हौं सुनि आइ नंद-घर, अब तू होइ निसंक ।
राधा मौंहन ब्याह तैं, जैहै धोय कलंक ॥६०॥

॥ कवित्त ॥

जा के संग षेल आंषि-मीचनी कौ षेलत ही,
दुरि दुरि जहां भली भीरि है लतानि तैं ।
सोही श्री गुविंद व्रजचंद आयौ ताही मग,
देषन कौं हरषी सनेह भरी बांनि तैं ॥
प्यारी सुकुमारी तात मात के भवन षरी,
सकुची सरस सषियानि कुल-कानि तैं ।
पिय मुष छबि की मरीची सो दरीची[1] ह्वै कैं,
नीची नीची देषति तिरीछी अषियानि तैं ॥६१॥

मुकंद

[सवैया]

मात पितानि वुलाय कें बिप्रनी, वेद-रिचानि सौं व्याह रचायौ ।
नागरि कें तब सोक समूह, मुकंद कहै अति ही सरसायौ ॥
जा सौं सनेह कियौ दुरि कें सु, उही दुलहा बनि ब्याहन आयौ ।
देषत दुष्ष गये जिय के तिय के, हिय के मधि आनद छायौ ॥६२॥

---

1. दरीची=झरोखा ।

अथ गुप्ता

सुरत कौं छिपावै, सो गुप्ता । सो त्रिविधि—१. भूत, २. भविष्य, ३. वर्तमान ।

अथ भूत सुरत गुप्ता

ह्वै गये सुरत कौं छिपावै, सो भूत सुरत गुप्ता ।

।। सवैया ।।

नीर तें गागरि भारी भरी सु धरी सिर पें पुनि दूरि तें ल्याई ।
देषतें स्वेद गुविंद की सौं तन स्वासनि की पुनि ऊरधताई ।।
चौंथि चकोर गये मुष कौं जिय जानि कें चंद अमंद जुन्हाई ।
या(या)दुष तें जमुना जल कौं अव हौं कवहूं नहि जाउंगी माई ।।६३।।

विहारी

केसर केसरि कुसम के, रहे अंग लपटाइ ।
लगे जानि नष अनष लै, कत बोलति सितराई ।।६४।।

अथ भवष्य सुरत गुप्ता

हौंनहार सुरत कौं छिपावै, सो भवष्य सुरत गुप्ता ।

।। कवित्त ।।

जमुना[1] के तीर भीर सघन लत्तानि की मैं,
सुघर सुघर सुवा सारिका पढांऊगी ।
अधर मधुर बिंब जानि कें गुबिंद की सौं,
चैंचुनि सौं चांपि है पें नेंकु न रिसांऊगी ।।
धोषें चारु चंद कें चकोर मुष चौंथि जै हैं ।
अैसे अैसे जद्दपि अनेक दुष पांऊगी ।

1. प्र० 'कालिंदी'

सांझ के समाज काज कुंजनि मैं माई आज,
सांवरी सषी के संग फूल लैन जाऊंगी ।।६५।।

अथ वर्त्तमान सुरत गुप्ता

साक्षात सुरत कौं छिपावै, सो वर्त्तमान सुरत गुप्ता ।

।। काह्न कौ दोहा ।।[1]

हसति कहा ह्यां है कहा, हांसी कौ मजकूर ।
कान्ह बनावत गहि गरौ, यौं मारौं चांडूर ।।६६।।

देव

।। सवैया ।।

लोग लुगाइन होरी लगाइ मिला मिली, चावनि भेटत ही वन्यौं ।
देवजू चंदन चूर कपूर लिलाटनि, लै लै लपेटत ही बन्यौं ।।
ये इहि औसर आय गये समुहाइ, हियौ न समेटत हीं बन्यौं ।
दीनी अनाकिनी ग्रें मुष मोरि पै जोरि, भुजा भटू भेटत ही वन्यौं ।।६७।।

वैनी

[सवैया]

बैनी जू या व्रज में बसि कैं हसि कैं, न चली न मैं सीस उठायौ ।
आज कलिंदी के कूल गयौ गिरिटी कौ, लिलाट कौ नीकौ न पायौ ।।
हेरि लियौ हरि टेरि कह्यौ हसि, कौंन कौ है अजू मैं परचौ पायौ ।
मोहि जँजाल महा उपज्यौ नंदलाल सौं बोलत ही बनि आयौ ।।६८।।

---

1. अ०—'बिहारी कौ'

अथ दुबिधि बिदग्धा

बचन मैं चतुर, सो बचन विदग्धा । क्रिया मैं चतुर, सो क्रिया विदग्धा ।

अथ बचन विदग्धा

॥ कवित्त ॥

वर पिछवारें आंनि बंसी मैं सुजान कान्ह,
हेरी दई एरी तांन परी वाके कान मैं ।
सुनि झुकि झूमि कैं भरोषें झांकी इंदुमुषी,
गुविंद अमंद आभा मंद मुसकानि मैं ॥
आतुरी सौं चातुरी सौं कहति परौसिन सौ,
कही प्यारे पीय सौं सहेट सुभ थांन मैं ।
जमुना के कूल काल्हि चलौंगि तिहारे संग,
झूलन कौं फूलन कौं सघन लतान मैं ॥६९॥

विहारी

रह्यौ मोह मिलनौ रह्यौ, यौं कहि गही मरोर ।
उत दै अलिहि उराहनौं, इत चितई मो ओर ॥७०॥

अथ क्रिया बिदग्धा *

सुंदर

॥ सवैया ॥

जाति ही वाल सषीनि मैं लाल कौ, पीछे ते बोल सुन्यौ अनुरागी ।
क्यौं लषियै लषि जांहि सषी लषिवेइ के लालच के रस पागी ॥

*अ०—प्रति में सुन्दर के सवैये की एक पंक्ति का कुछ अंश लिखकर काट दिया गया है । तदुपरान्त सुन्दर का एक कवित्त लिखा है वह भी लाल स्याही से काट दिया गया है । इनके बाद वही सवैया आता है जो जोधपुर प्रति के अनुसार दिया गया है ।

छोरि दई सब साथ की सुंदर यौं, डगरी डग द्वै करि आगी ।
फेरि कैं नारि कह्यौ चलि नारि सु, टेरन के मिस हेरन लागी ।।७१।।

विहारी

मज्जन करि षंजन नयनि, वैठि ब्योरति वार ।
कच अँगुरिनु विच दीठि दै, निरषति नंदकुमार ।।७२।।

न्हाय पहरि पट झट कियौ, वेंदी मिस पर नाम ।
द्रग चलाय घर कौं चली, विदा कियै घनस्यांम ।।७३।।

अथ कुलटा

जाकैं रति की तृप्तिता नही, सो कुलटा ।

सुंदर

।। सवैया ।।[1]

अंचल डारें रहै अलवेलि, द्रगंचल चंचल हैं चपला तैं ।
नैंक ही नैंन की सैंननि माँझ, अनेक अनाघत आनति घातैं ।।
वैठि झरोषनि मांझ उहै उझकै, दुरिकैं मुरिकैं मुसकातैं ।
जौ ही लौं जी कौं परै कल तौ लौं, चलैं कछु काम कलोल की बातैं ।।७४।।

सदानंद

।। कवित्त ।।

झनक मनक जोति नासिका बनक मोती,
सदानंद कोती तिय तेरे तीर तोरदार ।

1. अलवर वाली प्रति में इससे पहले निम्नांकित दोहा है—

निस दिन जाकैं रति कथा, सदा कांम सौं काम ।
मीत अनेकन सौ रमैं, कुलटा जाकौ नांम ।।

रतन के काननि तरौंनां इंदु आनन पैं,
घुली है अलक मोती-मालनि मरोरदार ।।
उन्नत उरोजनि पै कैसी लषी उरबसी,
तैसी तैसी कसी कंचुकी कसूं भी रंग बोरदार ।
छोरदार अंचल की ओर दुरें दौरदार,
करत कजाकी कजरारे नैंन कोरदार ।।७५।।

विहारी

फिरि फिरि दौरत देषियत, निचले नैंक रहैं न ।
ए कजरारे कौंन पैं, करत कजाकी नैंन ।।७६।।

अथ लच्छिता

वहुत दु रा रांयें हूं सषी नैं लषी है प्रीति जाकी, सो लच्छिता ।

।। सवैया मुकंद कौ ।।

करकी कत चारु चुरी कर की, करिकी लर किंकिनि सुंदर की ।
दरकी कुच कंचु तनी तरकी, तरकी लगै आंषि मनौं सर की ।।
सरकी सिर सारी सु बेसरि की, सरिकी न मुकंद मनोहर की ।
हरकी अति ओप सुधारस की, सरकी छवि शुद्ध सुधारस की ।।७७।।

[सवैया]

लपटी लगि गुविंद लौंने लला सौं, सुलोचन लाली लसें ललकें ।
अलसी अलवेली अली अरबिंद से, आनन पें अलसी अलकें ।।
छतियां छवि छाजें नष-छत की, छकि मो सौं छिपाति कहा छलकें ।
पलटैं पट प्रेम पियूष पियें पुनि, पीक पिया कैं पगी पलकें ।।७८।।[1]

---

1. अलवर की प्रति में यह सवैया इस स्थान पर नहीं है। मतिराम के सवैया के उपरान्त दिया गया है। परिणाम यह हुआ कि अलवर की प्रति में यह सवैया मतिराम का प्रतीत होता है और जोधपुर की प्रति में मुकंद का ।

मतिराम

आई हौ पाइ दिवाय महावर कुंजनि तैं करि कैं सुष सैंनी ।
सांवरे आज सवारचौ है अंजन नैंननि कौं लषि लाजति अैंनी ।।
बात के वूडत ही मतिराम कहा कहिये यह भौंह तनैंनी ।
मूंदि न राषति प्रीति अली यह गूंदी गुपाल के हाथ की वैंनी ।।७६।।

अथ अनसयना त्रिविधि

संकेत कौं विगरचौ जानि कैं दुषित होइ, सो प्रथम । संकेत मैं न जाइ सकी या तैं दुषित होइ, सो दुतिय । हौंनहार संकेत के अभाव तै जो दुषित सो, तृतीय ।

अथ प्रथम अनसयना

।। कवित्त ।।

जमुना के तीर वहै सीतल समीर सोर,
सुक पिक भृंगनि की भीरि सरसात कौं ।
प्यारी सुकुमारी तहां छल सौं सिधारी श्री-
गुविंद सौं मिलन डर डारि तात मात कौं ।।
ललित लवंग की सघन लता सुषी लषि,
बाढचौ अति उर मैं समूह उतपात कौ ।
सूषि गयौ गात बात मुष तैं कही न जात,
मंद मुष भयौ जैसें चंद होत प्रात कौ ।।८०।।

अथ दुतिय अनशयना

।। कवित्त ।।

कुंडल कटक क्रीट सौं न जुही सेवती के,
मालती की माल औ गुलाब छरी पानि मैं ।
रसिक गुविंद स्यांम सुंदर सुजान आये,
या छबि सौं छबोले छबीली गलियांनि मैं ।।

देषत सयानी मुष बानी न बषांनि मन,
अति पछितानी अकुलानि अषियानि मैं ।
जमुना के तट बंसी-वट के निकट आज,
हौं न गई कुंजनि मैं सघन लतानि मैं ।।८१।।

मतिराम

छरी सपल्लव लाल कर, लषित माल की हाल ।
कुमिलानी उर-साल धरि, फूल-माल ज्यौं बाल ।।८२।।

अथ तृतिय अनसयना

विहारी

सन सूषौ बीत्यौ बनौं, ऊषै लई उषारि ।
अरी हरि अरहरि अजौं, धरि धीरज हिय नारि ।।८३।।

मतिराम

।। सवैया ।।

बेलिनि सौं लपटाइ रही हैं, तमालनि की अवलीं अतिकारी ।
कोकिल कीर मयूरनि के कुल, केलि करै जहँ आनँद भारी ।।
सोच करौ जिन होहु सुषी, मतिराम प्रवीन सबै नर नारी ।
मंजुल बंजुल कुंजनि के घन पुंज, सषी ससुरारि तिहारी ।।८४।।

अथ मुदिता

पिय कौ मिलिबौ निहचैं जानि कैं जो मुदित होइ, सो मुदिता ।

सुंदर

॥ सवैया ॥

लोग बरात गये सिगरे तुम, राति जगे कौं चलीं सब कोऊ ।
सुंदर मंदिर सूंनौ जु है इहां, को रषवारी है ताहि न जोऊ ॥
सास कही तब ही लषि ही, लहु री दुलही घर ही इह सोऊ ।
फूलि गये सुनि बात यौं गात, समात न कंचुकी मैं कुच दोऊ ॥८५॥

सास सपूती सु बारि मैं सुती, जिठानी की हैं अषियां दुषियारी ।
सौति सु न्यारी बसै ननदी, अँधरी बहिरी प्रति बेसनि नारी ।
पौरिये आवैं रत्यौंध पिया परदेस, पिता ढ़िग रैंनि अँध्यारी ॥
यौं जिय जानि सुजान तिया कैं, गुबिंद अनंद बढ्यौं उर भारी ॥८६॥

मतिराम

बिछुरत रोवत दुहुन कौ, सषि यह रूप लषैं न ।
दुष असुवा पिय नैंन हैं, सुष असुवा तिय नैंन ॥८७॥

अथ अन्य संभोग दुषिता

लछिन नाम ही मैं[हैं] ।

॥ सवैया ॥

नीकैं भरयौ सिगरौ कुच कुंकुम, सुद्ध सुधी अधरानि ललाई ।
नैंननि तें बिथुरयौ कजरा, मृदु अंग रुमावलि की सरसाई ।
झूठें भनैंनी गुबिंद की सौं न गनैं, अपनैं जन कौं दुष माई ॥
मैं पठई सठ की सुधि कौं, तू सनान सरोवर मैं करि आई ॥८८॥

1. अलवर-प्रति में यह सवैया मतिराम के दोहे के बाद दिया गया है ।

राम

॥ कवित्त ॥

स्वेद-कन जाली अंसमाली की तपनि आली,
सु की कहूं घंडे तोहि बिंबाधर बूझै हैं ।
वैनी जानि सांपिनी सो चौंथी है कलापिनी नैं,
वापुरी चकौरी कौं कपोल चंद सूझै हैं ॥
रांम जू सुकवि मैं पठाई तहां तू न गई,
बंद कंचकी के काहू झार मैं उरूझै हैं ।
उन्नत उरोजनि समुझि संभु किंसुक सौं,
कुंजनि के कौंने इन्है कौंनै आज पूजे हैं ॥८९॥

अथ मानवती

पूर्ण प्रेम के प्रताप तें उपजि परै जो गरूरता, सो मान । सो दुविधि--प्रणयमान, ईर्षामान ।

अथ प्रणयमान

बिना कारण मान होइ, सो प्रणयमान ।

प्रश्न—बिना कारण मान कैसैं बनैं ।

उत्तर—प्रेम कौ कुटिल स्वभाव है, यातें यही मान रूप ह्वै जातु है ।

नंददासजू

उज्जल रस कौ यह सुभाव, बांकै छबि पावै ।
बंक कहनि अरु चहनि, बंक अति रसहि बढावै ॥९०॥

उदाहरन दोहा

रसिक निमष नहि बीछुरें, दुरि बैठें कहुं ओर ।
एतौ मान बिहार मैं, मुरत नैंन की कोर ।।६१।।

यह मान सहजें हांसी षेल ही मैं मिटि जातु है ।

।। सवैया ।।

मानवती गनि प्रान प्रिया कों, गुबिंद नें गान कियौ सुषदाई ।
प्यारौ प्रवीन महा परि बंसी मैं, जानि कैं तान कौं चूकि वजाई ।।
सो सुनि वोलि उठी तजि मान, रह्यौ न गयौ यौ कह्यौ सुषदाई ।
स्यांम सुजान भले जू भले तुम, सीषी जू नीकी नई सुघराई ।।६२।।[1]

अरु कारण तें मान होइ, सो ईर्षा के प्रसंग मैं कहि आये हैं ।

अथ मांन मोचन उपाय

साम्य(साम), दान, भेद, प्रणति, अपेक्षा, प्रसंग, विध्वंस, भेद उपाय मैं अंतर्गत है । अरु दंड तें रस की हानि होत है यातें कह्यौ नही ।

अथ साम्य(साम)—मीठे वचन सुनाइवौ, सो साम्य(साम) ।

।। दयानिधि कौ सवैया ।।

रूठि रहौ हम सौं तौ हमैं नित ही, परि पायनि आय मनायबौ ।
बोलौ न बोलौ हमैं नित बोलिबौ, चाह करौ न करौ हमैं चाहिबौ ।।

---

1. अलवर-प्रति में यह सवैया नहीं है ।

देषौ न देषौ दयानिधि प्यारी हमैं, सुष नैंननि कौ सरसायवौ ।
मानौ न मानौं हमैं यह नैंम नयौ, नित देह कौ नांतौ निवाहिवौ ॥९३॥

आनंदघन

[सवैया]

राधे सुजान इतौ चित दै हित मैं, चित दै कित मांन मरोर है ।
मांषन तें मन कोमल है परि, बान न जानिये कैसें कठोर हैं ॥
सांवरे सौं मिलि सोभित अैसी, कहा कहिये कहिवे कौं न जोर है ।
तेरौ पपीहरा है घन आंनँद है, व्रजचंद पें तेरौ चकोर है ॥९४॥

कृष्ण

॥ कवित्त ॥

लौचन लहे कौ फल सफल हमारौ करि,
प्यारी प्रानपति कौं सनेह रसलीन करि ।
तेंही पाई परम निकाई की अवधि अब,
ए री वृषभान की कुमारि अरबी[1] न करि ॥
टारि पट घूंघट कौ हा हा ए उघारि द्रग,
निज तन पांनिप मैं पीके नेंन मीन करि ।
कंज छबि छीन करि ससिहि मलीन करि,
सौतिन कौं दीन करि प्यारे कौं अधीन करि ॥९५॥

अथ दान—भूषणादिक दैनौं सो, दान ।

केसव

॥ कवित्त ॥

कोमल अमल दल दीनें सो दान मल-[2]
[2]भव अरुण अरुण प्रभुजू कौं सुषदाईये ।

1. अरबी=अकड़
2-2. मलभव=पङ्कज ।

केसौदास सोभा धर सधर सुधा के धर,
अधर मधुर उपमा तौ यह पाइये ।।
उरज मलय-शैल सील सम सुनि देषि,
अलक बलित व्याल आसा उर आइये ।
निपट निगंध यहै हार बंधु जीव कौ सु,
चाहत सुगंध भयौ नैंक ग्रीव नाइये ।।९६।।

अथ भेद—छल के बचन सुनाइबौ, सो भेद ।

केसव

॥ कवित्त ॥

मैंनु अैसौ मनु काहू मृदुल मृणालिका के,
सूत के से सुर धुनि मन ही हरति है ।
दारचौं कै सी वीज दांत पात से अरुण ओठ,
केसौराय देषि द्रग आनँद भरति है ।।
एरी मेरी तेरी मोहि भावति भलाई यातें,
वूझति हौं तोहि और वूझति डरति है ।
मांषन-सी जीभ मुष कंज अैसौ कोमल पै,
काठ-सी कठेठी बात कैसें निकरति है ।।९७।।

सुंदर

[कबित्त]

लाल अपनै यैं अलि नैंकु न रिसैयै बलि,
कहा भयौ चलि हसे नैंक नंद नंद है ।
वैठियत वोलियत हिलि मिलि षेलियत,
कैधौं कीजियत कहा सुंदर यौं दंद है ।।
हा हा देषि सौं हैं तोहि कोटि कोटि सौहैं कियौ,
अैसे समैं मांन तेरौ अैसौ मन मंद है ।
कैसौ नीकौ नायक सकल सुषदायक है,
कैसी नीकी चांदिनि है कैसौ नीकौ चंद है ।।९८।।

सोमनाथ

[कवित्त]

जरक-सी सारी तामैं कारी सटकारी बैनी,
कंचन की भूमि-सी चुरायें चित्त लेति है ।
कंचुकी कसनि की कसनि कसकति पुनि,
फौंदा फबे मोतिन के झवनि समेत है ।।
सोमनाथ कहैं आली अहे निधरक तुव,
बानी तेरी उपमा कहति नेति नेति है ।
कैसी है अयानी जौ तू लालै देति अैसी पीठि,
हे हे धीठि तेरी पीठि तोही पीठि देति है ।।९९।।

अथ प्रणति—पायनी कौ परिवौ, सो प्रणति ।

।। सवैया ।।

ठोडी गही व्रजचंद गुबिंद नैं चंदमुषी की भलैं चित्त चायनि ।
सौंहनि षात पिया रसिया मुष सौंहैं न सौंह चितौति गुसांयनि ।।
कोरि करै कर जोरि बिनै पुनि, हा हा करै औ परै पिय पायनि ।
कान्ह सुजान 'मनावत मान यौं, मानति मानवती ठुकरायनि ।।१००।।

अथ उपेक्षा

मान मनावन उपाय तजि कैं अरु और ही प्रसंग कहियै, सो उपेक्षा ।

।। केसव कौ कवित्त ।।

चपला न चमकति चमक हथ्यारनि की,
बोलत न मोर बंदी सुभट समाज के ।
जहां तहां गाजत न बाजत दमामें दीह,
देत न दिषाई दिन मनि लीनें लाज के ।।
चलि चलि चंद-मुषी सांवरे सषा पैं बेगि,
सोच करि केसौदास उर सुष साज के ।

चढ़ि चढ़ि पवन तुरंगनि गगन घन,
चाहत फिरत चंद जोधा तमराज के ॥१०१॥

किसोर

काली भई कोइल कुरंग बार कारे किये,
कुढ़ि कुढ़ि के हरि के अंक लंक हदली ।
जरि जरि जंबू नद बिद्रुम हैं बदरंग,
अंग फाटि दारिम तुचा भुजंग बदली ॥
एरी चंद-मुषी तैं कलंकी किये चंद आज,
चलि ब्रजचंद पैं किसोर आप अदली ।
लजि गयौ कीर गजराज सिर छार डारैं,
पुंडरीक बूडचौरी कपूर षायौ कदली ॥१०२॥

कोऊ यह तीन उपाय ही कहैं है ।

॥ भाषा भूषण दोहा ॥

सहजैं हांसी षेलतैं, विनय बचन सुनि कांन ।
पाय परैं पिय के मिटैं, लघु मध्यम गुरु मान ॥१०३॥

कहूं अनायास ही मान छुटि जातु है ।

केसव

॥ कवित्त ॥

घननि की घोर सुनि मोरनि कौ सोर सुनि,
सुनि सुनि केसव अलाप आली-जन कौ ।
दामिनी दमक देषि दीप की दिपति देषि,
देषि देषि सुभ सेज सदन सुमन कौ ॥
कुंकुम की बास घनसार की सुबास भयौ,
फूलनि की बास मन फूलि कैं मलिन कौ ।

हसि हसि बोलें दोऊ बिन ही मनायें मान,
छूटि गयौ एकै बार राधिका रवन कौ ।।१०४।।

ऐसें औरहू ठौर जथा संभव जानि लीजै ।

अथ दुबिधि गर्बिता

रूप कौ गर्ब जाकें, सो रूप-गर्बिता । प्रेम कौ गर्ब जाकें, सो प्रेम-गर्बिता ।

अथ रूप-गर्बिता

।। सवैया ।।

चौंकी चकोरी चितै चहूंधां, चकई, चकवानि बियोगता ठानी ।
मूंदि लिये मुष कंजनि तामैं, सिली मुष फंदि रहे अभिमांनी ।।
रोइ परीं भमरी सिगरीं यौं, गुबिंद की सौं कहौ कौ लौं कहानी ।
या दुष तें अलि हौं कबहूं, अब जाउ नही जमुना तट पानी ।।१०५।।

[कवित्त]

सांझी के समाज काज फूल बीनि लाई आज,
अकथ कहानी कहौं कहां लौं नई नई ।
दिन ही मैं फूले कल कुमुद गुबिंद चक्रवा—
कनि तें चकई हू बिसरि गई गई ।।
चौकि चौंकि चितै चित चाय सौं चकित चहु,
ओरनि चकोरनि की मंडिली कई कई ।
गलिनु गलिनु भई अलिनु अलिनु मई,
नलिन नलिन भई कलिनु मई मई ।।१०६।।

बिहारी[1]

अरी षरी सटपट परी, बिधु आधे मग हेरि ।
संग लगै मधुपनि लई, भागिनु लगी अँधेरि ।।१०७।।

मतिराम

कैसें हौं जैहौं जितै, तित है नंदकिसोर ।
दिन ही मैं मुषचंद कौं, लषि ललचात चकोर ।।१०८।।

अथ प्रेम-गर्विता

।। सवैया ।।

सैल चलौ बन कुंज की छैल तौ, गैल मैं आंनि कैं फूल बिछावै ।
झूलौं लतानि मैं जाइ तौ, चाय कै भाय भले सौं गुबिंद झुलावै ।।
आपुही मेरे सिगार वनाइ, दिषाइ कैं आरसी बीरी षवावैं ।
पौढि रहौं पट ओढ़ि तौ, प्रीतम पाइ द्रगंचल सौं सहरावै ।।१०९।।[2]

केसव

।। सवैया ।।

मेरे तौ नांहि नैं चंचल लोचन, नाहि नैं केसव बानी सुहाई ।
जानौं न भूषन भेद कि भाव सु, भूलैं हूं मैं नहि भौंह चढ़ाई ।।
भूलैं हूं ना चितई हरि ओर सु, घैरु करैं इहि भांति लुगाई ।
रंचक तौ चतुराई न चित मैं, कान्ह भये बस कै सैंधौं माई ।।११०।।

---

1. अ०— प्रति में बिहारी का यह दोहा भी है:—

मैं वरजी कै वार तू, इत कत लेति करोट ।
परवरी गडत गुलाब की, परि है गात खरोट ।।

2. अ० प्रति में यह सवैया नहीं है ।

मतिराम

॥ कवित्त ॥

मेरे हसैं हसत है मेरे बोलें बोलत है,
जानत है मो कौं तन मन धन प्रान री ।
कवि मतिराम भौंहैं टेढ़ी कियैं हांसी हू मैं,
छाडि देत भूषन बसन पानी पान री ॥
मैं तौ प्रान प्यारी प्रान प्यारे कौन और कोऊ,
ता सौं अब मांन कीजै कहां कौ सयान री ।
मैं न कामिनी के मैं न काहू के न रूप रीझैं,
मैं न काहू के सिषाये मानौं मन मान री ॥१११॥

अथ अष्ट नाइका

अथ बासक सज्जा

पिय कौ आगम देषि कें श्रृंगार सेज्ज्यादि सजं, सो बासक सज्जा ।

भूधर

॥ कवित्त ॥

जोवन उज्यारी प्यारी बैठी रंग रावटी मैं,
मुष की मरीची सो दरीची बीच झलकें ।
भूधर सुकवि सौहै भौंहै मन मोहैं षरी,
षंजन-सी आंषें मन रंजन-सी पलकें ॥
सीस फूल वैंना वैनी वीर और बंदिनी की,
चंदन की चरचा की चारु छबि छलकै ।
कोरवारी चूनरी चकोरवारी चितवनि,
मोरवारी बेसरि मरोरवारी अलकें ॥११२॥

केसव

॥ सवैया ॥

भाषति है मुष वैंन सषी सहुलास, हियैं अभिलाष विपोहैं ।
कोमल हासनि नैंन विलासनि, अंग सुबासनि कैं मन मौंहैं ॥
मूरतिवंत किधौं तुलसी तुलसी, वन मैं रति मूरति कोहैं ।
कुंज बिराजति गोप-बधू कमला, जनु कंज कुटी मधि सोहैं ॥११३॥

अथ विरहोत्कंठिता[1]

संकेत बिषैं नायक के अनागम के कारण चिंतवन करै, सो विरहोत्कंठिता ।

केसव

॥ कवित्त ॥

किधौं गृह काज किन छूटत सषा समाज,
किधौं कछु आज व्रत बासर विभात तैं ।
दीनौं पैं न सोध किधौं काहू सौं भयौ बिरोध,
उपज्यौ प्रबोध किधौं उर अवदात तैं ॥
सुष मैं न देह किधौं मोही सौं कपट नेह,
किधौं अति मेह देषि डरे अधराति तैं ।
किधौं मेरी प्रीति की प्रतीति लेत केसौराय,
अज हौं न आये मन सोधौं कौंन बात तैं ॥११४॥

अथ स्वाधीन पतिका

जा के पति आधीन, सो स्वाधीन पतिका ।

---

1 अ० प्रति में केवल उत्कंठिता दिया गया है ।

रसखान

।। सवैया ।।

ब्रह्म मैं ढूढ़ि पुराननि गाननि, बेद रचा पढ़ी चौगुने चायनि ।
देष्यौ सुन्यौं न कहूं कबहूं उह, कौंन सुरूप है कैसे सुभायनि ।।
हैरति हेरति हारि परी रसषांन, बतायौ न लोग लुगायनि ।
देषौं कहां उह कुंज कुटी दुरचौ, वैठचौ पलोटत राधा के पांयनि ।।११५।।

केसव

।। कवित्त ।।

चोली कौ सौ पांत तोहि करत सवारिबौइ,
मुकर ज्यौं तोही मांझ मूरति समानी है ।
केसौदास सबिलास तेरौ रूप संपदा सु,
सदा सु सदा उर जीवन की वृत्ति-सी बषानी है ।।
तेरे री मनोरथ भगीरथ रथनि पीछें,
डौलत गुपाल मेरौ गंगा कौ सौ पानि है ।
ग्रैसी बातें कौंन जो न मानी सुनि मेरी रानी,
इनकें तौ तेरी बानी वेदकी-सी वानी है ।।११६।।

।। ध्रुवदासजी कौ दोहा ।।

कुंवरि चरण ग्रंकित धरनि, देषत जिहि जिहि ठौर ।
प्रिया चरण रज जानि कें, लुठत रसिक सिर मौर ।।११७।।

श्रीभट्ट देवजू[1]

प्यारी जू के चरन पलोटत मोहन इत्यादि ।

---

1. ग्र० प्रति में भट्ट देवजू का उद्धरण नहीं है ।

अथ कलहांतरिता

पिय सौं कलह करि पीछैं पछिताइ, सो कलहांतरिता ।

॥ सवैया ॥

जा हित मान महा लघु मांन कैं, सील कुसील कैं लांछिन लीनौं ।
धीरज धर्म तज्यौ री तज्यौ कुल, नांतौ सुनी तिहूं सौं तजि दीनौं ॥
लाज के साज तिना सम तोरि, सह्यौ जु घरा घर घैरु नवीनौं ।
आजु उही व्रजचंद गुबिंद कौ, मैं मतिमंद अनादर कीनौं ॥११८॥

मतिराम

[सवैया]

जाकै लियैं गृह काज तज्यौ न सिषी, सषियानि की सीष सिषाई ।
बैरु कियौ सिगरे व्रज गाऊ सौं, जाके लियैं कुलकानि गमाई ॥
जाके लियैं घर बाहिर हू मतिराम, रह्यौ हसि लोग चवाई ।
जा हरि सौं हितु येक ही बार, गँवारि मैं तोरति बार न लाई ॥११८॥

॥ कवित्त ॥

आये श्री गुविंद व्रजचंद सुरतोत्सव कौं,
तिन्हैं देषि मोहू भयौ रस सरसायकैं ।
दूती की कहानी सो प्रमानी मैं कुमति ठांनी,
स्यांम सुषदानी दिये छिन मैं रिंसायकैं ॥
उर अकुलाइ नारि नीचे कौं नवाय छिति,
व्यरथ लिषति पछिताय पछितायकैं ।

कर पै कपोल की रुषाई मैं निकाई मानौं,
सोयौ चारु चंद अरविंदहि बिछायकें ।।१२०।।[1]

अथ षंडिता

राति कहू रमि कैं प्रभात ही प्रीतमजा के घर आवै, सो षंडिता ।[2]

।। सवैया ।।

सौंही हौ सूरति स्याम सुजान, लटैं बिथुरी सुथरी सरसौंहीं ।
सौंही भयै इत भोरैं गुबिंद रमैं, रजनी सजनी परसौंहीं ।।
सौंही यहै बिन हीं गुनमाल सुभाल, महा बर लीक लसौंहीं ।
सौंही कितेक करौ न करौ तुम, आये लला अषियां अलसौंहीं ।।१२१।।

केसव

[सवैया]

आजु कछू अषियां हरि और-सी, मांनौं महावर मांझ रंगी है ।
मोहन मोही-सी लागति मोहि इते, पर मौहन मोहन लगी है ।।
मेरी सौं मो सहु मान हुवे गहिये, रस रोसकि राति जगी है ।
मेरे बियोग कैं तेज तची किधौं, केसव काहू के प्रेम पगी है ।।१२२।।

।। कवित्त ।।

आंषिन तैं सूझत न काननि तैं सुनत न,
केसौराय अैसे तुम लोक महि गाये हौ ।

---

1. अ० प्रति में यह कवित्त मतिराम के सवैये से पहले दिया गया है ।
2. अ० प्रति में इस प्रकार दिया गया है—
पति रति राति अनत ही करिकैं प्रात आवै जाकैं, सो खंडिता ।
3. अ० प्रति में केसव का कवित्त पहले है और सवैया बाद में ।

बंस की विसारी सुधि काक ज्यौं चुनत फिरौ,
झूठे सीठे सीठ सठ ईठ धीठ ठायौ हौ ।।
दूरि दूरि कहैं तौहू दौरि दौरि गहौं पाय,
जानौ न कुठौर ठौर जानि जिय पायौ हौ ।
को के घर घालिवे कौं कहां बसे घनस्यांम,
घू घू ज्यौं घुसन प्रात मेरे घर आये हौ ।।१२३।।

विहारी

पलनि पीक अंजन अधर, धरें महावर भाल ।
आज मिले सु भली करी, भले वने हौं लाल ।।१२४।।[1]

कत लपटत इत मोगरैं, सौन जुही निसि सैंन ।
जिहि चंपक बरणी किये, गुल्लाला रँग नैंन ।।१२५।।

मतिराम

कोऊ करौ कितेक यह, तजौ न टेक गुपाल ।
निसि औरनि के पग परौं, दिन औरनि के लाल ।।१२६।।

अथ विप्रलब्धा

संकेत मैं आवत ही सूनौ देषि कें सषी सौं सतराइ, सो विप्रलब्धा ।

सुंदर

।। कवित्त ।।

घटा घहराति घन बीजूरी न ठहराति,
आई है हरवराति ऐसे मेघ झर मैं ।
काम की चपेट लियें लाज की लपेट पुनि,
हरि सौं भई न भेट सहेट के घर मैं ।।

1. बिहारी के दोहों का क्रम भी दोनों प्रतियों में उलटा है ।

भँचकी-सी रही कहि सुंदर अचंभै अति,
हली नाहि चली बूडि गई सोच सर मैं ।
आधी आधी आंषिनि तें आलोकति आली तन,
आधी बात आनन मैं आधीक अधर मैं ।।१२७।।

केसव

[कवित्त]

देषत उदधि जात देषि देषि निज गात,
चंपक के पात कछू लिष्यौ है बनाय कें ।
सकल सुगंध डारि दूतिका कौ मान मारि,
पूल-माल तोरि डारि बीरी बगराय कें ।।
लै लै दीह स्वास तजि बिबिधि बिलास हास,
केसौदास ह्वै उदास चली अकुलाय कें ।
देषि कें सँकेत सूनौं कान्ह जू सौं वोलि ऊनौं,
मो से कर जोरि दूनौं दूनौं दुष पाय कें ।।१२८।।[1]

मतिराम

[कवित्त]

सकल सिंगार सजि सँग लै सहेलिनु कौं,
सुंदर मिलन चली आनँद के कंद कौं ।
कबि मतिराम मग करति मनोरथनि,
देष्यौ परजंक पै न प्यारे नंद नंद कौं ।।
नेह सौं लगी है देह दाहन दहन ग्रेह,
बग के बिलोकि द्रुम वेलिन के वृंद कौं ।

---

1. अ० प्रति में यह सवैया और है—

सूल से फूल सु कुवास-सी झखसी से भये भौंन सभागे ।
केसव वाग महावन सो ज्वर चढ़ि जौन्ह सवै अंग दागे ।।
नेह लायौ उर नाहर सी निसि नाह घरी कबहूं अनुरागे ।
गारी से गीत विकी विससी सिगरेई सिंगार अंगार से लागे ।।

चंद कौं हसत जब आयौ मुषचंद अब,
चंद लाग्यौ हसन तिया के मुषचंद कौं ।।१२६।।

।। दोहा ।।

तिय कौं मिल्यौ न प्राणपति, सजल जलद तन मैं न ।
सजल जलद लषि कैं भये, सजल जलद से नैंन ।।१३०।।

अथ प्रोषित पतिका

पति प्रवास ज्ञानवती प्रोषित पतिका प्रवास ज्ञान तीनूं काल मैं हैं या तें प्रोषित पतिका, अवस्यत पतिका, आगम पतिका इनके नाम ही लक्षन हैं। अरु आगत पतिका, आगम पतिका मैं अंतर्गत है ।

इति भरत आचार्ज सूत्रकार की उक्ति ।

अथ प्रोषित पतिका

।। सवैया ।।

फूल पलास की डार अँगार से, देषत ही जियरा पजरायौ ।
क्वैलिया कूर कुलाहल के, रँगरेज कौ रेजा करेजा बनायौ ।।
ब्यारि सुगंध गुविंद बिना, बिरहागिनि दै अति ही तन तायौ ।
दुष अनंत कौ अंत न आयौ री, आयौ बसंत पै कंत न आयौ ।।१३१।।[1]

विहारी

छिनक फुंही लागति छटा, घटा धूम बिस्तार ।
पावस रितु प्राणेस विन, होत सकार ककार ।।१३२।।

1. अ० प्रति में नहीं है ।

।। संभु कौ कवित्त ।।

आहि कैं कराहि कांपि कृस-तन बैठी आइ,
चाहति सँदेसौ कहिवे कौं पै न कहि जात ।
फेरि मसि भाजन मगायौ पत्र लिषिवे कौं,
चाहति कलम गहिवे कौं पै न गहि जात ।।
एते मैं उमडि असुवानि कौ प्रवाह आयौ,
चाहै शंभु थाह लहिवै कौं पै न लहि जात ।
दहि जात गात बात बूझैं हूं न कहि जात,
वहि जात कागद कलम हाथ रहि जात ।।१३३।।

।। सवैया ।।

बालम के बिछूरें भई बात कौं, ब्याकुलता बिरहा दुषदानि तैं ।
चौफरि आनि रची कवि शंभु, सहेलिनु साहिबनी सुषदानि तैं ।।
तू जुग फूटें न एरी भटू यह, काहू कह्यौ सषियां सषियानि तैं ।
कंज से पानि तें पासे गिरे, अँसुवा गिरे षंजन-सी अंषियानि तैं ।।१३४।।

।। देव कवित्त ।।

बालम विरह जिन जान्यौं न जनम भरि,
बरि बरि उठैं ज्यौं ज्यौं बरसैं वरफराति ।
सीतहू मैं वीजना ढुरावति सषी जन पैं,
सौतिन के श्राप तन तापनि तरफराति ।।
देव कहै नैंन तें असुवा सुषात मुष,
निकसै न बात लै लै सिसकी सरफराति ।
लोटि लोटि परति करौट षटपाटी गहि,
सूषे जल सफरी ज्यौं सेज पै फरफराति ।।१३५।।

मतिराम

।। दोहा ।।

लाज छुटीं गृह हू छुट्यौ, मुष सौं छुट्यौ सनेह ।
सषि कहियौ वा निठूर सौं, रही छूटिवै देह ।।१३६।।

अथ प्रवस्यत्पतिका

।। काहू कौ कवित्त ।।

करि हैं पयान पिय नेंकु न सयान तोहि,
कांन बीच आनि परयौ गोला-सौ कहर कौ ।
भोर बिन सोर करि उठयौ तू अचानक ही,
हेला बिन बेला कत दीजिये जहर कौ ।।
दई दई करि दई लई है जु यही निसि,
तूहू परि रहैं पिंड छाडि या सहर कौ ।
जोगी जोग साधि पैं बियोगी हू की सुधि राषि,
संष संष पूरि न रे पिछले पहर कौ ।।१३७।।

ब्रह्म

।। सवैया ।।

हौं सुनि तोहि सुनावत आई, सुनें तब हाथनि ढ़ील बलैगो[1] ।
चाहै कह्यौ सु अवै कहि लै, बहुरयौं कहि है मोहि संग न लैगौ ।।
ब्रह्म भनें विरहा तरु री, सब ही दुष के फल फूल फलैगौ ।
राषि सकै तौ तू राषि लै री, न तौ भामिनी भांवतौ भोर चलैगौ ।।१३८।।

विहारी

पूसमान सुनि सषिन मैं, सांई चलत सकार ।
गहि कर बीन प्रवीन तिय, राग्यौ राग मलार ।।१३९।।

अथ आगम पतिका

।। राय प्रवीन कौ कवित्त ।।

सकल सुगंध चारु मंजुन कैं घनसार,
ऊजरें अँगौछै आछैं अँजन सँवांरि हौं ।
देहौं न पलक एक लगन पलक परि,
पूरि पूरि अभिलाष तपत निवारि हौं ।।

1 बलैगो=मुड़ेगा ।

भनत प्रबीनराय मौ जया फरकिवे की,
सुनौं वांयें नैंन यही बैंन प्रतिपारि हौं ।
जवही मिलैंगे मोहि राजा राम प्रान प्यारे,
दांहिने द्रगहि मूंदि तोही तें निहारि हौं ।।१४०।।

विहारी

बाम वाहु फरकत मिलै, जिय की जीवनि मूरि ।
तौ तोहि तें भेटि हौं, राषि दांहिनी दूरि ।।१४१।।

राम

।। कवित्त ।।

केसरि कपूर और चंदन अगर-चूर,
कुंकुम गुलाव मेद मृग मद गारौंगीं ।
मोलसिरी मालति के माधवी के हार भांति-
भांति के ललित चीर चुनि चुनि धारौंगी ।।
हरष हिये कौं वांह फरकि जतावति है,
रामजू प्रतीति मोहि अंगनि सँवारौंगी ।
अंक भरि प्यारे कौं निसंक आज भेटत ही,
दै जुग उरोज मैं मनोज मीडि मारौंगी ।।१४२।।

अथ आगत पतिका

देव

।। कवित्त ।।

धाई षौरि षौरि तें बधाईं पिय आगम की,
कोरि कोरि भांति रस भायनि भरति हैं ।
मोरि मोरि वदन निहारत बिहार भूमि,
दौरि दौरि आनँद घरी-सी उघरति है ।।

देव कर जोरि जोरि बंदत सरस गुरु,
लोगनि कें लोरि लोरि पांयनि परति हैं ।
तोरि तोरि माल पूरै मोतिन के चौंकनि,
निछावरि कौं छोरि छोरि भूषन धरति हैं ।।१४३।।

सोमनाथ

।। सवैया ।।

गाय हौं मंगलचार घनैं, लषि आवत ही तन ताप वुझाय हौं ।
झाय हौं पाय गुलावनि सौं, जरी बाफ के पांवडे धाय बिछाय हौं ।।
छाय हौं मंदिर बादिले सौं, ससिनाथ जू फूलनि के झर लाय हौं ।
लाय हौं सौ तिन के उर साल, जवै हसि लाल कौं कंठ लगाय हौं ।।१४४।।[1]

अथ अभिसारिका

प्यारे सौं मिलिवे कौं जाय, सो अभिसारिका ।

।। संभु कौ कवित्त ।।

मंद मंद चली नंद नंद पै अनंद भरी,
उमग अमंद संभु मंद मुसकान की ।
बोलति अली सौं विहसित ललना के लट–
कनि की लुरनि औ मुरनि अधरानि की ।।
फहरात छोर थहरात लँहगे की छबि,
गूजरी जयानि की औ जावक जयानि की ।
पगनि की लाली पग नषन उज्याली आगें,
जाली-सी परति जाति लाल मुकतानि की ।।१४५।।

---

1. अ० प्रति में नहीं है ।

इन अभिसारिकानि के लक्षन नाम ही तैं जानि लीजैं ।

अथ प्रेमाभिसारिका

[कवित्त]

चंदमुषी चाय सौं गुविंदहि मिलन चली,
सहज सुगंध की उमंग नई नई है ।
गात की गुराई सुघराई हाव भावनि की,
सुमन सिंगार की निकाई ठीक ठई है ।।
चौंकति चकोर चहुँ ओर चारु चांदिनी तैं,
चंदहू तैं चौगुनी सुछंद छवि छई है ।
अलि अवली मैं अली अधिक अनंद मई,
गली गली गोकुल गुलाब मई मई है ।।१४६।।

केसव

[कवित्त]

नैंननि की अतुराई बैंननि की चतुराई,
गात की गुराई न दुरति दुति चाल की ।
आपुनैं चरित्रनि कैं चित्रत बिचित्र गति,
चित्रिनि-सी लीनैं साथ पुत्रिका गुलाब की ।।
चंद के समान चारु चाय सौं चढ़ी फिरति,
करि कैं तिहारै मृग-नैंननि की पालिकी ।
कीजै पय पान पुनि षैजै पान प्रान प्यारे,
आई है जु आज अलबेली ग्वालि काल्हिकी ।।१४७।।

अथ गर्वाभिसारिका

[कवित्त]

अतर अन्हाय अंग अंग आछे आभूषन,
अंबर अमल आभा है अनेक इंदु-सी ।

आस पास अली अलि अवली है श्री गुविंद,
अंगना अनंग की तें अधिक अमंद-सी ।।
आरसी सौं आनन अलक अवलोकि और,
अंजन अनूप आंजी आंखें अरबिंद-सी ।
एहो अति आदर कैं आतुर सौं अंक लीजौ,
आई अलवेली आज आनंद के कंद-सी ।।१४८।।

केसव

[कवित्त]

चंदन चढ़ाय चारु अंबर के उर हार,
सुमन सिंगार सौंहै आनँद के कंद ज्यौं ।
वारौं कोटि रति नाथ बीना मैं बजावै गाथ,
मृगज मंराल साथ बानी जग बंद ज्यौं ।।
चौंकि चौंकि चकई ज्यौं सौतिन की दूति चली,
सौतें भई दीन अरविंद दुति मंद ज्यौं ।
तिमिर वियोग भूले लोचन चकोर फूले,
आई व्रजचंद्र चंद्रावली चलि चंद ज्यौं ।।१४९।।

अथ कामाभिसारिका

।। कान्ह कवित्त ।।

तैसौ घन पावस कौ उमडि घुमडि आयौ,
तैसी यै अँध्यारी रैंनि सूझत न संग कौ ।
प्यारी वनवारी पैं सिधारी पनवारी मांझ,
सालै उर बांन पंच बान के निषंग कौं ।
पाय तर दव्यौ अहि आहि रह्यौ पाय गहि,
कहां लौं कहत कान्ह कौतुक भुजंग कौं ।

अलवर तथा जोधपुर की दोनों प्रतियों में छंदो का इधर-उधर होना बहुत कुछ पाया जाता है। इसका कारण केवल प्रमाद तो नहीं कहा जा सकता। लिपिकार का निर्णय भी एक कारण हो सकता है। (सम्पादक)

लियें लोह लंगर कौं संगर करन छूट्यो,
जात है मतंग मानों नृपति अनंग को ।।१५०।।

केसव

[कवित्त]

उरझत उरग चंपत फन चरननि,
देषत बिबिधि निसिचर दिसि चारि के ।
गनति न लागति मुसलधार सुनति न,
झिल्ली गन घोष निरघोष जलधार के ।।
जानति न भूषन गिरत फट फाटत सु,
कंटक अटक डर उर न उजारि के ।
प्रेतनि की बूझें नारि कौंन पै तैं सीष्यौ यह,
जोग कौ सौ सार अभिसार अभिसारि के ।।१५१।।

अथ कृष्णाभिसारिका

।। सुंदर कौ कवित्त ।।

कारी घन घटा भारी पहरी लैं कारी सारी,
आंषिन मैं देषि तेरें कारो कजराई है ।
कारौई कुरंग सार घसि कें चलायौ अंग,
कारे चोवा कंचुकी सु भलैई भिगाई हैं ।।
कारे पाट सुंदर पुहाये सब आभूषन,
कारा बैनी पीठि पर छोरि दै सुहाई है ।
अैसी समैं अैसी ह्वै कें जाय मिलि कान्हर सौं,
आज तेरी सिगरी कराई काम आई है ।।१५२।।

मतिराम

उमडि घुमडि दिग-मंडलनि घुमडि रहे,
झूमि झूमि बादर कुहू की निस कारी मैं ।

अँगनि मैं कीनौं मृग-मद अंग राग तैसौ,
आनन छिपाय राख्यौ स्यांम रंग सारी मैं ।
मतिरांम चिवुक मैं स्यांम बिंदु राजि रही,
आभरन साजि मरकत मनि वारी मैं ।
मौहन छबीले सौं मिलन चली अैसी छबि,
छांह ज्यौं छबीली छिपि जाति अधियारी मैं ।।१५३।।

अथ शुक्लाभिसारिका

मुकंद

।। कवित्त ।।

सेत उजियारी सेत फूलनि सँबारी मांग,
धारी सेत अतर सुगंधनि के गन कौं ।
सेत घनसार सेत चंदन चढ़ाय चारु,
सेत हार हीरे के हरैं मुकंद मन कौं ।।
सेत ही हसनि सेत लसनि दसन दुति,
भूषन वनाय सेत मोतिन के तन कौं ।
सेत सारी सेत ही किनारी जरतारी सजि,
प्यारी चली प्रीतम बिहारी के मिलन कौं ।।१५४।।

।। सवैया ।।

भूषन हैं घनसार के चंदन चित्र विचित्र हैं अंग गुराई ।
बादिली सारी किनारी है मोतिनु मांग गुही जुही मालती जाई ।।
दंतनि दीषति दिव्यदि पै पुनि मंजु हसी सरसी छवि छाई ।
श्री व्रजचंद गुबिंद जू पैषिये देषिये मूरतिवंत जुह्नाई ।।१५५।।

सुंदर

॥ कवित्त ॥

फूलनि सौं गुही मांग चंदन चढ़ाय अंग,
उमडि है मांनौं गंग सरद के नीर की ।
सब तन सोहत है मोतिन के आभूषन,
मोतिन की जोति सौं मिली है जोति चीर की ॥
मुसकाति आछी अति दंतनि दिपति दुति,
तैसी यै गुराई कहि सुंदर सरीर की ।
चांदिनी सी बाला मिली चांदिनी मैं असी चली,
मांनौं छीर सिंधु मैं चली तरंग छीर की ॥१५६॥

मतिराम

[कवित्त]

अंगनि सघन घनसार अंग राग सेत,
सारी छीर फैंन कै सी भांति उफनाति है ।
राजति रुचिर रुचि मोतिन के आभरन,
कुसुम कलित केस सोभा सरसाति है ॥
कवि मतिराम प्रान प्यारे सौं मिलन चली,
करि कैं मनोरथनि मृदु मुसकाति है ।
होति न लषाइ निसि चंद की उज्यारी तन,
छांहौं छिपि जाति है ॥१५७॥[1]

विहारी

छिप्यौ छिपा कर छिति छयौ, तम ससि हरि न सँभारि ।
हसति हसति चलि ससि मुषी, मुष तें घूंघट टारि ॥१५८॥

---

1. अलवर वाली प्रति में अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

होति न लखाइ निसि चंद की उज्यारी मुख ।
चंद की उज्यारी तन छांहौं छिपि जाति है ॥

जुवति जौन्ह मैं मिलि गई, नैकु न परति लषाइ ।
सौंधे कैं डोरैं लगी, अली चली संग जाइ ।।१५६।।

दिन मैं सुरत कौ निषेध धर्म-शास्त्र लिषै है यातैं दिवाभिसार कह्यौ नही ।

अथ उत्तमा

सापराध प्रीतम कौं देषि कैं अरु हित ही करै, सो उत्तमा ।

मतिराम

।। सवैया ।।

राति कहूं रमि कैं मन भांवन, आंवन प्रात तिया घर कीनौं ।
देषत ही मुसकाय उठी चलि आगैं, ह्वै आदर कैं फिरि लीनौं ।।
मौंहन के तन मैं मतिराम दुकूल, सूनील निहारि नवीनौं ।
केसरि के रंग सौं रंगि कैं पट पीत, सु प्रीतम के कर दीनौं ।।१६०।।

।। कवित्त ।।

रसिक गुविंद अलसात औ जभांत आये,
अंजन अधर पीक पलनि लगाय कैं ।
बिन गुन माल भाल जावक नयन लाल,
बदलि वसन बतरात तुतराय कैं ।।
देषि हुलसाय चित्त चाइ कियौ आदर सौं,
इंदीबर नैननि के पांवडे बिछाई कैं ।
लीने धरि धाय कैं भुजानि भरि भाइ कैं,
उमंगि उर लाय मंद मंद मुसकाय कैं ।।१६१।।

अथ मध्यमा

अपराध सौं मांन करै हित सौं हित करै, सो मध्यमा ।

।। सवैया ।।

आये कहू रति मांनि पिया लषि, मानिनी मांनि धरयौ जु नवीनौं ।
वैठे जवै ढिग आंनि सुजान, रही मुष मोरि नही हितू कीनौं ।।
हाथ धरें पुलक्यौ तन गोविंद, बंद जवै कर नीवी कौ लीनौं ।
मानद कौ उर आतूर मानि कें, मांन गुमान तही तजि दीनौं ।।१६२।।

तिराम

।। कवित्त ।।

आयौ प्रानपति राति अनतें विताय बैठी,
भौहनि चढ़ाय[नव]रंगी सुंदर सुहाग की ।
वातनि बनाय परयौ प्यारे के पगनि आइ,
छल सौं छिपाय छैल छवि रति दाग की ।।
छटि गयौ मांन लागी आप ही सँवारत है,
षिरकी सुकवि मतिराम पिय पाग की ।
रिस ही के आंसू रस आंसू भये आंषिन मैं,
रोस की ललाइ सो ललाइ अनुराग की ।।१६३।।

अथ अधमा

हित हू किये तें पिय सौं सतराय, सो अधमा ।

[सवैया]

विनती व्रजचंद गुविंद करै तुव, बोल कुवोल बषानति है ।
कर जोरि हहा कें परै पग तौ हठ, पीठि दै वैठिवौ ठानति है ।।
पुनि रूसति बार ही बार बियोग मई, मति कौं उर आनति है ।
नहि मानति माननी मानद कौं इक, मान हीं मान कौं मानति है ।।१६४।।

मतिराम

[कवित्त]

आयौ है सयानपनौं गयौ न अयान तौहू,
नित उठि मांन करिबे की टेव पकरी ।
घर घर मानिनी है मानति मनाये तें वे,
तेरी अैसी रीति और काहू मैं न जकरी ।।
कवि मतिराम काम रूप घनस्यांम लाल,
तेरे नैंन कोर और चाहै एकटक री ।
हहा कैं निहोरैं हूं न हेरति हरिन-नैंनी,
काहे कौं करति हठ हारिल की लकरी ।।१६५।।

अथ भाव हाव हेला[1]

शुद्ध चित्त मैं बिकार जो अदृश्य सो भाव अरु यही नेत्रादिक द्वारा कछु लष्यौ जाइ, सो हाव । अतसै लष्यौ जाइ, सो हेला ।

अथ भाव

।। सवैया ।।

ब्यारि उही सुरभी हू उही, भीरि तु राति उही सुषदाई ।
कुंज उही जमुना हूं उही, अलि पुंज की गुंज उही छबि छाई ।।
बाल उही उह जोवन रूप, गुबिंद कहै उह चंद जुन्हाई ।
पैं कछु या तिय के चित की वृति, और भई सु कही नही जाई ।।१६६।।

1. अ० प्रति में 'इति नाइका भेद' दिया गया है ।

अथ हाव[1]

[सवैया]

इक बाल कंदब षिल्यौ है मनौं, छबि यौं अंग अंगनि पावति है ।
कहि गोविंद आनंद सौं तिन अंगनि, दक्ष सुता सकुचावति है ॥
मुष लज्जित कुंचित नैंननि तैं सिव की, दिसि दीठि चलावति है ।
अपने मन कौं मन हीं मैं उमा इहि, भांति सौं भाव दुरावति है ॥१६७॥

अथ हेला[2]

॥ कवित्त ॥

सरस सुदेस अंग अंगनि उमंगनि सौं ।
रोम लतिका के उठे अंकुर नवोने हैं ।
सीचे सुद्ध सुधारस उज्जल तैं आली रष-
वाली करि मैं न माली निपट प्रवीने हैं ॥
जोवन रसाल ही के मौर हैं मनोहर कि,
भांति भांति फूल अनुराग वाग कीनें हैं ।
उरपुर अमल जमाइवे कौं मेरे जानि,
भले वान आंनि पंचबान नृप दीने हैं ॥१६८॥

केसव

[कवित्त]

मेरौ मुष चूंमैं तेरी पूजी साध चूंमिवे की,
चाटैं ओस अंस क्यौं सिरात प्यास दाढ़े हैं ।

---

1. अ० प्रति में स्पष्टीकरण इस प्रकार है—
अरु यही नेत्रादिक द्वारा कछु लख्यौ जाइ, सो हाव ।
2. अ० प्रति में स्पष्टीकरण इस प्रकार है —
भ्रतसै लख्यौ जाइ, सो हेला ।

छोटे छोटे कर कहा छावति छवीली छाती,
छ्वावौ जाके छ्वाइवे कौं अभिलास बाढ़े है ।।
षेलन जौ आई हौ तौ षेलौ जैसें षेलियत,
केसौराइ की सौं यह कौंन षेल काढ़े हैं ।
फूलि फूलि भेटति है मोहि कहा मेरी भटू,
भेटति न जाहि जे वे भेटिवे कौं ठाढ़े हैं ।।१६९।।[1]

[कवित्त]

चोरि चोरि चित चितवति मुष मोरि मोरि,
काहे तैं हसति हिये हरष बढ़ायौ है ।
केसौराय की सौं तू जंभाति कहा बेर बेर,
बीरा षाहु मेरी बीर आलस जौ आयौ है ।।
अैंड सौं अैंडाति अति अंचल उडात उर,
उघरि उघरि जात गात छबि छायौ है ।
फूलि फूलि भेटति रहति उर झूलि झूलि,
भूलि भूलि कहति कछू तैं आज पायौ है ।।१७०।।[2]

अथ गुन

प्रथम सोभा ।

जोबनादिक तैं अंगनि की जो रमणीयता, सो सोभा ।

।। कवित्त ।।

उज्जल अनूप अति उत्तम सदन सुभ,
मदन महीपति की क्रीडा कौं सुहायौ है ।
प्रीतम के पुन्यनि कौं प्रगट परम पद,
सुक्रति सुधन्य जानैं भौगिवे कौं पायौ है ।।
कल कलपद्रुम अपूरव कौ फल भल,
सरस रसिक श्री गुविंद मन भायौ है ।

1-2 अलवर प्रति में ये दोनों कवित्त नहीं है ।

ग्रैसौ नव जोबन की सोभा कौ समूह तेरैं,
हौं न जानौं कौंन भांति ग्रंग ग्रंग ग्रायौ है ।।१७१।।

ग्रथ कांति

कंदर्प के बिकास तें विस्तरित जो सोभा, सो कांति ।

।। सवैया ।।

कुंदन-सौ तन इंदु-सौ ग्रानन, जौंन्ह से हास बिलास सुहाते ।
ग्रोठ मजीठ-से नैंन ससी सिसु-से, कच कज्जल से दरसांते ।।
सौंधे समूह-सौ ग्रंग सुवास ग्रली, ग्रनयास भये मदमांते ।
सुंदरि तैं ब्रजचंद गुविंद कौं, न्याय किये वस नेह के नांते ।।१७२।।

लाल

।। कवित्त ।।

कौंल[1] दल पांवडे निकस कि धरति पांउ,
जौ पै कहूं जागतु है भाग ग्रंगनाई कौ ।
ताहि तुम कहौं ग्रव ल्यावौ कि निकुंजनि लौं,
भौंन हूं मैं मानैं डर भौर की ग्रवाई कौ ।।
ग्रौर ग्रति कठिन सु कैसें कैं दुरांऊं लाल,
वार न भयौ है दीप गात की गुराई कौ ।
जहां जहां मंजुल बद[न]बिहसात वाकौ,
जहां जहां जान्यौं जात जनम जुन्हाई कौ ।।१७३।।

ग्रथ दीप्ति

ग्रंतित बिस्तरित जो कांति, सो दीप्ति ।

---

1. कौंल=कोमल ।

॥ सवैया ॥

सुंदरताई कौ हास प्रकास, बिलास है जोवन कौ सुषदाई ।
भूषन भूतल कौ कलपद्रुम, पूरन प्रेम कौ लीनैं लुनाई ॥
नैंननि कौं अधि देव बसी कर हैं, हिय कौं यौं गुविंद नैं गाई ।
अैसी अनौषी वा तिय के अंग अंग, उमंगि महा छबि छाई ॥१७४॥

॥ कवित्त ॥

काम भट भूप कौ कि बिक्रम है कि लावंन्य,
लछिमी के मद ही की छकनि सुतौंन है ।
भूषणादि संपति मधुरिमा कौ हास की,
सुहाग की बिनोद भूमि सरस सुठौंन है ॥
किधौं श्री गुबिंद गुण संपति कौ अद्वैत कि,
केली विलासवली कौं भली भांति भौंन है ।
मेरे इन लोचननि चतुर चकोरनि की,
जगमग जोह्न यहै हौंन जानौं कौंन है ॥१७५॥

अथ माधुर्ज

सर्व अवस्थानि मैं जो रमणीयता, सो माधुर्ज ।

॥ कवित्त ॥

रूप गुन जोबन अनूप सदा सीता जू कैं,
सुंदर सरस सोहै सहज सुभायकैं ।
आनंद के कंद श्री गुविंद रामचंद्र धरचौ,
इक पतिनी कौ व्रत न्याय चित चायकैं ॥
सकल सिंगार सजि भांवते भवन बैठी,
रतन-सिंघासन पै छवि अति छायकैं ।
तैसी ए लसति बन-वीथिनु सघन तन,
भूषन बसन वलकल के बनायकैं ॥१७६॥

अथ प्रगल्भ्य

अत्सै दृष्टता, सो प्रगल्भ्य ।

॥ सवैया ॥

उरोजनि कौं कर सौं अति मीडि, नषच्छत दीनें अनेक अमंद ।
अनौषे अलिगंन चुंबन चुंवि, डसी दसनावलि तें नंद नंद ॥
भली विधि वांधी भुजानि के वंधन, अैसो न आंन महा द्रढ़ फंद ।
तऊ सविलासनि दास कें राष्यौ, पिया रसिया व्रजचंद गुविंद ॥१७७॥

अथ औदार्य

तीनू काल विषैं नमृता, सो औदार्य ।

॥ सवैया ॥

व्रजचंद गुविंद कौं चंदमुषी सुष दै, सब भांति लडावति है ।
अपराध कौं नैंकहू मानें नही, नित नेह नयौ सरसावति है ॥
मुष तें कटु बात कहै न कछू, भृकुटी नही बंक चढ़ावति है ।
जल सौं भरि नैंन सषी दिस, देषति सैंन नहीं समुझावति है ॥१७८॥

अथ धैर्य

चंचलता तें रहित जो मन की वृत्ति, सो धैर्य ।

॥ सवैया ॥

मांनहू जाहु गुमानहूं जाहु, चवावहु क्यौं न चलौ चहुं घांही ।
लाज समाज हू सीलहू जाहु, कलंक निसंक लगौ जग मांहीं ॥
हौनी जु होहु सु होहु सषी, व्रजचंद गुबिंद तजौं तऊ नांहीं ।
ज्यौं नहीं छाडति छैल छबीले, छिपा कर कौं छिनहूं छित छांहीं ॥१७९॥

।। कासीराम [कौ] कवित्त ।।

घर तजौं बर तजौं नागर नगर तजौं,
डर तजौं कासीराम काहू सौं न लजि हौं ।
हेम तजौं नेम तजौं प्रेम कहौ कैसें तजौं,
लाज साज तजौं अरु ग्रै सेज सजि हौं ।।
बावरे कितेक लोग बावरी कहत मो सौं,
बावरी हू कहौ काहू नाहि नैं वरजि हौं ।
कही है सुनाय तजौं बाप तजौं भैया तजौं,
मैया दैया तजौं पै कन्हैया कौं न तजि हौं ।।१८०।।

इति गुन ।

अथ लीलादिक हाव

अथ लीला

अंग वेषादिक करि कैं प्यारे कौ अनुकरन करनौं, सो लीला ।

।। सवैया ।।

कछिनी कटि क्रीट सिषी सिर पैं, श्रुति कुंडल कौ झलकावति है ।
पट पीत धरैं वन-माल गरैं, मधुरैं मुष वैंन बजावति है ।।
व्रजचंद गुविंद कौं वेष कियें, लषि दर्पन नैंन नचावति है ।
हसि झूमैं झुकै झिझकै उझकै, मुष चुंबन कौं ललचावति है ।।१८१।।

।। काहू कौ सवैया ।।

उह मोर किरीट बिराजत सीस, उहै मुरली बन-माल हियें ।
मकराकृत कुंडल तैसे बने, पट पीत अनूपम ओप लियें ।।
मुष की छवि मौंहन आज विलोकि, अघात न लोचन रूप कियें ।
पलट्यौ रंग जानति हौं इहि हेत सु, प्रान पियारी कौ ध्यान कियें ।।१८२।।

॥ काहू कौ सवैया ॥

आपुनी ओर की चाहै लिष्यौ, लिपि जात कथा उत मौहन ओर की ।
प्यारी मया करि वेगि मिलौ, सही जाति व्यथा नहि मैंन मरोर की ॥
आपु ही बाचि लगावति अंक कहै, किन आनी चिठी चितचोर की ।
राधे कौं राधे लगी रट भोर तें, ह्वै रही मूरति नंदकिसोर की ॥१८३॥

विहारी

पिय के ध्यान गही गही, रह उही होइ नारि ।
आपु आपु ही आरसी, लषि रीझति रिझवारी ॥१८४॥

अथ विलास

बांछित के देषे तें बोलनि हंसनि नेत्रादिकनि मैं जो बिकार, सो बिलास ।

॥ कवित्त ॥

बांनी मैं बिचित्रताई हास मैं मधुरताई,
चपलाई भौंहनि मैं गति मैं सुहाई है ।
उरज उतंगताई अंगनि मैं सत्वताई,
सहज सुगंध मैं मनोहरता छाई है ॥
मदन महीप उर-पुर थिरताई पाई,
धीरज की कटकाई सकल पलाई है ।
रस बस रसिक गुबिंद करिबे कौं तेरैं,
सरस निकाई माई का पैं जाति गाई है ॥१८५॥

अथ बिच्छित

कबहूं थोरी हू सोभा बिसेस सोभा कौं करै, सो विच्छित्ति ।

॥ कवित्त ॥

नीर निरमल न्हाय तीर जमुनां कैं षरी,
उज्जल सरीर भौंर भीर आस पास है ।
ललित तमोल की ललाई अधरनि छाई,
तैसौ रह्यौ लपटि निपट झीनौं बास है ॥
एते ही सिंगार तैं गुविंद नव सुंदरी की,
सुंदरता सौं गुनी सरस सविलास है ।
मदन महीपति सदन उर अंतर,
निरंतर बसत ताकौं प्रगट प्रकास है ॥१८६॥

विहारी

सोभित धोती सेत मैं, कनक बरन तन बाल ।
सारद बारिद वीजुरी, भारद की जित लाल ॥१८७॥

विहारिनदासजू[1]

वुरौ सिंगार बिहार मैं, भूषन दूषन जानि ।
बिहारी दासि सेवति सुखै, मन कौ मरम पिछानि ॥१८८॥

अथ विव्वोक

अत्तित गर्व तैं भावते कौ जो अनादर, सो विव्वोक ।

॥ सवैया ॥

नैंननि सौं नहि देषनि सो उठि, धावनि आदर कैं हित नीकी ।
नांही करै व्रजचंद गुबिंद सौं, हाहीं सु तौ निहचै निज जीकी ॥
मौंन गहैं हीं रहै सु उहै प्रति, उत्तर है मति मोहत पीकी ।
यौं सरसावति मींत सौं प्रीति नई, कछु रीति नई दुलही की ॥१८९॥

---

1. अलवर वाली प्रति में विहारिनदास जू का यह दोहा नहीं हैं ।

अथ किलकिंचित[1]

गर्वाभिलास रुदित, स्मित, असूया, भय कोपादिकनि की हर्ष तें जो संकरता, सो किलकिंचित ।

॥ सवैया ॥

पिय कौं कर रोकति है रिस कैं, चित की अति चाह दिषावति है ।
बरजं तरजै कटु बातनि तें, मधुरैं मुष हासि जतावति है ॥
असुवा बिन नैंन सरोज कियें रस, प्रीति की रीति बढावति है ।
अरविंद बिलोचनी इंदुमुषी, व्रजचंद गुबिंद कौं भावति है ॥१६०॥

सुंदर

[सवैया]

गौंनौ भये दिन द्वैक भये, कबि सुंदर नेह दुहूं मैं नवीनौं ।
षेलत काम कलोलनि मैं ललना कौ, सुरूप लला लषि लीनौं ॥
कोऊक अंग दव्यौ तिय कौ तब, एक ही बार सबै यह कीनौं ।
रोई रिसानी डरी थहरानी चकी, सकुचानी चितै हसि दीनौं ॥१६१॥

केसव

[सवैया]

कौंनैं त्रसै बिहसै लषि कौंन हि, का पर कोपि कैं भौंह चढ़ावै ।
भूलनि लाज भटू कबहूं कबहूं, मुष अंचल मेलि दुरावै ॥
कौंन की लेति बलाय बलाय ल्यौं, तेरी दसा यह मोहि न भावै ।
अैसी तौ तू कबहू न भई अब, तोहि दई जिनि बाय लगावै ॥१६२॥

---

1. अलवर की प्रति में स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

प्यारे कौं देषि कै हास्यादिक चेष्टानि की जो संकरता, सो कलकिंचित ।

अथ मोट्टायत

प्यारे के गुन श्रवन करिवे कौ हर्ष हिय मैं बाहिर श्रोत्रादिकनि कौ षुजावनौं, सो मोट्टायत ।

॥ सवैया ॥

स्यांम सुजान कथानि मैं नाम सुनैं, जब प्रान पियारी तिहारी ।
कान षुजाइ रहै मुष मोरि, जँभावति है छिन हीं छिन भारी ॥
चौगुनी चाह रहै चित मैं सु उहै, गति कौन पै जाति उचारी ।
आनँद कंद गुविंद अनौंषी मैं प्रीति, प्रती[त[की रीति निहारी ॥१६३॥

अथ कुट्टमित

सुष के समैं दुष कौं प्रगट करनौं, सो कुट्टमित ।

॥ सवैया ॥

चंद अमंद प्रकाश मैं गोविंद, चंदमुषी सौं रमैं गलवांही ।
अंक निसंक लै पीवै पिया, अधरामृत मोद महा मन मांही ॥
नांक चढ़ाय षिजै वरजै तरजै, तरुनी सुकही नहि जाई ।
नीबी बिमोच रसीबी करै अति भोग, सँजोग मैं रोग की नांही ॥१६४॥

निवाज

[सवैया]

बाजैं चुरी बीछिया घुघुरू मुष स्वासैं कढ़ैं ते सुगंध झकोर सौं ।
ऊचे उरोज लगे थहरैं छुटि केस, निवाज रहे चहु ओर सौं ॥
मोल ही लेति सुहाग भरी चितवै, जव लाग भरी द्रग कोर सौं ।
सौगुनौं स्वाद वढ़ावति सुंदरि वा, सुष मैं सिसकीन के सोर सौं ॥१६५॥

अथ विभ्रम

विना स्थान भूषन धारन करिवौ, सो बिभ्रम ।

।। कवित्त ।।

सेत जर सारी धारी मैं किनारी वारी,
वारी सारी सरस सुदेस मन मानिकैं ।
चोवा मृग-मद के भरोसैं अँग अँग राग,
कीनौं घनसार चारु चंदन कौं सानिकैं ।।
रसिक गुविंद की सौं सौति दुषदाई माई,
संग कौं जगाई सुषदाई सषी जानिकैं ।
औंपें घर वाहिर न आई पग एक हू,
सहाई भये पूरव परम पुन्यं आंनिकैं ।।१६६।।

विहारी

रही मथनिया ढ़िग धरी, भरी मथनियां बारि ।
कर उलटीं उलटी रईं, नई बिलोवनि हारि ।।१६७।।

अथ ललित

सुकुमारता सहित अंगनि कौ जो दिषावनौं, सो ललित ।

केसव

।। कवित्त ।।

कोमल बिमल मन बिमला-सी सषी साथ,
कमला ज्यौं लीनैं हाथ कमल सनाल के ।
नूपुर की धुनि सुनि भौंरैं कलहंसनि कैं,
चौंकि चौंकि परैं चारु चैटूआ मराल के ।।
कचनि के भार कुच भारनि सकुच भार,
लचकि लचकि जात कटि तट बाल के ।
हरैं हरैं बोलति बिलोकति हसति हरैं,
हरैं हरैं चलति हरति मन लाल के ।।१६८।।

॥ सवैया ॥

संग अली अवली अलि की, कर कंज की मंत्र कली लै फिरावै ।
अंग सुबासनि कोमल हासनि, नैंन बिलासनि मैंन नचावै ॥
भूषन भेद की कौंन कहै धुनि, नूपुर ही की कहि नहि आवै ।
नृत्यति-सी गति वानी बिचित्रित, मित्र गुविंद कौ चित्त चुरावै ॥१९९॥

अथ मद

सौभाग्यादिक के गर्व तें प्रगट्यौ जो चित्र मैं विकार, सो मद ।

॥ सवैया ॥

मित्र के पीक कौ चित्र कपोलनि, जानि तिया तू कहा गरवावै ।
मेरे पिया रसिया की कथा, मुष एक तें माई कहा कोउ गावै ॥
चित्र चरित्र बिचित्र गुविंद, अनंद सौं आछे अनेक बनावै ।
मो अंग अंग अनंग उमंग सौं, जौ कहुँ कंप नही होइ आवै ॥२००॥

अथ विकृत

कहिवे के समैं हूं कहिबौ नही बनैं, सो बिकृत ।

॥ सवैया ॥

लोग लुगाइन के डर मित्र मिलाप घने दिन मैं दुरि कीनौं ।
बूझै उहै कसरात की बात भली बिधि भांवतौ ह्वैं कैं अधीनौं ॥
अंग अनंग उमंगनि सौं उपज्यौ उर सात्विक भाव नवीनौं ।
सोई तिया नें पिया रसिया व्रजचंद गुबिंद कौं उत्तर दीनौं ॥२०१॥

।। कवित्त ।।[1]

[दोहा]

बिनती रति बिपरीत की, करी परसि पिय पाय ।
हसि अन बोलैं हीं दियौ, उत्तर पियाहि जताय ।।२०२।।

अथ तपन

पति के वियोग तैं जो मदन चेष्टा, सो तपन ।

।। सवैया ।।

आनंद कंद गुविंद विना मद मैं न सुमाई महा सरसावै ।
नैननि तैं मग जोवै उहै तरुनी हरिनी ज्यौं हियें अकुलावै ।।
चंदन चंद सरोज की सेज सुगंध समीर सरीर तचावै ।
लोटहि पोट करौट छिना छिन नागरि कौं निसि नींद न आवै ।।२०३।।

अथ मौग्ध्या

जानीहूं वात कौ वूझनौं, सो मौग्ध्य ।[2]

।। कवित्त ।।

कौंन तरवर ए सघन बन कौंन से के,
कौंन के लगाये ग्राम कौंन से की वाट के ।
उह तरवर कौंन जहां व्रजभूषन जू,
भूषन बनाये लै लै सुमन सुघाट के ।।
रसिक गुबिंद बाजूबंद बलयादिक,
उतारि धरे चारु हार हीरनि के ठाट के ।
लोल नैंनी आगैं बिन मोल ही बिकाने पिय,
सुनत अमोल अैसे वोल ओट पाट के ।।२०४।।

---

1. अलवर की प्रति में इसे बिहारी का दोहा कहा गया है ।
2. अ० 'मुग्ध्य'

केसव

[कवित्त]

हसति हसति आई आनि एक गाथा गाई,
कही जू कन्हाई या को भेद समुझायकैं ।
दंपति अधर रस पीवै कैसैं एकै बार,
रदन कर जल थल दीजियै बतायकैं ।।
यह परिरंभन कहावै कौंन केसौराय,
मेरी सौंह मो सौं तुम राषौ जु दुराइकैं ।
राधिका की अधिकाई कहा कहौं माई लियौ,
आपुनौं पियारौ पीव आपु ही मनायकैं ।।२०५।।

अथ विक्षेप

आभूषन की अर्द्ध रचना, सो विक्षेप ।

।। सवैया ।।

कछु मोतिनि मांग गुही न गुही, कछु केसरि षौरि लगावति है ।
कछु भूषन भेद रचे न रचे, रसिया पिय सौं वतरावति है ।।
तिरछाय चितै रहसै बिहसै, व्रजचंद गुबिंद कौ भावति है ।
उह चित्रिनि चारु चरित्र बिचित्रनि, मित्र को चित्त चुरावति है ।।२०६।।

अथ कौतूहल

सुंदर वस्तु के देषिवे की इच्छा को जो आधिक्य सो कौतूहल ।

।। सवैया ।।

आये गोंबिंद सुने बन तें अति, मारहू तें सुकुमार कन्हाई ।
गोकुल की कुल की तिय की मति, देषन कौं अति ही ललचाई ।।
अंजन सीक दई इक हो द्रग, दूसरी हाथ की हाथ सुहाई ।
अंग अनंग उमंग सौं औचक, आतुर हीं उठि देषन धाई ।।२०७।।

अथ हसित—जोबन तैं प्रगट्यौ जो अथा हास्य, सो हसित ।[1]

॥ कवित्त ॥

रसिक गुविंद स्यांम सुंदर कौं देषत,
अमंद हसि उठी चंदमुषी विन काज है ।
यातैं यह बात घात भीतरि की भली-भांति,
बाहिर बिसेष लषी सषिनु समाज है ॥
जोवन की जवर जमायति कौ जोर जानि,
भाजि गई बापुरी रुषाई अरु लाज है ।
उर-पुर राज राजनीति सौं करत अति,
राजनि कौं राजा महाराजा रतिराज है ॥२०८॥

अथ चकित

काहू कारण तैं पति के निकट जो भय संभ्रम, सो चकित ।

॥ कवित्त ॥

आज जल-केलि मैं नवेली अलबेली केली,
रसिक गुबिंद अंग संग जानि लीजियै ।
औचक निकसि गई परसि उरू कौं कोऊ,
सफरी सचिक्कन यौं सजनी सुनी जियै ॥
ता छिन छबीली अति छोभ कैं उछरि परी,
बां छवि की कछू उपमांन आंन दीजियै ।
तरुनी अकारन ही छोभ करै कारण तैं,
छोभ करै छैल तौ परेषौ कहा कीजियै ॥२०९॥

अथ केलि

रति के समैं पति सहित जो क्रीडा, सो केलि ।

---

1. अलवर प्रति में स्पष्टीकरण न देकर उदाहरण ही दिया गया है ।

॥ सवैया ॥

सीतल मंद सुगंध्र समीर अमंद है, चंद की चारु जुन्हाई ।
चंद-मुषी व्रजचंद गुबिंद के संग, रमैं अति आँनददाई ॥
पीवै पिया रसिया अधरामृत त्यौं त्यौं, करै तिय दूनी दिठाई ।
गेंद उरोजनि की करि मार भुजा भरि, अंक लगै लपटाई ॥२१०॥

इति हाव ।

अथ दूती

बाक्यादि चातुरता करि कैं अरु नायक सौं नाइका भली प्रकार आंनि मिलावै, सो दूती ।

अथ उत्तम दूती

हित के वचन मीठे सुनाइ कैं अरु मन कौं हरै, सो उत्तम दूती ।

केसव

॥ कवित्त ॥

आंषिन के तारेनि मैं राषौं प्यारे पुतरो कैं,
मुरली ज्यौं लाय राषौं दसन बसन मैं ।
राषौं भुज बीच बनमाली बन-माल करि,
चंदन ज्यौं चतुर चढ़ाय राषौं तन मैं ॥
केसौराय कलकंठ करि कठुला कैं करम,
करम क्यौं हूं आंनी हैं भवन मैं ।
चंपक कली ज्यौं कान्ह सूंघि सूंघि देवता सी,
लेहु मेरे लाल याहि मेलि राषौ मन मैं ॥२११॥

अथ मध्यम दूती

कछू हित के बचन कछू अनाहित के कहै, सो मध्यम दूती ।

॥ मतिराम कौ कवित्त ॥

चरन धरै न भूमि बिहरैं जहां हीं तहां,
फूले फूले फूलनि बिछायौ परजंक है ।
भार के डरनि सुकुमारु चारु अंगनि मैं,
करति न अंग राग कुंकुम की पंक है ॥
कबि मतिराम नैंक वातायन बीच आयें,
आतप मलिन होत बदन मयंक है ।
कैसें उह बाल लाल बाहिर बगर आवै,
बिजन बयारि लागैं लचकति लंक है ॥२१२॥

॥ दोहा ॥

रीझि रही रिझवारि उह, तुम ऊपर व्रजनाथ ।
लाज सिंधु की इंदिरा, क्यौं करि आवै हाथ ॥२१३॥

गंग

॥ कवित्त ॥

वाहि न सुहाति बात कहे सौह षाति बार,
बार गयें कछ फेरे सौ करति है ।
कहै कवि गंग सो तौ जोबन मतंग माती,
कर के छुवे तें माते हाथी ज्यौं अरति है ॥
तिहारी तौ प्यारी समुझाई समुझति नांहि,
सौंने कौ सुमेरु भई टारी न टरति हैं ।
कहिवे की हुती सुतौ कहि आई प्यारे लाल,
और कहा दूती सम सेरनि लरति हैं ॥२१४॥

सुंदर

[कवित्त]

पहलैं हौं गई नीकैं बातनि लगाइ लई,
मैं हूं जानी भली भई रीझि बतराति है ।
सुंदर मैं हसिकैं चलाई रस कथा कछू,
हसि हसि रीझि रीझि मुरि मुसकाति है ।।
अैसे मैं तिहारौ नाम लीनौं मन मौंहन जू,
और रंग और रीति और भई भांति है ।
देषति ही सौंहै भये नैंन तिरछौहैं उह,
गईं फिरि भौंहैं ज्यौं कवांन फिरि जाति है ।।२१५।।

अथ अधम दूती

सतराय कैं बचन कहै सो अधम दूती ।

मतिराम

।। कबित्त ।।

जानत न कछू पैं कहावत रसिकराय,
ल्याव ल्याव करत तिहारैं यह टेक हैं ।
कूरनि की रीति है जुडेल अैसौ डारि देत,
मतिराम चतुर चतुरता लियैं कहैं ।।
बोली न नवेली कछू बोल सतराय बाहि,
मनसिज ओज कौ अनौषौ आज से कहै ।
बात के कहेतैं अगराति अरसाति गात,
सौंहैं करि नैंन उह सौंहीं भई नैंक है ।।२१६।।

सुंदर

[कवित्त]

दीठि सौं न जोरै दीठि दै दै बैठै फिरि पीठि,
सुंदर बसीठिं कहौ कहा करै ताती सौं ।
तिहारैं तौ लागी जक ल्याव ल्याव जाह जाह,
हौं तौं फिरि जाती पैं तिहारी जौ न षाती सौं ।।
कोऊ पचौ राति दिन निबहै न एकौ छिन,
नेह बिन कैसें कैं उज्यारौ होत बाती सौं ।
हौ तौ थकी जाय जाय हाहा षाय गहे पाय,
आप ही मनाय जाय लाय लेहु छाती सौं ।।२१७।।

केसव[1]

[कवित्त]

सुष दै सषीनि बीच दै कै सौंह घाय कैं,
षवाइ कछू स्वायंबर कीनी परबस है ।
कोमल मृणालिका-सी मल्लिका की मालिका-सी,
बालिका जु डारि मीडि मांनस कि पसु है ।।
जान्यौं न बिभात भयौ केसव सुनैं को बात,
देष्यौ आनि गात जात भयौ किधौं असु है ।
चित्रि-सी जु राषी यह चित्रिनी बिचित्र गति,
कहौ धौं नये रसिक या मैं कौंन रसु है ।।२१८।।

इन दूती सषीनि के लक्षन नाम हीं तें जानि लीजें ।

1. अलवर-प्रति में सुंदर के सवैया पर ही 'दूती कर्म' प्रसंग समाप्त हो जाता है ।
'केसव' का कवित्त जोधपुर-प्रति में और मिलता है ।

अथ दूती-कर्म कुल द्रव्यादि कथन

॥ कवित्त ॥

नदन सुथान सुधा पांन जांन चढ़िवे कौं,
मंदाकिनी गंग की तरंगनि मैं न्हाय है ।
देव'र उपेंद्र अति आनंद कौ कंद पै है,
रंभादिक दासिन पैं हुकम जमाय है ॥
रांनी इंद्रपुरी की जिठानी इंदिरा की ग्रैसें,
जग मैं सुजस श्री गुविंद कबि गाय है ।
दमयंती सुंदरि या सुंदर पुरंदर कौं,
जौ पै बरमाल तू रसाल पहराय है ॥२१९॥[1]

विहारी

रही लटू ह्वै लाल हौं, लषि उह वाल अनूप ।
कितौ मिठास दयौ दई, इते सलौंने रूप ॥२२०॥

हौं रीझी लषि रीझि है,[2] छबिहि छबीले लाल ।
सौं न जुही-सी होति दुति, मिलति मालती माल ॥२२१॥

अथ विरह निबेदन

अथ नायका की विरह निबेदन नायक सौं

॥ सवैया ॥

काल्हि की ग्वालि तौ आज हू लौं, न सँभारति केसव कैसै हूं दैहै ।
सीरी ह्वै जाति उठै कबहूं जरि जीव, रह्यौ कि रही रुचि रैहै ॥

---

1. अलवर-प्रति में 'जमाय', 'गाय', 'पहराय', के स्थान पर 'जगाइ', 'गाइ', 'पहराइ', शब्द मिलते हैं ।
2. अलवर-प्रति में इस प्रकार दिया गया है—
है उझकि झांकि इकबार । रूप रिझावनि हार, उह ए नैंना रिझवार ॥२२०॥
हौं रीझी लखि रीझि हौ ।

कोटि बिचार विचारति हैं, उपचारनि कैं वरसें सषि मेहै ।
कान्ह बुरौ जिन मानौं तिहारी, विलोकनि मैं बिसु वीस विसे हैं ॥२२२॥

[सवैया]

काल्हि ही कूल कलिंदी के आनि, गुबिंद जू मूरति देषी तिहारी ।
ता छिन तैं उह बौरी भई, कुलकानि की मैं उ सबै तजि डारि ॥
षाइ पिवै न सुनैं न कछू, न सभारति है अँगिया अँग सारी ।
लागि रही रट एक ही एक, बिहारी बिहारी बिहारी बिहारी ॥२२३॥

सुंदर

[कवित्त]

मेरी आली आगैं काल्हि टेढ़ी चाल चालि,
आये ता घरी तैं षेलति न बोलति है ।
जैसें मीन बिन जल क्यौं हू न परति कल,
बेसुधि बिकल भई सुंदर ससति है ॥
कहूं डारें रहै मन नैंकु न सभारै तन,
तिहारे निहारैं हरि न्याय तरसति है ।
आंषिन मैं भौंहनि मैं मुरि मुसकानिन मैं,
ठौर ठौर ठग तेरैं ठगौरि बसति है ॥२२४॥

कासीराम

[कवित्त]

नागरि गई ही घाट गागरी भरन काज,
हाटक सौं तन ताकौ कैसी नीकी षरी है ।
तब तुम एक पल ताकि रहे कासीराम,
ता घरी तें उह तौ घरी-सी करि धरी है ।

हाथ पाय टारति न आँचर सँभारति न,
आँखिन उँधारति न यौं चेत परी है ।
ए हो बनवारी जू तिहारी चितवनि मांझ,
बिष है कि सुरा है कि जंत्र है कि जरी है ।।२२५।।

अथ नायक की बिरह निबेदन नाइका सौं

।। कवित्त ।।

तेरे नैंन बान लगे गोबिंद सुजान कैं सु,
भूल्यौ सुधि बुधि तन मन धन धाम है ।
गोधन चरैंबौ बन जैबो मुसकैबौ गैबौ,
बंसी कौ बजैबौ षंबौ पीवौ कौंन काम है ।।
बिरह बिथारी भारी व्याकुल बिहारी या तैं,
प्यारी प्यारी प्यारी यौं पुकारैं इक नाम है ।
झुकि झुकि झूमि झूमि भूमि पै घने हीं घनें,
घायल ज्यौं घूंमै घरी घरी घनस्यांम है ।।२२६।।

सुंदर[1]

[कवित्त]

कहूं बन माल कहूं गुंजनि की माल,
कहूं संग सषा ग्वाल अैसें हाल भूलि गये हैं ।

---

1. अ०+अलवर वाली प्रति में यह 'काहू को कवित्त' और दिया गया है—
तेरे नैंन बान उर मोहन कै लगैं आंनि,
जब तै न वाकै वीर पीर ठहराय है ।
पलकनि मूदि मूदि गहरे उसास लेति,
होत न सचेत मुख रटै हाय हाय है ।।
जमुना को कूल कुंज सीतल कुसुम पुंज,
लगै तन ताते तेज विखम वराय है ।
येरी चल नागरी तू सीचि सुधा चाहिनि सौ,
और पनि के घायल कूं आखै ही उपाइ है ।।

कहूं मोर चंद्रिका लकुट कहूं पीत पट,
मुरली मुकट कहूं न्यारे डारि दये हैं ।
कुंडल अडोल मुष सुंदर न वोलैं वोल,
लोचन अलोल मांनौं काहू हरि लये हैं ।
घूंघट की ओट ह्वै कैं चित यौं कि चोट करी,
लालन तौ तव ही तें लोट-पोट भये हैं ।।२२७।।

अथ संगम करांवनौ

।। सवैया ।।

तेरौ सनेह लग्यौ है सही अति, याहू नें तोमैं सनेह लगायौ ।
तेरे बियोग के दुष्य दुषी, सुष समाज सबै बिसरायौ ।।
सोई पिया रसिया ब्रजचंद गुबिंद, भली बिधि सौं चलि आयौ ।
लीजै भुजा भरि अंक निसंक ह्वै, कीजै अली अपनौं मन भायौ ।।२२८।।

महाकवि

।। सवैया ।।[1]

राधिकां माधव एक ही सेज मैं, धाइ लै सोई सुभाइ सलौंने ।
पारे दुहूंन के बीच महाकबि, राधे कहै यह बात न हौंने ।।
ह्वै है न सांवरी साँवरे सौं मिली, बावरी बातैं सिषाई ए कौंने ।
सौंने कौ रंग कसौटी लगै पें, कसौटी कौ रंग लगै नहि सौंने ।।२२९।।

अथ सषी-कर्म

शृंगार करावनौं ।

---

1. अलवर-प्रति में यह सवैया नहीं है ।

॥ सवैया ॥

व्रजचंद गुबिंद की केलि सषी, हसि वूझति प्रीति बढ़ावति है ।
सकुचै नव नारि नवावति नैंन, कछू मुष तैं न बतावति है ॥
तव मित्र बसी कर चंदन कौ, तन चित्र विचित्र बनावति है ।
कुच वीच नषच्छत की छबि, राति की बात जतावति है ॥२३०॥

मतिराम

[सवैया]

जावक रंग रंग्यौ पद पंकज, नाहु कौ चित्त रंग्यौ रंग जातैं ।
अंजन दै बड नैंननि मैं सुषमा, बढ़ी स्यांम सरोज प्रभातैं ॥
मोती के भूषन अँग रचे मतिराम, सबै बस कीवे की घातैं ।
यौं ही चले न सिंगार सुभाव ही मैं, सषि भूलि कही सब बातैं ॥२३१॥

अथ सिक्षा

[कवित्त]

रसिक गुबिंद स्यांम सुंदर सुजान पिय,
जौ पै कहूं कहै बैंन बिन अनुराग के ।
श्रवन भवन मैं रहन जिनि दीज्यौ उह,
मंत्र है सुप्रेंम कौं उचाटन की लाग के ॥
बीस बिसे बीर बिसवास के मिटावन,
घटांवन तिहारे उत करम सभाग के ।
प्रगट करन बारे निपट बिकट आली,
अंकुर है सौतिन के सरस सुहाग के ॥२३२॥

मतिराम[1]

॥ दोहा ॥

क्यौं सजनी ह्वै अनमनी, असुवा भरति ससंक ।
बडे भाग नदलाल सौं, झुठें हु लग्यौ कलंक ॥२३३॥

॥ रसषांन कौ सवैया ॥

तेरी गलीन मैं जा दिन तें निकस्यौ, मन मौंहन गोधन गावति ।
ए व्रज लोग सु कौंन सी बाल सु, देषि कें जौ नहि नैंन नचावति ॥
जौ रसषान वे रीझें हैं नेंक तूं, रीझि कें क्यौं न बनाव बनावति ।
आली री जौ पैं कलंक लग्यौ तौ, निसंक ह्वै काहि न अंक लगावति ॥२३४॥

॥ लाल कौ कवित्त ॥

मेह बरसानें तेरे नेह बरसानै देषि,
येह बरसानें बर मुरली बजावेंगे ।
साजि लाल सारी लाल करें लाल सारी देषिवे,
की लालसा री लाल देषें सुष पावेंगे ॥
तूही उरवसी उरबसी नहि आंन तिय,
कोटि उर बसी तजि तोसौं चित लावेंगे ।
सेज बनवारी बनवारी तन आभूषन,
गोरे तनवारी बनवारी आज आवेंगे ॥२३५॥

1. अलवर-प्रति में मतिराम के दोहे से पूर्व यह छंद और है—

मलय पवन मद मंद कै गवन लाग्यौ, फूलनि के वृंदनि तें मकरंद डारनें ।
कवि मतिराम छिति छोर चारचौं ओर चाहि, लाग्यौ चैन चंद चारु चांदनी पसारनें ॥
अलिनि की अवलीनि मैं न कैसे मंत्र पढि, लागे मानिनी के मनन मान झारनें ।
सुमन समाज साजि सेज सुख साजि करी नाज, व्रजराज पर साज सबै वारनें ॥

अथ उराहनौं

॥ सवैया ॥

नैंन अनौषे भये तौ कहां, अवलोकत ही करि घाव घुमाइबौ ।
बैन मनोहर मीठे भये तौ कहा, इतनैं बड बोल सुनायबौ ॥
जोबन जोर भयौ तौ कहा व्रजचंद, गुबिंद कौं पाय लगायबौ ।
रूप अनूप भयौ तौ कहा सषि, प्रीतम कौ नित नांच नचायबौ ॥२३६॥

[सवैया]

उह मंजुल गुंज ज्यौं बाल भली, मन तैं तुम ही इक भावतु हौ ।
रस रंग रंगी अंग अंग तऊ, तुम नैंकु न ताहि पत्यावतु हौ ॥
कपटी उर-अंतर हौ परि वाहिर, प्रीति की रीति जतावतु हौ ।
ब्रजचंद गुबिंद सुनौं सुक ज्यौं, मुष पैं अनुराग दिषावतु हौ ॥२३७॥

मतिराम

॥ दोहा ॥

वा कौ मन लीनौं लला, बोल्यौ बोल रसाल ।
भ्रुकति तनक-सी बात मैं, अलबेली नव बाल ॥२३८॥

सुंदर

॥ कवित्त ॥

कहा होइ रही मौंन टेव यह परी कौंन,
नैंननि सौं कहै क्यौ न यौं निहारियतु है ।
षंजन कमल मृग मीननि के जैतवार,
सुंदर भये तौ काहू यौं बिदारियतु है ॥
चातुर हैं चाल कहैं नागर हैं नायक हैं,
लायक ह्वै मान सानि दौरि मरियतु है ।

वांके हैं विसाल हैं जौ बडाई के बडे हैं तौ,
बिलोके तें आगिले कौं वेधि डारियत है ।।२३९।।

अथ परिहास

सषी को परिहास नाइका सौं

।। सवैया ।।

ध्यावति है नित ही हित सौं अति, कंद्रप वेद सु मैं ही पढ़ायौ ।
ताकैं बसी कर मंत्रनि तैं बसि कैं, व्रजचंद गोबिंद कौं पायौ ।।
सैंन समैं सुरतोत्सव मैं पिय कौं, विपरीति को षेल षिलायौ ।
सो उठि आज ही भेद भली विधि, कैसैं अली हम हीं सौं दुरायौ ।।२४०।।

मतिराम[1]

[सवैया]

गौंने की रीति कहै मतिराम, सहेलिनि कौ मिलि कैं गन आयौ ।
कंचन के बिछिया पहरावति, प्यारी सषी परिहास जतायौ ।।
प्रीतम श्रोंन समीप सदा बजौ, यौं कहि कैं पहलैं पहरायौ ।
कामिन कंज चलावन कौ कर ऊचौ कियौ पैं चल्यौ न चलायौ ।।२४१।।

।। दोहा ।।

प्रभा तरौंना लाल की, परी कपोलनि आंनि ।
कहा दुरावति नवल तिय, कंत दंत-छत जानि ।।२४२।।

भुज फूलेल लावति सषी, कर चलाइ मुसकाइ ।
गाढ़ैं गह्यौ उरोज तिय, बिहसी भौह चढ़ाइ ।।२४३।।

---

1. अलवर-प्रति में सवैया तथा दोहों के क्रम में व्यतिक्रम है ।

अथ सषी कौ परिहास नायक सौं

देव

।। सवैया ।।

सोहै सलौंनी सुहाग सनी सुकुमारि सषीनि समाज मडी-सी ।
देव जू सोत तें आये लला मुष मांहि, महा सुषमा घुमडी-सी ।।
प्यारी की पीक कपोल पिया कें बिलोकि, सषीनि हसी उमडि-सी ।
सोचनि सौं हीं न लोचन होत सकोचनि, सुंदरि जाति गडी-सी ।।२४४।।

अथ नायक कौ परिहास नायका सौं

।। कवित्त ।।

छाडि उडे कंदिरानी कौसिक[1] कहूं के कहूं,
काकनि के बोल कौ बिसेप त्रास पायौ है ।
ता समैं तिहारौ मैं उघारचौ उर अंचल,
लतानि ओट अंग तुम दौरिकैं दुरायौ है ।।
आंनद के कंद श्री गुबिंद रामचद्र जू नैं,
कर अंगुरी सौं हसि हसि कें बतायौ है ।
देष हु सिया जू सबिलासनि तें यही गैल,
उही सैल सरस सुदेस आज आयौ है ।।२४५।।

अथ नायका कौ परिहास नायक सौं

केसव

।। सवैया ।।

जुवती सुनि औगुन मौंहन के, निकसी मटकी सिर रीतिय लै ।
पुनि ढांपि लई रचना रुचि सौं, छल वाहिर वूंद कहूं कहूं पै ।।

---

१. कौसिक=उल्लू ।

निकसी तिहि गैल तहां हरि केसव, लीनी उतारि निहारि तिन्हैं ।
पतुकी कर कान्ह षिसाय रहे तब, ग्वालि हसी मुष अंचल है ।।२४६।।

अथ स्वयं दूतिका

मुकंद

।। दोहा ।।

बिछुरी गई संग की सषी, परी सघन बन आइ ।
गगन घटा लषि डरति हौं, भूलि डगर वताइ ।।२४७।।

केसव

।। सवैया ।।

धाय नही घर दाई परी ज्वर, आई षिलाई की आंषि बहाऊं ।
पौरि मैं आवै रत्यौंध इते पर, ऊंचौ सुनें सु महा दुष पाऊं ।।
कान्ह निबेरहु न्याय नयौ, इन आलिनु कौल गहौं बहराऊं ।
ए सब मो ढ़िग सोवन आवैं, कि इन के ढ़िग सोवन जांऊं ।।२४८।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

सास है नियारी नंद सास के सिधारी यह,
घटा अंधियारी भारी सूझत न कर है ।
प्रीतम कियौ है गौन सूनौ हैं सकल भौंन,
दारुन बहति पौंन लायौ मघ झर है ।।
संग न सहेली अकुलाति हौ अकेलि इत,
परी तालाबेली इत आयौ पंच-सर है ।
साँवन की राति मेरौ हियरा डरात जागि,
जागि रे वटोही इहां चोरनि कौ डर है ।।२४८।।(२४९)

इति श्रीमद्वृंदाबन चंद्रबर चरणारबिंद मकरंद-पानानंदित अलि रसिक गोबिंद कबिराज बिरचितं श्री गोबिंदानंदघने नाइका-नायक निरूपणं नाम द्वितिय प्रवंधः ।।२।।[1]

अथ दूषण निरूपणं

वार्त्ता

जद्यपि गुणालंकार रस के उपकारक हैं यातैं निरूपण करिबे जोग्र है तौहू दोष ही प्रथम कहत है। काहे तैं कि संपूर्ण कबि प्रथम दोष ही कहते आये हैं, यातैं ।

अथ दोष लक्षणं

मुष्यार्थ कौं नून करै, सो दोष ।

मुष्यार्थ रस है। रस के आश्रय तैं वाच्यहू मुष्यार्थ है। दोऊन के उपमेयोगित्व तै शब्दहू शब्दनि के बर्णहू मुष्यार्थ है। यातैं मुष्यार्थ कहिवे मैं इन सवनि कौ बोध होत है ।

अथ दोष पांच बिधि

कितेक तौ पद-दोष कितेक पदांस दोष, कितेक बाक्य-दोष, कितेक अर्थ-दोष, कितेक रस-दोष ।

अथ पद-दोष(१६)

१. श्रुति कटु, २. संस्कारहत, ३. अप्रयुक्त, ४. असमर्थ, ५. निहतार्थ, ६. निरर्थक, ७. त्रिविधि अश्लील, ८. अनुचितार्थ

1. जिस प्रकार जोधपुर-प्रति में यहां 'द्वितीय प्रबंध' की समाप्ति की गई है वैसा संकेत अलवर-प्रति में नहीं मिलता। वहां तो कवित्त के वाद तुरन्त ही 'दूषण निरूपण' शुरू हो जाता है। पर, छंदों की संख्या आगे नहीं बढती, अर्थात् २३४ छंद तक चलकर फिर छंद सं. १ आती है जिससे यह निश्चय है कि अलवर-प्रति के छंद सं.२३४ पर तथा जोधपुर-प्रति के छंद सं.२४८ (२४९)पर दूसरे प्रवन्ध की समाप्ति है।

९. अवाचक, १०. ग्राम्य, ११. अप्रतीत, १२. संदिग्ध, १३. नेयार्थ, १४. क्लेष्ठ, १५. अबिमृष्ट बिधेयांस, १६. विरुधमति कृत ।

अथ श्रुति कटु

कांननि कौं करुवौ लगै सो श्रुति कटु । सुनिवे वारे कौं उद्वेग दोष मैं कारन यह दोष अनित्य है । साब्दिक श्रोता कौं उद्वेग नहीं, यातैं ।

।। कवित्त ।।

गोंबिद से पिय सौं न मांन करि मांनिनी तू,
मानि कह्यौ मेरौ मांन असे मैं न चाहिये ।
लघु दिन दीह रैनि मैंन की फिरती सैंन,
अँन हू लजात ए अंदेसे कौ लौं सहिये ।।
सीतल अकास भूमि भूषन बसन भौंन,
सीत भीत मीत सौं मिलाप करि रहियै ।
लोजं परजंक पै निसंक अंक भुज भरि,
काठे से कठेठे पटु अैसैं कैसें कहियें ।।१।।

इहां "काठ से पटु" की ठौर "करकस बोल बाल" अैसें कहैं तौ दोष नही ।

अथ संस्कारहत

सास्त्र विरुध जो पद, सो संस्कारहत ।

इहां पाप की उतपति दोष मैं करण यह दोष नित्य ।

।। कवित्त ।।

प्यारी तेरे अंग की सुवास के प्रकास मैं,
बिलास हित भारी भौंर भीर मडराति है ।

सषिनु समाज सुषं साज मांझ सुंदरि तू,
देवता सौ वैठी पान षात मुसकाति है ।।
रूप कौ निकाई कौ बषान कबि करै कौंन,
देषि कैं गुबिंदहू की मति ललचाति है ।
चांमी कर चापि जाति दामिनी हूं छिपि जाति,
चंदहू लजाति चारु-चांदिनी लजाति है ।।२।।

इहां "प्यारी तेरी अंग देवता सौ रूके निकाई चामी कर चपि जाति चंद हू लजाति" ए पद संस्कारहत हैं । इनकी ठौर "प्यारी तेरे अंग देवता-सी रूप की निकाई चामी कर चपि जात चंदहू लजातु" असै कहै तौ दोष नही ।

अथ अप्रयुक्त

जा पद बिषें कवीश्वरनि कौ प्रयोग नही सो अप्रयुक्त संकेत निषेध दोष मैं कारण । यह दोष अनित्य हैं । जमक श्लेष चित्र इन मैं अंगीकार करिवे तें ।

।। दोहा ।।

तुम जु षसम बस जगत के, सुनियें साद संमर्थ ।
प्रभु प्रसाद मुहि धोइये, यही सु मेरे गर्थ ।।३।।

इहां "षसम साद धोइयै गर्थ" इन की ठौर "नाथ टेर दीजियै अर्थ" असें कहै तौ दोष नही ।

अथ असमर्थ

प्रसिद्धार्थं रहित पद कहनौं सो असमर्थ । जथा जोग्य अर्थ की अप्राप्ति दोष मैं कारन । यह दोष नित्य ।

॥ कवित्त ॥

चोग्रा चारु कंचुकी कुरंग सार ग्रंगनि,
उमंग सौं सवारि पुनि वार भार भारी कौं ।
नीलमनि भूषन बनाइकैं नचाय भौंहैं,
अंजन सौं ग्रांजी ग्रांछैं ग्रांषैं ग्रनियारी कौं ॥
रस बस रसिक गुबिंद करिबे कैं हित,
सरस सिंगारि नष-सिष सुषकारी कौं ।
छादि मुष नवल दुलारी कारी सारी सौं,
बिहारी सौं मिलन प्यारी हनी फुलवारी कौं ॥४॥

इहां "छादि हनी" की ठौर "ढांपि चली" यौं कहै तौ दोष नही ।

ग्रथ निहितार्थ

उभयार्थ बाचक कौ ग्रप्रसिद्धार्थ विषैं कहनौं, सो निहितार्थ । बिलंब करि कैं ग्रर्थ की प्राप्ति, दोष मैं कारण । यह दोष ग्रनित्य । जमक श्लेष चित्र इन मैं ग्रंगीकार करिबे तैं ।

॥ कवित्त ॥

सर सरितानि मांझ ग्रमल कमल भयौ,
ग्रंजुब ग्रकास मैं प्रकास सरसायौ है ।
भुवन मैं नलिननि कर छबि छायौ पुनि,
जमुनां नै संबर ही ग्रंबर तनायौ है ॥
काम हूं तैं ग्रति ग्रभिराम घनस्यांम बाम,
तेरे धाम मुदित मनावन ग्रायौ है ।
ग्रैसे मैं गुबिंद सौं न मान करि मानिनि तू,
मानि कह्यौ मान तेरैं कैसैं मन भायौ है ॥५॥

इहां "कमल ग्रंबुज भुवन संबर" इन की ठौर "उदक चंद्रमा सलिल पानिप" ग्रैसै कहै तौ दोष नही ।

अथ निरर्थक

केवल पूर्णादिक प्रयोजन कौ पद कहनौं, सो निरर्थक। प्रयोजनाभाव दोप मैं कारन। यह दोप नित्य।

।। सवैया ।।

जोबन रूप अनूप'रु आनन मंजु, हसी सरसी छवि छाई।
मांग भरी मुकतावलि सौं उर, फूल सु माल की सुंदरताई।।
चंदन चित्र किये सु चली जहं, गोविंद आंनद-कंद कन्हाई।
अंबर मैं अंग-अंग की दीपति है, मनु मूरतिवंत जुन्हाई।।६।।

इहां "अनूप'रु फूल सुमाल कियैं" सु इन की ठौर "अनूपन फूलनि-माल वनाइ" यौं कहै तौ दोष नही।

अथ अश्लील

बुरौ लगै सो असलील। लज्जा अमंगल ग्लांनि हौंनौं दोष मैं कारण। यह दोष अनित्य। भगिन्यादि पद देषियैं हैं यातैं।

।। कवित्त ।।[1]

जावक कौ लिंग लाल भाल पै लगाय आये,
प्रातकाल पाय स्याम बदन दिषायौ है।
रावरे शरीर कौ पवन इत आवै ताकौं,
गंध वृंद श्रीगुविंद का पै जात गायौ है।।
नीलपट धारैं पीतपट कौं विसारैं पुनि,
विन ग्रन चारु हारु हियैं ढरि आयौ है।
आनंद के कंद नंद नंद ब्रजचंद तुम्हैं,
निपट कपट एतौ कौनैं धौं सिषायौ है।।७।।

इहां "लिंग काल स्यांम पवन" इनकी ठौर "चिंह्न समैं आप समीर" अैसें कहै तौ दोष नही।

अथ अनुचितार्थ

बर्नन करिवे जोग्य अर्थ कौ तृस्कारकारी अर्थ सहित पद कहनौं सो अनुचितार्थ। बिवक्षत अर्थ कौ त्रस्कार दोष मैं कारन। यह दोष नित्य।

।। कवित्त ।।

लोक बेद कुल–मरजाद परमांन ह्वै,
थिर रहै सो सपूत सुजस बढ़ाय है।
पशु ह्वै कें होमैं अंग अंग जुद्ध अद्ध रमैं,
सौंहीं साँचौ सूर सुरलोक कौं सिधाय है।।
सव सौं बिरक्त अजगर ह्वै उजारि मैं,
इकौ सौ परचौ रहै गुन गोबिंद के गाय है।
सोही सतपुरुष कहाय है जगत मांझ,
अंत समैं उत्तम परम पद पाय है।।८।।

इहां "पाहन पशु अजगर" ए पद अनुचितार्थ हैं।

।। काहू कौ दोहा ।।

साधु बडे परमारथी, जेसे धरम के ऊंट।
पांच सात कौं लै चलें, जा डारैं वैकुंठ।।९।।

इहां "ऊंट" पद अनुचितार्थ है।

अथ अवाचक

कहिवे जोग्य अर्थ कौं पद नही कहै, सो अवाचक। बिपरीत अर्थ कौ बोध हौंनौं दोष मैं कारन। यह दोष नित्य।

।। दोहा ।।

आज सुपर्वत मैं रमैं, जुवती नायक संग।
लगी गहरि वेलीनि कैं, नचत विहंग उमंगि।।१०।।

इहां "सुपर्बत जुवती नायक बेली बिहंग" इन की ठौर "गुवर्द्धन राधा मौहन कदली मयूर" ऐसैं कहैं तौ दोष नही ।

अथ ग्राम्य

केवल लोक ही मैं स्थित होइ जो पद सो ग्राम्य । सुनिवेवारे कौं बिमुषता दोष मैं कारन । यह दोष अनित्य । बिदूपकादिक के वाक्य मैं अंगीकार करिवे तैं ।

॥ दोहा ॥

नंद महरि कौ छोहरा, बन्यौ छबीलौ छैल ।
होरी के दिन पाइ कैं, नित उठि रोकत गैल ॥११॥

इहां "छोहरा" की ठौर "लाडिलौ" कहै तौ दोष नही ।

अथ अप्रतीत

सास्त्रांतर मैं अरु देसांतर मैं प्रसिद्ध संकेत होइ, सो अप्रतीत । वा सास्त्र के वा देस के न जानिवे वारे कौं अर्थ की अप्राप्ति दोष मैं कारण । यह दोष अनित्य । वा सास्त्र के वा देस के जानिवे वारे के जानिबे तैं ।

॥ कवित्त ॥

कुंचि मन मानत हौ उड ठिक ठांनत हौ,
दारी रोकि ठाढ़े हौ उघारी गारी गाय गाय ।
भलौ कियौ पेर तुम उर मैं अनेक भांति,
ऊधम करौ हौ जू अरौ हौ नित आय आय ॥
रसिक गुबिंद-वर सुंदर कहावौ पै,
मचावतु हौ धूम लियें संग सषा चाय चाय ।
डफहि बजाय मुसकाय भृकुटी नचाय,
मेरे अंग आनि भरौ हौ रंग धाय धाय ॥१२॥

इहां "कुंचिम उड दारी पेर ऊर" इन की ठौर "तनक घनें राह नाम ग्राम" अैसें कहै तौ दोष नही।

अथ संदिग्ध

अनिर्द्धारित पद कौं कहनौं, सो संदिग्ध। कहिवे जोग्य अर्थ के निश्चय कौ अभाव दोष मैं कारण। यह दोष अनित्य। अप्रकर्ण स्फूर्ति करिकैं निश्चय होत यातें।

॥ कवित्त ॥

कैरव प्रचंड अरु पांडव उदंड इन,
भारत कौं स्वारथ कें हेत विस्तारचौ है।
आंनि पांच सातक महारथी अचानक ही,
मिलिकैं सबनि अभिमन्य मारि डारचौ है॥
श्री गुबिंद नर यह कौतुक निहारिचौ तव,
भीम ह्वै कैं भट्ट सरासन कौं सँभारचौ है।
जुद्ध मध्य क्रुद्ध कैं बिरुद्धी दुरबुद्धिन के,
बद्धन कौं भांति भांति उग्र रूप धारचौ है ॥१३॥

इहां भीम अरु उग्र पद मैं यह संदेह है कि भीम भयंकर किधौं भीमसैंन अरु उग्र उद्धत किधौं सिव।

अथ नेयार्थ

लक्षण करिकैं अर्थ की प्राप्ति होइ जा पद मैं, सो नेयार्थ। लक्षण ज्ञान रहित कौं अर्थ की अप्राप्ति दोष मैं कारण। यह दोष अनित्य। लक्षण ज्ञान वारे के जानिवे तें।

॥ कवित्त ॥

रूप गुन जोवन सुबास कौ प्रकास तेरौ,
गोबिंद को बसी कर नेह कौ नितेक है।

दास कियौ दर्पन षवास किये मोती मनि,
कुंदन क मीन कियौ हियौ हरि लेत है ।।
चेरौ कियौ चंपाबन चंदन कौ चाकर,
गुलाब कौ गुलाम कुंद कमल समेत है ।
दासी करि दामिनी कौं चांदिनी कौं चेरी करी,
चंद्रमा कै चाय सौं चपेटादि न देत है ।।१४।।

इहां चंद्रमादिक कैं चपेटादिक संभवै नही तव लक्षरगा करिकैं जानिये कि इन तैं अधिक सुंदर रूप है ।

अथ क्लेष्ट

बिबिधान करिकैं अर्थ की प्राप्ति होइ जा पद मैं, सो क्लेष्ट । बिलंब करि कें अर्थ की प्राप्ति दोष मैं कारन । यह दोष अनित्य । जमकादिक मैं अंगीकार करिवे तैं ।

।। दोहा ।।

जोति अत्र के नेत्र तैं, प्रगटी तासु प्रकास ।
ता मधि सोभित तिन सद्रस, रवुबर जस सविलास ।।१५।।

इहां "कुमुद सद्रस रघुबर कौ जस" इतनौ अर्थ के लियैं इतनौं बडौ पद कहनौं अनुचित ।

अथ अविमृष्ट बिधेयांस

बिना बिचारें बिधेय कौ जो कहनौं सो अबिमृष्ट बिधेयांस । बिधेयार्थ की सीघ्र अप्राप्ति दोष मैं कारन । यह दोष नित्य है ।

[दोहा]

अपराध जु यह पिया, भोरहि आये भौंन ।
सषी थकी ससुझाइ सव, अरु समुझावै कौंन ।।१६।।

इहां "यह अपराध जु है पिया" असें कहनौं उचित।

अथ विरुद्धमति कृत

विरुद्ध बुद्धिकारी जो पद सो विरुद्धमतिकृत। विरुद्ध अर्थ की प्राप्ति दोष मैं कारन। यह दोष नित्य।

॥ दोहा ॥

सिव जु अंबिका रवन तुम, त्रिभुवन के सिरदार।
होहु सहाय गुबिंद कें, करौ अनंद अपार ॥१७॥

"अंबिका" माता कौ नाम है या तें "भवानी" कहनौं उचित।

इति पद-दोष।

अरु पदांस-दोष काम भाषा मैं बहुधा परै नही यातें कहै नही।

अथ वाक्य दोष

१. प्रतिकूल बर्ण, २. वृत्त हत, ३. नून पद, ४. अधिक पद, ५. कथित पद, ६. पतत्प्रकर्ष, ७. समाप्त पुनरात्त, ८. अर्द्धातरैक वाचक, ९. अभवन मत जोग, १०. अनभिहितवाच्य, ११. अस्थानस्थ पद, १२. अस्थानस्थ समास, १३. संकीर्ण, १४. गर्भित, १५. प्रसिद्ध-हत, १६. भग्न प्रक्रम, १७. अक्रम, १८. अमतपरार्थ।

अथ प्रतिकूल बर्ण

और वृत्ति के वर्ण और बृत्ति मैं कहनौं, सो प्रतिकूल बर्ण।

॥ कवित्त ॥

विज्ज छटा छुट्टति सुघट नट वट्टा सम,
संघट बलिष्ट घन घट्टानि के ठाट कौं।

झिल्ली झंनाट घनौ घोर कौ घटघटाट,
जान्यौं जात आहट वटोही कौन बाट कौ ।।
नटवर गोविंद कैं चित्त चटपटी तेरौ,
अटपटौ विकट सुभाव औट पाट कौ ।
झटपट सटकि कपट हठ सठ छाडि,
ओढ़ि पट प्रगट निपट कोर पाट कौ ।।१।।

इहां शृंगार मैं परुषावृत्ति कहनौं अनुचित उप नागरि का तथा कोमला चाहिये ।

अथ वृत्तहत

छंदोभंग सौ वृत्तहत । सो दुबिधि-मात्रा वृत्तहत, बर्ण वृत्तहत ।

अथ मात्रा वृत्तहत

।। दोहा ।।

सरस सुगंधित बार भार, सिर पर भली प्रकार ।
नव जोवन गुन रूप लषि, भयौ गुबिंद रिझवार ।।२।।

इहां "भार" की ठौर "भर" कहै तौ दोष नही ।

अथ वर्ण वृत्तहत

।। भुजंगी छंद ।।

विहारी गुबिंदादि आनंदकारी ।
व्रजाधीस भारी जगज्जाल-हारी ।।
प्रिया संग लीनैं सवै सुष्ष साजै ।
सदा सर्वदा ही सर्व ऊपर विराजैं ।।३।।

इहां अंत की तुक मैं "ही" अधिक है ।

अथ नून पद

जा पद बिना अर्थ वनै नही ता पद कौ जो अभाव सो नून पद ।

॥ सवैया ॥

गाय कैं गारी बजाय कैं चंग, करौंगी मनोरथ दाय उपायकैं ।
पाय कैं होरी गोविंद की सौं अब, पेल रचाय हौं धूम मचायकैं ॥
चाय कैं नांच नचाय कैं धाय भुजा, भरि कैं रस रंग भिजायकैं ।
जाय कैं लैंहुगी माल रसाल हौं, गाल के लाल गुलाल लगायकैं ॥४॥

इहां "गुपाल के लाल गुलाल लगाय कैं" अैसें कहै तौ दोष नही ।[1]

अथ अधिक पद

जा पद के कहे बिना कछू बिगरै नही अरु कहे तैं कछू सुधरै नही, सो अधिक पद ।

॥ दोहा ॥

मुष ससि सौ उज्जल सषी, घन से कारे बार ।
दीपति दमकति तडित सम, लषि गुविंद रिझवार ॥५॥

इहां "उज्जल कारे दमकत" ए पद अधिक है ।

अथ कथित पद

एक पद कौं द्वै बेर कहनौं, सो कथित पद ।

---

1. अलवर-प्रति में 'अैसें कहै तौ दोष नहीं' के स्थान पर 'यौं कह्यौ चहिये' दिया गया है । स्पष्टीकरण में अनेक स्थानों पर समान अर्थ के लिये अन्य उक्ति दी गई है । लिपिकर्त्ता तो इस प्रकार बदल नहीं सकता । फिर ये परिवर्तन किसने क्यों किया । क्या लेखक ने स्वयं ही ?

॥ दोहा ॥

तव मुष मोहत मो मनहि, मुष कैं यहई टेक ।
मुष पर वारौं चंदमा, अर अरबिंद अनेक ॥६॥

इहां 'मुष' कहि कैं फिरि 'मुष' कहनौं अनुचित ।

अथ पतत्प्रकर्ष

प्रथम उद्धत रचना करिकैं अरु कोमल करनौं, सो पतत्प्रकर्ष ।

॥ छप्पं ॥

घोरि घोरि घन सघन घोर निरघोष सुनावत,
धुरवा धुकि धुकि धाय धाय धुंधरि सरसावत,
पवन झुक्कि झंकार झुंड झिंगार झिंगारत,
विज्ज छटा छुट्टति घटानि इम गुबिंद उचारत,
धारानि धरत धारा धरन धरनि धूम इन अधिक किय ।
गोपाल लाल अवलंब बिन रालंब अति बिकल हिय ॥७॥

इहां अंत की तुक मैं "सुंदर आधार गिरधरन बिन निराधार धरक्कत हिय" असं कहै तो दोष नही ।

अथ समास पुनरात्त

वाक्य कौं समाप्त करिकैं फिरि गृहण करनौं, सो समाप्त पुनरात्त ।

॥ कवित्त ॥

देषी एक नागरि नवेली अलबेली आज,
सुकबि गुबिंद करै कहां लौं उचार है ।
सुभग सिंगार अंग अंग सुकुमार चारु,
सरस सुगंधमई बारनि कौ भार है ॥

रूप कौ अगार रस रंग कौ पसार सब,
सुषमा कौ सार मेरे हिय कौं अधार है ।
द्रग अरबिंद भ्रू अलिंद मंद हसनि,
अमंद मुष चंद सौ सुछंद सुकुमार है ।।८।।

इहां चौथी तुक कौं तीसरी की ठौर कहै तौ दोष नहीं ।

अथ अर्द्धांतरैक वाचक

उत्रार्द्ध कौ पद पूर्वार्द्ध मैं कहनौं सो अर्द्धांतरैक बाचक ।

।। दोहा ।।

गोविंद बक्षस्थल सहित, कौस्तुभांक त्रिपुरारि ।
जटा जूट ससि सोभ जुत, ए सब कौं सुषकारी ।।९।।

इहां त्रिपुरारि पद उत्रार्द्ध कौ पूर्वार्द्ध मैं कहनौं अनुचित ।

अथ अभवन-मत जोग

कवि के हृदै के अर्थ कौं अक्षर पुष्ट नही करैं, सो अभवन-मत जोग ।

।। सोरठा ।।

जग कौ भूषन जान रति, पति नृप की जैतिश्री ।
सा सुंदरि बिन प्रान अति, ब्याकुल सो कित गई ।। १०।।

इहां "वा बिन द्रृषि मम प्रांन सो वह सुंदरि कित गई" ।
असैं कहै तौ दोष नही ।

अथ अनभिहित बाच्य

नही भासै है कौईक बाच्य जा बिषैं, सो अनभिहित बाच्य ।

॥ सवैया ॥

तो सौं[1] लगायौ निरंतर है, उर अंतर कौ अनुराग महा री ।
तेरी ए प्रीति की रीति कौं चाहै, प्रतिति यहै हिय मैं इन धारी ॥
तेरौ बियोग न होय कवू यह, चाहत चित्त बिचित्र बिहारी ।
अैसे गुबिंद अनंद के कंद कौ, रंचक दोष न मानिये प्यारी ॥११॥

इहां 'रंचक" की ठौर "रंचहू" अैसें कहै तो दोष नही ।

अथ अस्थानस्थ पद

जहां जो पद चाहियै सो नही होइ, सो अस्थानस्थ पद ।

॥ दोहा ॥

सुंदर जुत अंजन नयन, पिय प्राननि के प्रान ।
हसनि लसनि मुष मधुर मृदु, रस बस कियौ सुजान ॥१२॥

इहां "अंजन जुत सुंदर नयन" अैसें कहै तौ दोष नही ।

अथ अस्थानस्थ समास

स्थान बिषै समास नही, सो अस्थानस्थ समास ।

॥ सवैया ॥

तिय के हिय मध्य कौ मांन, अजौं कुच द्वै गढ़ मैं द्रढ़ बास चहै ।
यह जांनि कैं मांनि धिकार उदै कौं, वृथा गनि क्रुद्ध ह्वै लाल रहै ॥
अति उद्धत उद्धित दूरि हि तैं, बिसतारित अंस गुबिंद कहै ।
विकसे कुमुदावलि कोरिक कोस, कढी अलि-पांति कृपान गहै ॥१३॥

1. अलवर-प्रति में 'तोमैं' दिया गया है ।

इहां चंद्रमा क्रोधी है ताकी उक्ति मैं समास चहियें कवि की उक्ति मैं कहनौ अनुचित ।

अथ संकीर्ण

और बाक्य के पद और बाक्य मैं होइ, सो संकीर्ण ।

।। कवित्त ।।

आनंद के कंद नंद नंद सौं न कीजै हठ,
दीजै दरसन रति रंग के सुथान मैं ।
जीजियै जू देषि मुष प्यारे प्रींतम कौ,
लीजियै सुजस सदा सकल जिहान मैं ।।
निरस वचन क्यौं हू कहियै न कान्ह जू सौं,
सरस सुजान तान तो समान आन मैं ।
देषि मान सुंदरी गुबिंद व्रजचंद की सौं,
छाडि चंद्र सुंदर अमंद आसमान मैं ।।१४।।

इहां "छाडि मान देषि चंद" असें कहनौं उचित ।

अथ गर्भित

और बाक्य और बाक्य मैं लिष, सा गर्भित ।

।। दोहा ।।

पर अपकारहि मैं सदा, जे ततपर अंग अंग ।
तत्व बात यह तोहि कहौं, उनकौ तजि दै संग ।।१५।।

इहां "उन कौ संग तजि दै इह तो सौं तत्व बात कहत हौं" असें कहनौं उचित ।

अथ प्रसिद्धहत

कबिनु के संकेत रहित पद जामैं होइ, सो प्रसिद्धहत ।

[कवित्त]

आनंद के कंद नंद नंद सौं मिलन काज,
सुंदर सलौनी चली संग सषियांनि की ।
सुभग सिंगार काछैं अंग सुकुमार आछैं,
कुटिल कटाछैं भृकुटी की अषियानि की ।।
द्रग अरबिंद-बर बदन अमंद चंद,
मंद मंद हसनि गुबिंद सुषदानी की ।
वलय गरज कटि किंकिनी धुकार पग,
नूपुर कौ सोर पुनि घोर विछियानी की ।।१६।।

"गरज धुकार सोर घोर" ए शब्द जुद्ध के समैं प्रसिद्ध हैं इहां शृंगार मैं "रणित कुणित नंदित धुनि" असैं कहनौं उचित ।

अथ भग्न प्रक्रम

जहां प्रस्ताव-क्रम नही, सो भग्न प्रक्रम ।

॥ दोहा ॥

अस्त भयौ ससि जानि संग, अस्त ह्वै गई राति ।
नाथ साथ तन तजत जे, हैं तिय उत्तम जाति ।।१७।।

इहां "अस्त भई है राति" असैं कहनौं उचित ।

अथ अक्रम

विद्यमांन क्रम जहां नहां, सा अक्रम ।

॥ दोहा ॥

पद भुज कुच आनन नयन, इनके यह शृंगार ।
अंजन नूपुर चारु अरु, बीरा बाजू-हार ॥।।१८॥

इहां "नूपुर बाजू हार अरु, वीरा अंजन चारु" असें कह्यौ चहियै । कोऊ या सौं क्रमहीन कहैं हैं ।

केसव

॥ छंद ॥

गज की रचना कहि कौंन करी ।
किहिं राघन की जिय पैज धरी ॥
अति कोपि कैं कौंन संधार करैं ।
हरि जू हर जू विधि क्रुद्ध ररैं ॥१९॥

इहां "बिधि जू हरि जू हर" असें कहनौं उचित ।

अथ अमतपरार्थ

प्रकर्ण विरुद्ध दूसरौ अर्थ जहां होय सो अमतपरार्थं ।

॥ छंद ॥

राम मन मथ सर दुसह ताडित हृदै निश्चरि भली ।
रुधिर चंदन गंध संजुत जीवितेश्वर ढिग चली ॥२०॥

इहां दूसरौ अर्थ तरिका कौ है यह शृंगार मैं वीभत्स कौ बोध हौंनौं प्रकर्ण विरुद्ध है ।

इति वाक्य दोप ।

अथ अर्थ दोष[1](२५)

१. अपुष्टार्थ, २. कष्टार्थ, ३. व्यर्थ, ४. अपार्थ, ५. अव्याहत, ६. पुनुरुक्त, ७. दुःक्रम, ८. ग्राम्य, ९. संदिग्ध, १०. निर्हेतु, ११. प्रसिद्धबिद्या विरुद्ध, १२. अनवीकृत, १३. सनियम, १४. अनियम, १५. बिसेष, १६. अबिसेष, १७. साकांक्ष, १८. मुक्तपद, १९. सहचर भिन्न, २०. प्रकासित बिरुद्ध, २१. विधि अनुवाद अयुक्त, २२. तित्क पुनः स्वीकृत, २३. अश्लील त्रिबिधि (२३,२४,२५)।

अथ अपुष्टार्थ

वहुत हू पद जहां अर्थ कौं पुष्ट नहीं करैं, सो अपुष्टार्थ ।

।। सवैया ।।

ऊचौ अकास प्रकासित तास कौ, मारग है अति दुर्गम भारी ।
ता मधि आवत जातहि मैं तन के सुधि की जिनि ग्रंथि विसारी ।।
वात सुगंध करैं जल जात हसात, तिन्है मति मोहै हमारी ।
अैसे प्रभू परसिद्ध प्रभाकर' जै जै गोबिंद कौं आनँदकारी ।।१।।

इहां "जै जै" अर्थ कौं ए पद पोषत नांहीं ।

अथ कष्टार्थ

कवि के हृदै कौ अर्थ अक्षरानि तें प्राप्ति जहां नही होइ, सो कष्टार्थ ।

---

1. अलवर-प्रति में २३ दिए गए हैं । यहाँ यह संख्या २५ है क्योंकि अंतिम 'अश्लील' दोष को त्रिविधि कहा गया है । अलवर-प्रति में 'अश्लील' मात्र लिखा है । इस प्रकार के अंतर पर ध्यान देना आवश्यक है । क्या कवि ने अलवर-प्रति को जोधपुर प्रति के वाद लिखा और उसमें कुछ परिवर्तन किए ?

।। कवित्त ।।

सूरज गुबिंद जलवृंद बरसावैं घन,
बृंद मंद जल की न बुंद बरसांवहीं ।
नीर कौ निवास भास मांन अंस ही मैं भान,
नंदिनी हूं पानी जग पानी बहांवहीं ।।
व्यास जू की उक्तिनि कौं मांनत न कौंन श्रुति,
बचन सुनत श्रद्धा कौंन कौंन आँवहीं ।
तदपि प्रचंड मारतंड की किरनि मांझ,
प्यासी मृंग मुग्ध बधू रंचहू न पांवहीं ।।२।।

इहां मृग तृष्णा के अर्थ की प्राप्ति कष्ट सौं है ।

।। काहू कौ दोहा ।।

कूवा मैं कौ मैंडुका, कहै समुद की बात ।।३।।

इहां हंस प्रसंग के अर्थ की प्राप्ति कष्ट सौं है ।

।। सवैया ।।

नृप मारि चली अपनै पति पैं, पति सर्प डस्यौ बिपता परि हौ ।
बन मांझ गई बनिजारें लई, तब बेचि दई गनिका घर हौं ।।
सुत संग जरिवे कौं गई, घन बर्षत मेघ नदी तरि हौं ।
महाराज कु रहौं गुजरि हौं अब, छाछि कौ सोच कहा करि हौं ।।४।।

इहां कबि के हृदय के प्राप्ति कष्ट सौं है ।

गिरधर[1]

[कुण्डलिया]

नाइक अपनी नाइका जनम पाइ देषी न ।
रूप कुरूप लष्यौ नही सेज परस्पर लीन ।।

1. अलवर-प्रति में गिरधर वाला छंद नहीं है ।

सेज परस्पर लीन इते पर नाइक रूठौ ।
प्यारी लियौ मनाइ लिप्यौ मजकूर अनूठौ ।।
कहे गिरधर कबिराइ हुते दोऊ सम लायक ।
यह जानी नहि परी कौंन बिधि रूठौ नायक ।।५।।

इहां हूं कष्टार्थ है ।

अथ ब्यर्थ

एक प्रवंध मैं अगिलौ पिछलौ अर्थ अनमिलत जहां होइ, सो व्यथ ।

केसव

।। मरहटा छंद ।।

सब सत्रु संघारहु जी जिन मारहु सजि जो धाउ मराऊ ।
बहु बसु मति लीजै मो मन कीजै दीजै अपनौं दाऊं ।।
कोउ न रिपु तेरौ सब जग हेरौ तू कहियत अति साधू ।
कछु देहि मगावहु भूष भगावहु हौ पुनि धनी अगाधू ।।५।।

इहां अगले पिछले अर्थ कौ विरोध्र है ।

अथ अपार्थ

मतवारै कौ सौ, उनमत्त कौ सौ, बालक कौ सौ वचन होइ अरु अर्थं जाकौ समझियै नही सो अपार्थ ।

केसव

।। दोहा ।।

पियें लेत नरसिंधु कौं, है अति सज्वर देह ।
अैरावत हरि भांवतौ, देष्यौ गर्जत मेह ।।६।।

यह अर्थं समझिवे मैं आवै नहीं ।

।। काहू कौ दोहा ।।

सांई तेरे कारनैं, छाछि भुनाई भार ।
आंषिन चरषा घुसि गयौ, तौ मूंतैगी किहि द्वार ।।७।।

यहू वैसी ही जानि लीजै ।

अथ अव्याहत

वस्तु कौं प्रथम निंदि कैं फिरि ताही कौं गृहण करणौं, सो अव्याहत ।

।। सवैया ।।

या जग मैं मधुरे बहु भाव, सुभाव ही तैं सब है सुषकारो ।
नूतन चंद्रिका चंद्रकलादि, बढ़ावत हैं मन कौं मुद भारी ।।
गोविंद आनद कंद कहैं इन्हैं, चाहै न चित्त की वृत्ति हमारी ।
मेरे तौ चंद्रिका चंदमुषी उह, नैंननि कौ उत्साह है प्यारी ।।८।।

इहां प्रथम "चंद्रिकानिंदि" कैं फिरि ताही कौ गृहण करणौं अनुचित ।

अथ पुनरुक्त

एक अर्थ कौ संभ्रम तैं द्वै बेर कहनौं, सो पुनरुक्त ।

केसव

।। सोरठा ।।

मघवा घन आरूढ, इंद्र आज अति सोहिये ।
व्रज पर कोप्यौ मूढ, मेघ दसौं दिस देषियै ।।६।।

इहां "मघवा अरु घन" कहि कैं "इंद्र अरु मेघ" कहनौं अनुचित ।

॥ दोहा ॥

दोष नही पुनरुक्त कौ, एक कहत कबिराज ।
छाडि अर्थ पुनरुक्त कै, सब्द कहौ इहि साज ॥१०॥

लोचन पैंनें सरनि तें, है कछु तो कहँ सुद्धि ।
तन बेध्यौ मन विधि गयौ, वेधी मन की बुद्धि ॥११॥

अैसें कहियै तौ दोष नही ।

अथ दुःक्रम

प्रसिद्ध कर्म तें विरुद्ध होइ, सो दुःक्रम ।

॥ कवित्त ॥

रसिक गुविंद सुनौं सुंदर बिनीति प्रीति,
रीति करै जा सौं प्रीति रीति सरसाइये ।
कवहू तौ डगर वगरहू मैं आइये न,
आइये तौ सदाइ हमारैं घर छाइये ॥
येक वेर इहि ओर देषि मुसकैये मुस,
कैये न तौ नीकें भुज भरि उर लाइये ।
फूलनि कौ चौसर या औसर मैं दीजै जू न,
चौसर तौ मोतिन कौ नौसर दिवाइये ॥१२॥

इहां "सदाई घर छाइबौ भुज भरि डर लाइवौ मौतिन कौ नौसर" ए पहलें कहे चहियें ।

अथ ग्राम्य

रसिकनि कौ प्रिय अर्थ नाही, सो ग्राम्य ।

कुलपति

॥ सवैया ॥

सूरज तेज तपै तिहु लोग(क) मैं, आंधी जराइबे की मति ठाटी ।
सीतलता कहि कौंन करै जिहि, देषैं तूषारहू की वुधि नाटी ॥
जेठ मैं जीवन जौ ही बनें तब, होइ तिवारी बनाय कैं पाटी ।
सीचि कैं कोरे घडानि के नीर सौं, द्वारनि दीजै जवासे की टाटी ॥१३॥

इहां "सीचि कैं आछे गुलाब के आव सौं द्वारनि दीजै उसीर की टाटी" अैसैं कहनौं उचित ।

अथ संदिग्ध

प्रकर्ण बिना अर्थ कौ निश्चै नही, सो संदिग्ध ।

॥ दोहा ॥

बडे बिदित सब जगत मैं, अचल प्रकृति जिय जानि ।
सहनसील सज्जन सुषद, विबिधि गुननि की षानि ॥१४॥

या अर्थ मैं प्रसंसा पंडितनि की पर्वतनि की यह संदेह है । अरु दोऊनि मैं एक के प्रसंग मैं कहिये तौ दोष नही ।

पुनः

[दोहा]

कपट निपट तजि दीजियै, कीजै सज्जन संग ।
जौ लौं जग मैं जीजियै, लीजे हिलिमिलि रंग ॥१५॥

ए बचन शृंगार पैं कि सांति पैं यह संदेह है ।

अथ निर्हेतु

बिना कारण अर्थ कौ कहनौ, सो निर्हेतु ।

॥ सवैया ॥

जंघनि बाजू भुजानि मैं, नूपुर हार लता कटि सौं लपटाई ।
बंदिनि बाँधी गुलीवंद ज्यौं, सिर किंकिनी जाल की जोति जगाई ॥
पौरि लिलार महावर की करि, पांयनि अंजन दै सुषदाई ।
अैसे सिंगार सिंगारि सबै मृग, भामिन ज्यौं गज गामिन धाई ॥१६॥

इहां कछू कारन कह्यौ नही या तैं मौंहन की मुरली सुनि कैं "मृग भामिनी ज्यौं गज गामिनि धाई" यौ कहैं तौ दोष नही ।

अथ प्रसिद्ध विद्या-विरुद्ध

प्रसिद्ध विद्या तैं विरुद्ध जो अर्थ, सो प्रसिद्ध विद्या-विरुद्ध । सो द्वि-बिधि । कवि संप्रदाय-विरुद्ध, सास्त्र-विरुद्ध ।

अथ कवि संप्रदाय-विरुद्ध

॥ दोहा ॥

अधर मधुर मांषन सद्दस, कपि से चंचल नैंन ।
उदित मुदित मुष रबि सद्रस, सिषी सद्दस मृद बैन ॥१७॥

इहां "माषन कपि रबि सिषी सद्रस" की ठौर अंमृत मृग ससि कोकिल से" अैसें कहनौं उचित ।

अथ सास्त्र-विरुद्ध

[दोहा]

सुनि लछमन या जज्ञ तैं, वेग भजहु इहि बार ।
परसराम आयौ बली, लीनें कर तरवारि ।।१८।।

इहां "परसराम की तरवारि" सास्त्र मैं प्रसिद्धि नही यातैं "हाथ कुठार" कहनौं उचित ।

केसव

[दोहा]

पूजिय तीनूं बरन जग, करि बिप्रनि सौं भेद ।
पुनि लीबौ उपबीत हम, सुनि लीजै सब बेद ।।१९।।

इहां बिप्रनि सौं भेद करि कैं अरु तीनू बर्ण पूजिबौ अरु पहलैं बेद सुनि कैं पीछैं उपबीत लैंनौं यह सास्त्र-विरुद्ध है ।

अथ अनवीकृत

अनेक पदनि कौ एक ही भाव होइ अरु नवीन भाव देषियै नही, सो अनवीकृत ।

कुलपति

।। सवया ।।

रूप की रासि भयौ तौ कहा रु कहा भयौ जो गुन सागर गाह्यौ ।
बंधु अनेक भये तौ कहा औ कहा भयौ जौ अरि कौ उर दाह्यौ ।।
हाथी तुरंग भये तौ कहा औ कहा भयौ जौ जग-दान सराह्यौ ।
लाषनि साज भये तौ कहा रु कहा भयौ जौ जग नेह निबाह्यौ ।।२०।।

इहां बांछित अर्थ और द्रष्टांत करि पोष्यौ नही यातैं "हरि सौं जग जौ नहि नेह निवाह्यौ" असैं कहनौं उचित ।

अथ नियम मैं अनियम, अनियम मैं नियम, विसेष मैं अविसेष, अविसेष मैं विसेष इनके लक्षण नाम ही तैं जानि लीजं ।

अथ नियम मैं अनियम

॥ अरिल्ल ॥

कथा श्रवण गुन कथन सुमरण सुठानियै,
पद सेवा अर्चना बंदना जानियैं,
दास्य सष्य आतमा निवेदन मानियैं ।
करि हरि भक्ति गुबिंद सदा सुष-दानियैं ॥२१॥

इहां श्रवण कीर्त्तनादि नियम करि कैं फिरि भक्ति यह अनियम कहनौं अनुचित ।

अथअनियम मैं नियम

॥ दोहा ॥

अंग अंग सब सुषमा सरस, रस बस कियौ गुबिंद ।
हाव भाव लावन्य गुन, जोबन रूप अमंद ॥२२॥

इहां अनियम सब सुषमा कहि कैं फिरि हाव-भावादिक यह नियम करनौं अनुचित ।

अथ विशेष मैं अविसेष

॥ दोहा ॥

सघन कुंज गुंजत मधुप, उपमां कौं नहि आंन ।
वृंदावन सुंदर सकल, रसिकनि जीवन प्रान ॥२३॥

इहां "सघन कुंज मधुप गुंज" यह बिसेष कहि कैं फिरि "बृंदावन सुंदर सकल" यह अविसेष कहनौं अनुचित।

अथ अविसेष मैं विसेष

॥ दोहा ॥

मथुरा मंडल अति वन्यौ, सब सुष मानि समेत।
सुघट घाट बिसराति मम, चित्त चुरायें लेत ॥२४॥

इहां "मथुरा मंडल" सव सुष मानि समेत" यह अविसेष कहि कैं फिरि "सुघट घाट बिसरांति" यह विसेष कहनौं अनुचित।

सोमनाथ[1]

[दोहा]

सघन बाग अनुराग-मय, सब सोभा सरसाइ।
सौंन जुही के फूल नें, लीनौं चित्त चुराइ ॥२५॥

अथ साकांक्षा

कोईक अर्थ और अर्थ की चाह जहां करै, सो साकांक्ष।

॥ सवैया ॥

मांते मतंग सौं सोभित गौंन सु, केहरि-सी कटि सुंदर सोहै।
कोकिल से कल बैंन मनोहर, नैंननि को उपमा कबि टोहै ॥
जोबन रूप की जोति जगामग, देषति मौहन कौ मन मोहै।
आनदकंद गुबिंद की सौं तिय, तो सी तिया तिहु लोक मैं को-है ॥२६॥

---

1. अलवर-प्रति में सोमनाथ का दोहा तथा उनका स्पष्टीकरण नहीं है।

इहां "माते मतंग के गौंन सौं गोंन सु केहरि की कटि-सी कटि सोहै, कोकिल वैंन से बैंन" इतने अर्थ की और चाह है ।

अथ मुक्त पद

ठौर तजि कैं अर्थ कौं पूर्ण कीजै, सो मुक्त पद

॥ दोहा ॥

पिय के हिय मैं विरह की, ज्वाला कियौ प्रवेस ।
तिहि हरिये चलि ससि मुषी, मुष ससि सदृस सुदेस ॥२७॥

इहां "ससि मुषी" कहिकैं अर्थ पूर्ण भयौ फिरि "मुष ससि सदृश" कहनौं अनुचित ।

अथ सहचर भिन्न

उत्तम के साथ अधम कौं लिषियै, सो सहचर भिन्न ।

सोमनाथ

[दोहा]

विद्या ही तें बढ़त है, द्विज आदर अभिराम ।
ज्यौं लोहे के गढ़न सौं, है लुहार कौ नाम ॥२८॥

ब्राह्मन की अरु लुहार की सहचरता नही यातें इहां "जैसें छत्री कौ सदा जुद्ध करन सौं नाम" ऐसैं कहनौ उचित ।

अथ प्रकासित विरुद्ध

विरुद्ध अर्थ कौं प्रकासित करै, सो प्रकासित बिरुद्ध ।

॥ दोहा ॥

नील वसन तन मरगजी, सुगँध अटपटे बैंन ।
सकुचौ हैं भौहैं सषी, अति अलसौंहै नैंन ॥२९॥

इहां नायक कौ बर्नन है अरु नाइका कौ सो प्रकासै है यह अनुचित ।

अथ विधि अनुबाद अयुक्त

बिधि के अनुबाद करि कैं रहित जो अर्थ, सो विधि अनुबाद अयुक्त ।

[दोहा]

कोक कलानि प्रबीन तुम, जुवतिन के रिझवार ।
मोहि वेग ही कीजियँ, भवसागर के पार ॥३०॥

इहां भवसागर के पार करने की बिधि के एक बिसेषण नही या तै "प्रभू पतितपावन प्रगट करुणासिंधु उदार" अैसें कहनौं उचित ।

अथ तिक्त पुनःस्वीकृत

अर्थ कौं तजि कैं फिरि ग्रहण करनौ सो तिक्त पुनःस्वीकृत ।

॥ कवित्त ॥

जुद्ध मध्य क्रुद्ध कैं विरुद्धी दुरबुद्धिन के,
मद्दित दुरद्द हतें अैसी असि नारी है ।
ताही अनुरागिनि सौं मन की लगाई लाग,
और कौन गनैं कछू मौंहनी-सी डारी है ॥
मोहि दई भृत्यनि कौं वडौई उदार चारु,
यह जिय जानि तात बात यौं हमारी है ।
कहै कबि गोविंद महीपति दिलीप यौं,
जतावन कौं सिंधु के समीप श्री सिधारी है ॥३१॥

इहां "यह जिय जानि तात" इहां ही अर्थ कौं समाप्त करिकैं 'तज्यौ फिरि यौं जतावन कौं सिंधु के समीप श्री सिधारी है" वह अर्थ गृहन करनौं अनुचित ।

अथ अश्लील

अर्थ में लज्जा[1] अमंगल[2] ग्लानि[3] कौं प्रगट करै, सो अश्लील ।

अथ लज्जाश्लील

कुलपति

।। कवित्त ।।

छैल से फिरत छेद भेदनि के भेद लेत,
षेद पायें लालन बदन बिलषायगौ ।
वांसुरी के वाही ठौर अधर लगायें रहौ,
जानियत याही भांति मदन बतायगौ ।।
मार के सुरूप यातें मारिबौ बसत मन,
मार परें मोंहन जू मन सिथलायगौ ।
अंडे अंडे डोलत हौ ठाढे किये अंग सब,
देषें अब कैसें यह हठ ठहरायगौ ।।३२।।

यह अर्थ सषी की उक्ति मैं लज्जा कौं प्रगट करै है अरु परुषी उक्ति मैं होइ तौ दोष नही ।

1-2-3 अलवर व जोधपुर की दोनों प्रतियों में अश्लील के तीन भेद हैं—लज्जा, अमंगल, ग्लानि । इस प्रकार २५ भेद हो जाते हैं ।

अथ अमंगल अश्लील

॥ दोहा ॥

चलियैं सगुन मनाय कैं, पिय परदेस नचिंत ।
उत तैं फिरि इत देषि हौं, तब सुष पैं हौं कंत ॥३३॥

इहां अमंगल प्रगट ही है ।

अथ ग्लानि अश्लील

॥ दोहा ॥

उर पर नष छत रुधिर मनु, है कुंकुम कौ रंग ।
श्रम जल-कन पोंछौ पिया, लिवलिबात है अंग ॥३४॥

इहां ग्लानि प्रगट ही है ।

अब इन दोषनि कौ समाधान प्रकार कहियत है। जहां कर्णाभरणादिक करणादिक की स्थिति की प्रतीति के अर्थ कहियै तहां पुनरुक्त आदि दोष नही ।

॥ छंद ॥

जीती सवै भूषननि की, । करणावतंसनि सोभ ।
यातें श्रवण कुंडल निरषि, पिय मन लग्यौ अति लोभ ॥३५॥

इहां "कर्णाबतंस श्रवण कुंडल पहरें लसत के लियें" कहै नांतर घरहू मैं धरें गहनेंनि की प्रतीति होइ ॥३६॥

कुलपति

॥ दोहा ॥

काननि कुंडल नासिका, बेसरि टीकौ भाल ।
कर कंकन उर हार पग, जेहरि लसत रसाल ॥३७॥

इहां "कांननि" आदि ए सब पद "पहरैं लसत कैं लियैं" कहे नांतरि घरहू मैं धरै गहनेंनि की प्रतीति होइ या भांति समाधान कीजै जो कहूं आय परै बडे कबि की उक्ति मैं तौ अरु आप जानि कैं नही धरिये ।

कुलपति

॥ दोहा ॥

हिये धरैं फूली फिरै, पाय पीय के प्यार ।
फूल-माल की जेब पर, वारति मुक्ता–हार ॥३८॥

जद्दपि "माल" कहे तैं फूलनि हीं की अरु "हार" कहे तैं मुक्तानि हीं कौ यह प्रतीति प्रसिद्ध है तथापि अति प्रसिद्ध फूलनि ही की केवल मुक्तानिहीं कौ यह कहिवे कौं "फूल-माल मुक्ता[हा]र" कहे । अथ अति प्रसिद्धार्थ मैं निर्हेतु दोष नांही ।

॥ सवैया ॥

चंद के मध्य जवै छबि होति तवै, अरविंद कौ मेद घटा[वै] ।
ह्वै अरबिंद के मध्य जवै, छबि चंद कौं मंद करै औ लजावै ॥
प्यारी के आनन मैं छबि होति तबै, कछु रीति अनौषी दिषावै ।
चंदहू कौं अरबिंद कौं आली, गोविंद की सौंह अनंद बढावै ॥३९॥

चंद्रमा की हीनता दिन मैं कमलनि को संकोच रात्रि मैं यह अर्थ सकल लोक मैं प्रसिद्ध है, या तैं इहां निर्हेतु दोष नही ।

पराई कहनावति के कहिबै मैं श्रुति कटु आदि दोष नही ।

॥ कवित्त ॥

धवल महल के अटा पैं घटा देखैं दोऊ,
नीकैं तान मान लै मलारनि कौं गाय गाय ।
धुमकट धिकटधि लांग धिधिकट धुनि,
मधुर मृदंग बजै सषी चित चाय चाय ॥
सुनि सुनि आये धौरे धूंधरे धुंधारे भारे,
धूमरे सघन घन श्री गुबिंद छाय छाय ।
केकी नचैं कूकि कूकि त्यौं त्यौं धुकि धुकि धुकि,
धरा पैं धरत धार धारा धर धाय धाय ॥४०॥

इहां "धुमकटादि" पद श्रुति कटु हैं परि मृदंग की कहनावति है यातैं दोष नही । अंसें औरहू ठौर जथा संभव जानि लीजे । कहूं कविता वक्ता श्रोता अर्थबिगि प्रस्ताव की महिमा करि कैं दोषहू गुन है कहूं गुनहूं दोष है । कहूं गुन गुन हीं दोष नही है ।

कुलपति

॥ दोहा ॥

जहँ कहिवैया गूढ़ कौ, श्रोता तैसौ होइ ।
अधिक श्लेष जुत गुन तहां, दोष कहै नहि कोइ ॥४१॥

रौद्र बीर वीभत्स बिगि तैं कहै तहां कष्टार्थ दोष नहीं ।

॥ कवित्त ॥

प्रगट प्रचंड पुहे आंतनि मैं रुंड मुंड,
कंकण कुणित जघ हाडनि धरत है ।
और घने घोर भूषननि के जु घोष की,
घुमंडनि गुविंद की सौं अभ्रमैं भरत है ॥

गिल्लैं औ उगिल्लैं झल्लैं सघन रुधिर पंक,
उरु उच्च कुच्च भार भूषित करत हैं ।
भोम भेष कुकै कैं उद्धत गरब्बि गज्जि,
भारत की भूमि मध्य भज्जते फिरत हैं ।।४२।।

"भज्जते भूत फिरत हैं" यह अर्थ कष्ट सौं प्राप्ति होत है । परि इहां दोष नही । नीरस काव्य मैं गुग गुन नहीं दोष दोष नहीं ।

।। कवित्त ।।

रोगनि तैं फूटि फूटि फोरे फटि फाटि घाव,
रटि रटि रहे राधि रुचिर चुचाय कैं ।
हाथ पाद नासिकानि अंगागरि गिरे ग्रैसे,
नरनि सरीर दिव्य देत सरसाय कैं ।।
बिघन बिनाशन हुलासनि प्रकासन कौं,
द्विज दैं अरघ तिन्हैं लेत हैं सुभाय कैं ।
ग्रैसे मारतंड कौं प्रचंड कर मंडल,
अषंड करौं आनँद गुबिंद की सहा[य] कैं ।।४३।।

ग्रैसी ठौर गुन गुन नहीं, दोष दोष नहीं । श्लेष चित्र जमक मैं अप्रयुक्त अरुन हितार्थं दोष नही । लज्जाश्लील कामशास्त्र मैं दोष नही ।

कुलपति

।। दोहा ।।

दंड वडौ मुदरी तनक, बनि बैठैं छबि होइ ।
तवहि ग्रमैठि चलाइये, सुष न कहि सकै कोइ ।।४४।।

इहां लज्जा प्रगट ही है । क्रोधी की अरु बिरही की उक्ति मैं अमंगल अश्लील दोष नही ।।

कु[लपति]

[दोहा]

इहां न सो जिहि सौं सबै, बिरही करै पुकार ।
कछुक मरे मारे कछू, बिकल किये इहि मार ।।४५।।

इहां अमंगल प्रगट ही है । ग्लानिश्लील सांति रस मैं दोष नही ।

।। दोहा ।।

उदर विदीरण भेक कौं, तिय व्रण ताहि समांन ।
ता मैं शठ नर करत रति, तजि गुबिंद भगवान ।।४६।।

इहां ग्लानि, गुन है । व्याज स्तुति मैं संदिग्ध गुन है ।

सेनापति

।। कवित्त ।।

नांही नांही करै थोरौ मांगें सब दैन कहैं,
मंगन कें देषि पट देत बार बार हैं ।
जिनके मिले तें भली प्रापति की घरी होति,
सदा हरि जनम भाये निरधार हैं ।।
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य,
कनक[न] जोरैं दान पाठ परवार हैं ।
सैंनापति बचन की रचना बना बनाई,
तामैं दाता और सूंम दोऊ कीने इकसार हैं ।।४७।।

प्रतिपाद्य ज्ञान प्रतिपादक कौं होइ, तहां अप्रतीति दोष नही ।

॥ सवया ॥

भीतरि द्रष्टि दै पुत्र बिचित्र महा, इक कौतुक तोहि दिषावत ।
सूचिका अग्रछ कूपनि पैं पुर, ता पर गंग प्रवाह वहावत ॥
ताके सनान तें ध्यांन तें पान तैं, बाहिर के जे विकार नसावत ।
अैसौ है ब्रह्म अनंद गुबिंद गिरा, गुरु की सौं सवै कोऊ पावत ॥४८॥

इहां देह मैं एक कुंडलिनी सर्पिनी के आकार है ताकी जोग सास्त्र मैं सूचिका संज्ञा है। ताके अग्रबर्ती छः चक्र है-१. मूलाधार, २. स्वाधिष्ठान, ३. मणिपूर, ४. अनाहत, ५. विशुद्ध, ६. आज्ञा। इनकी कूप संज्ञा है। इन पैं ब्रह्मांड है। ताकी पुर संज्ञा है। ता पै तें अमृत चुचात हैं ता की गंगा प्रबाह संज्ञा है। यह प्रतिपाद्य अर्थ कौ ज्ञान प्रतिपादक कौ है या तें दोष नही ।

ग्रामी अरु विदूषिकादिक के बाक्य मैं ग्राम्य गुन है।

॥ सवैया ॥

नीकी जुही की लतानि की डारनि की अवली लवली मन मोहै ।
फूलनि गुच्छ लगे अति सुच्छ सु देषि लुभाय नही अस को है ॥
चांवल रांधे षिले से षिले अरु गोबिंद कौ उपमां कबि टोहै ।
उज्जलता पुनि अैसी लसैं पट वांध्यौ दही जनु भैंसि को सो है ॥४६॥

॥ दोहा ॥

मांषन कौ सौ पिंड यह, चंद्र बिंब है चारु ।
चहूं ओर किरनैं परति, मनहु दूध की धार ॥५०॥

कहूं वक्ता की हर्ष की अधिकाई की उक्ति मैं नून पद गुन हैं।

[सवैया]

अति गाढ़े अलिंगन तैं जु उरोज दबे तन लीनें रुमांच-मई ।
हित की सरसानि तें वास नितंब कौ न्यारौ भयौ अस नारि नई ॥

परसै जिन गोबिंद यौं कहती सु भुजा भरि अंक निसंक लई ।
फिरि लीन भई कि बिलीन भई किधौं सोइ गई किधौं षोइ गई ।।५१।।

"किधौ कहां गई" यह पद नून है । अति निहचै की उक्ति मैं अधिक पद गुन है ।

।। सवैया ।।

कितनैं दु अर्थ गुबिंद की सौं मन मैं कोऊ क्यौहू न आनत हैं ।
इहि भांति के दुःसह अर्थ निधृष्ट ह्वै दुष्ट सपुष्ट बषानत हैं ।।
तिन के उर मैं न गडै कि गडै इतनी निठुराई जे ठांनत हैं ।
हम यौं जिय मैं नहि जांनत है पुनि यौं निहचें जिय जांनत हैं ।।५२।।

इहां चौथी तुक मैं अधिक पद प्रसिद्ध ही है ।

।। कुलपति-दौहा ।।

तुम जानत दुरि कें किये, हम सब चित के चाय ।
नहि नहि जानत जानवे, जानत सबै सुभाय ।।५३।।

इहां "नहि नहि जानत जानिवौ" याही मैं सिद्धि भयौ फिरि "जानत" कहनौं निश्चयार्थ अधिक है ।

अथ लाटानुप्रास मैं अर्थात रस क्रमित बाच्य ध्वनि मैं बिहितानुवाद बीपसा मैं कथित पद गुन है ।

अथ लाटानुप्रास

[दोहा]

उदित समैं दिनकर अरुए, अरुए अस्त ही जानि ।
संपति बिपति बडेन की, सदा एक-सी बांनि ।।५४।।

अथ अर्थांतर संक्रमित बाच्य ध्वनि

॥ दोहा ॥

सजन सराहत नांहि तौ, गुन गुन कबहु न मांनि ।
परसत भांन बिहान कर, कमल कमल जब जानि ॥५५॥

कुलपति

[दोहा]

बिना पियारे प्यार बिन, रूप रूप नहि कोइ ।
जब पावै पूनूं निसा, चंद चंद तब होइ ॥५६॥

अथ बिहितानुबाद

[दोहा]

इंद्री जीतै बिनय ह्वै, बिनय भयें गुन होइ ।
गुन तें सब जग हित करै, हित तैं धन जिय जोइ ॥५७॥

अथ बीपसा

॥ लाल कौं कवित्त[1] ॥

कोटि कोटि काम रूप वारि वारि डारौं जा पै,
देषि देषि ऐसी छबि मोहि मोहि जात नैंन ।
भांति भांति लोगनि सौं ढ़ांपि ढ़ांपि उठै जीजियत,
कांपि कांपि उठै चित्त चांपि चांपि चूरि चैंन ॥

1. अलवर-प्रति में इसे "कृष्ण को कवित्त" कहा गया है ।

टेरि टेरि आरती सौं फेरि फेरि जाचति हौं,
हेरि हेरि मेरे प्रांन घेरि घेरि रह्यौ मैं न ।
एक एक राति जाति लाष लाष राति सम,
आव आव प्यारे पीव भाषि भाषि हारे बैन ।।५८।।

क्रोधी की अरु बिरही की उक्ति मैं समाप्त पुनरात्त अरु पतत्प्रकर्ष दोष नही ।

।। कवित्त ।।

संभु कौं धरा पैं धरचौं धुक्यौ काहू पैं,
न षडे कौ घुमंडचौ घोष क्रुद्ध भौ घनेरौ है ।
ताकौ हौं पठायौ धायौ आयौ भृगुनंद जुद्ध,
उद्धत कें करौं विरुद्धीन कें अँधेरौ है ।।
भारी भुज भीमनि मैं कठिन कुठार धरैं,
धारा अग्र अतिथ गरे की आज तेरौ है ।
जातैं षंड परसु कहावत जगत मांझ,
गरबीलौ गोबिंद गिरीस गुरु मेरौ है ।

इहां चौथी तुक मैं समाप्त पुनरात्त अरु पतत्प्रकर्ष प्रगट ही है । अैसैं औरहू ठौर जथा संभव जानि लीजै । चमत्कार कौं बढ़ावै तहां गुन है, न बढ़ावै तहां उदासीन है ।

असमर्थ, अनुचितार्थ, निरर्थक, अवाचक ए नित्य दोष हैं, यातैं इन के वदले की ठौर नही ।।

अथ साक्षात रस दोष (१२)

बिभचारी-भाव कौं, रस कौं स्थायी भाव कौं, ३. शब्द, बाच्यता, ४. अनुभाव विभावनि की कष्ट कल्पना, ५. प्रकृतिकूल बिभावादिक ग्रहण करनौं, ६. पुनः पुनः दीप्ति, ७. अकांड बिषैं प्रथन, ८. रस षंडन, ९. प्रधान अंग कौ बिस्मर्ण, १०. अंगी कौ अनुसंधान, ११. अनंग कौ अभिधान, १२. प्रकृति बिपर्जय ।[1]

---

1. जोधपुर-प्रति में क्रम ठीक नहीं है किन्तु अलवर-प्रति में ठीक है और १० तक चलता है । वाच्यता पर संख्या १ होनी चाहिए जो १० तक चलनी चाहिए ।

अथ बिभचारि भाव कौं शब्द-बाच्यता

।। सवैया ।।

देषैं सिवानन लज्जित है करुणा गज-षाल बिलोकति कारी ।
व्याल लषैं तृसिता है पियूष श्रवै ससि देषत व्रिस्मित भारी ।।
गंग निहारैं असूया कपाल की माल तें दीना न जाति उचारी ।
ऐसी सिवा की सुद्रष्टि सव बिधि गोबिंद कौं अति आनँदकारी ।।१।।

इहां लज्जा करुणा त्रासादि बाच्य कीनें ।

अथ रस कौं शब्द-बाच्यता

।। दोहा ।।

मोहि बिलक्षण रस भयौ, लषि यह नारि वनीन ।
ससि मंडल छबि लषत चित, भौ सिंगार मैं लीन ।।२।।

इहां रस अरु शृंगार बाच्य कीनें ।

अथ स्थायी भाव कौं शब्द-बाच्यता

।। दोहा ।।

जुद्ध मध्य उद्धत चलत, दुहुं दिसि सस्त्र प्रवाह ।
श्रवन सुनत नर नाह कैं, उर मैं भयौ उछाह ।।३।।

इहां उत्साह वाच्य कीनौ ।

कुलपति

[दोहा]

सरद निसा प्रीतम प्रिया, बिहरत अनुपम भांति ।
ज्यौं ज्यौं राति सिरांति है, त्यौं त्यौं रति सरसाति ।।४।।

इहां रति बाच्य कीनौ। इन तीनौं दोषन के दूषन मैं बिजना-वृत्ति अरु सुहृदनि कौ हृदय ही प्रमान है।

अथ विभावनि की प्रतीति कष्ट सौं

कुलपति

॥ दोहा ॥

कैसे कैसे जतन सौं, तन मन सर्बसु लाय।
तब ही हियौ सिरायगौ (जब), लषिये भरि चित्त चाय ॥५॥

इन बचन रूप अनुभावनि तैं आलंबन नाइका किधौं नायक यह प्रतीति कष्ट सौं होइ।

अथ अनुभावनि की कष्ट-कल्पना

॥ सवैया ॥

प्रीति की रीति बिसारति है अरु निंदति बुद्धिहू कौं बहुधाई।
रोवै बिलापै चलै षिसलै औ परै पुनि ऊठति हैं अकुलाई॥
ऐसी दसा दुसहा बिषमा यौं करै अंग अंग पराभव माई।
कीजै कहा सषि गोबिंद की सौं भई सु भई सु कही नहिं जाई॥६॥

इहां ए अनुभाव करुणा के किधौं बियोग शृंगार के यह प्रतीति कष्ट सौं होइ।

कुलपति

[दोहा]

बरन बरन घन घुमडि कें, उमडि उठे चहु ओर।
सुधि आये सुष पाछिले, सुनि बन बोलत मोर ॥७॥

ए अनुभाव करुणा के किधौं बियोग शृंगार के यह प्रतीति कष्ट सौं होइ। अरु बिभाव अनुभावनि के नाम कहिवे मैं तौ दोष नही।

कुलपति

[कवित्त]

दौरि दौरि द्वार आइ इत उत चाहि फिरि,
सोचि कें सँभारि भौंन भीतरि भगति है।
पौरि मांझ ठाढ़ी मग देषि मुरझाइ बिन,
देषैं बिरुझाइ छाती अति उमगति है॥
कछु न सुहाई विन नीर मीन भाय सषी-
हू सौं अनषाय निसि बासर जगति है।
भूली सुधि मौहिनी बिसारि दई दौंहिनी सु,
छबि बनीता की कछु और सी लगति है॥८॥

अथ प्रतिकूल विभावादिक गृहण करणौ

॥ कवित्त ॥

धारि सु प्रसन्नताई रस कौं प्रगट करि,
रिस कौं बिसारि यह दुष दरसाति है।
पीके अंग अंग बिरहा तप तैं तचत सु,
सींचि सुधा बैंन कहा नैंन सतराति है॥
सुष सुषमानि कौ सदन तन तेरौ ताहि,
प्यारे ढ़िग राषि कहा एती इतराति है।
गोबिंद से मीत सौं न मान करि मानि कह्यौ,
पानी मांही नाव असैं आव चली जाति है॥९॥

इहां शृंगार मैं "पांनी मांही नाव असैं ही चली जाति है।" यह सांति के उद्दीपन बचन कहनौं अनुचित। कहूं बिभचारि भाव कौं शब्द वाच्यता अदोष है।

।। सवैया ।।

उतकंठित ह्वै कें सवेग चली रति नायक सायक सौं डरिकें ।
सुनि आलिनु की बचनालि लष्यौ बर सामुहैं मोद हियैं धरिकें ।।
तन रोम उठे नव संगम मैं हसि लीनि महेस भुजा भरिकें ।
उह दक्ष-सुता कवि गोबिंद कें नितही हु सहाय कृपा करिकें ।।१०।।

इहां उत्कंठा आवेग कौं जतावै अैसौ पद और नही, यातैं शब्द-बाच्यता अदोष । कहूं विरुद्ध संचार्यादिकनि की बाधित्व उक्त गुन है ।

।। कवित्त ।।

कहां हौ नरेंद्र चंद्र-बंसी कहां एतौ दुष,
पुनि कबहूंक उह मुषहि दिषाय है ।
मैं तौ गुरु लोगनि की सीष सुनी सांति हेत,
वा की तौ रुषाई हू निकाई सरसाय है ।।
गोबिंद बिबेकी कहा कहि हैं सुनत मोहि
सुपनैं हू दुर्ल्लभ तू सुल्लभ क्यौं पाय है ।
रे मन समझि अब और न उपाय बाहि,
हौं न जानौं कौंन कंठ लाय सुष पाय है ।।११।।

इहां राजा पुरुरवा की उक्ति है । गर्ब, दीनता, उत्कंठा, बोध, समृति, लल्जा, मति, बिषाद, तर्क इन भावनि की सबलता है, यातैं बाधित्व उक्ति गुन है । अैसैं और हू ठौर जथा संभव जानि लीजै ।

आश्रय के एकत्व बिषैं बिरुद्धी जो रस ताहि न्यारौ आश्रय करि कें अरु वर्णन कीजै तो दोष नही । उदाहरन देस काल के भेद कौ करि आये हैं ।

[सवैया]

एक धरैं कमलासनि पैं कर, एक सुदर्शन चक्र धरै हैं।
एक विषातुर संभु के सीस, समुद्र मथान मैं एक अरैं हैं ॥[1]
बेद पुरान बषांनत है जिहि नाम, लिये मन काम सरै हैं।
ग्रैसे गुविंद चतुर्भुज राय सहाय, सदा सब ही की करैं हैं ॥१२॥

जो रस निरंतर निरुपण करिवे मैं विरुद्ध होइ ताहि ग्रौर रस कौं अंतर डारि कें ग्ररु बर्निए तौ दोष नही ।

॥ कवित्त ॥

सुर तरु फूलनि के उर पैं सुढ़ार हार,
नवल परीनि ग्रंस धरी भुज भाय कें ।
ब्यारि हात प्यारीनि के सौंधें रंगे चीरनि सौं,
राजै पुष्प जान मैं कुतूह सरसाय कें ॥
अैसे वीर देषें मैं न कानि के दिषायें दूजे,
ग्रापुने सरीर हैं श्रोनित चुचाय कें ।
परे धूरि लपटाय स्यालिनी पलौंटे पाय,
पंषनि सौं करै वाय गिद्ध ग्राय ग्राय कें ॥१३॥

जद्दपि शृंगार कौ ग्ररु बीभत्स कौ बिरोध है, परि इहां वीर रस कौ ग्रंतर डारि कें कहै है, यातें दोष नही ।

विरुद्धी हू रस स्मर्ण किये तें तुल्यता करि कें कहियै तौ दोष नही । उदाहरण ग्रंगांगी कौं करि ग्राये हैं ।

॥ सवैया ॥

जा करि कें छवि पावत ही रसना सु यहै कर है सुषदानी ।[2]
जंघ नितंव उरु कटि नाभि उरोजनि कौं परसै हौ गुमानी ॥

---

1. ग्रलवर वाली प्रति में इन दोनों पंक्तियों के बाद "इत्यादि" लिख दिया है । ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रलवर वालीं प्रति में लिपिकार कुछ संक्षिप्त होना चाहता है ।
2. ग्रलवर वाली प्रति में सवैया की केवल एक ही पंक्ति है ।

मोचत हौ नित नीबी के बंद, गुविंद कई कहि कैं यौं कहानी ।
भारत भूरीश्रवा भयौ भंग, कटचौ कर जोवति रोवति रानी ।।१४।।

अरु एक रस अंगी मैं विरुद्धी हू द्वै रस जौ अंग होइ तौ दोष नही ।

।। कवित्त ।।

कुरप अन्यारे षत कृत मृद्र अंगुरीनि,
श्रोनित चुचात मानौं जावक धरति हैं ।
असे पाय पाय कुस भूतल पै धाय धाय,
अश्रुपात तातें मुष धोइवौ करति हैं ।।
निज पिय साथ गहैं हाथनि सौं हाथ बन,
इत उत जात दावानल तें डरति हैं ।
पारथ गुबिंद कहैं पुनि पुनि मेरे जानि,
रावरी जे शत्रु बधू भांवरी भरति हैं ।।१५।।

इहां राज बिषयिनी रति के करुणा अरु शृंगार दोऊ अंग हैं, असैं होइ तौ दोष नही ।

अथ पुनः पुनः दीप्ति

'कुमार काव्य' मैं जैसें रति प्रलाप ।।१६।।

अथ अकांड मैं प्रथन

'बिजय मुक्तावली' मैं जैसें भानमती कौ शृंगार जुद्ध के समय बर्नन करिबौ ।।१७।।

अथ रस षंडन असमै के बिषैं

'बीर चरित नाटक' मैं परस राम चंद्रजू की समानता मैं जैसें कंकन षुलाइबौ ।।१८।।

ग्रथ प्रधान ग्रंग कौ विस्मरण

यह 'ग्रीव बंध नाटक' मैं हयग्रीव कौ जैसें बर्नन ।।१९।।

ग्रथ ग्रंगी कौ नही जानिबौ

'रत्नावली' के चौथे अंक मैं सागरिका कौ जैसें विस्मर्ण ।।२०।।

ग्रथ ग्रनंग कौ ग्रभिधान

'करपूर मंजरी' के विषैं ग्रपनौं बर्णन छाडि कैं जैसें बंदी बर्नन की प्रसंसा ।।२१।।

ए छहूं दूषन नाटक के काम के हैं ।

ग्रथ प्रकृति बिपर्जय

दिव्य ग्रदिव्य दिव्यादिव्य ए तीन प्रकृति । दिव्य रामचंद्रादय । ग्रदिव्य माध्रवादय । दिव्यादिव्य श्री कृष्णादय ।

रसनि के ग्रनुसार चारि प्रकृति

धीर उद्दात । धीर मृदु । धीरोद्धत । धीर सांत । इनकौं बीर, श्रृंगार, रौद्र, सांति ए रस प्रकृति हैं श्री राम, श्री कृष्ण, भीष्म, युधिष्टिर । इन्हैं ग्रादि दै ग्रोरहू जानियैं ।

गुननि के ग्रनुसार तीनि प्रकृति हैं

उत्तम, मध्यम, ग्रधम । उत्तम प्रकृति देवतानि की ।

कुलपति

॥ दोहा ॥

सागर लंघन नभ गमन, सफल मया अरु कोह ।
उत्तम दिव्य सुभाव ए, जहां होय नहि मोह ॥२२॥

ए नर मैं नहि बर्नियै, कहियै नरनि प्रमान ।
अचिरज हांसी सो करति, नर सुभाव ए जानि ॥२३॥

दोऊ दिब्य अदिब्य मैं, उचित हिये मैं जांनि ।
कछूक उत्तम नरनि मैं, देव प्रकृति हू आनि ॥२४॥

देवनि हूं मैं नर प्रकृति, उचित हौंइ ते मांनि ।
अैसें देवा नर प्रकृति, दोऊ भेद बषानि ॥२५॥[1]

उत्तम नरनि की प्रकृति देवतानि हूं मैं बर्नियै कछूक देवतानि की प्रकृति उत्तम नरनि हूं मैं वर्नियै जो ऊचित होइ ।

कुलपति

[दोहा]

अैसें ही रस गुन प्रकृति, लषि उलटी जहँ होइ ।
प्रकृति बिपर्जय दोष तहां, कहत सकल कबि लोइ ॥२६॥

---

1. अलवर प्रति में केवल दो दोहे हैं, यह तीसरा दोहा नहीं है ।

अथ देस बिरोध

सोमनाथ

।। दोहा ।।

सहित मयूर कदंब जहँ, सघन रसाल करीर ।
गावत गुन गोपाल के, धनि सुंदर कसमीर ।।२७।।

यह व्रज कौ सौ वर्नन कसमीर मैं करनौं अनुचित ।

अथ समय बिरोध

केस[व]

[दोहा]

प्रफुलित नव नीरज रजनि, बासर कुमुद रसाल ।
कोकिल सरद मयूर मधु, वरषा मुदित मराल ।।२८।।

इहां समय विरोध प्रसिद्ध ही है ।

अथ लोक विरोध

न्याय विरोध ।

केसव

[दोहा]

स्थायी वीर सिंगार कैं, करुणा घृणा प्रमान ।
तारा अरु मंदोदरी, कहिये सतिनु समान ।।२९।।

इहां वीर मैं करुणा अरु शृंगार मैं घृणा ए लोक बिरोध हैं। तारा, मंदोदरी ए सती सो न्याय बिरोध है। अैसें और ठौर हू जथा संभव जानि लीजै।

काम कौ नाम

॥ कान्ह कौ कवित्त ॥

आपही तौ नैंननि सौं नैंननि मिलाइ पुनि,[1]
सैंननि वताय हरि लीनौं चित चाय चाय।
अब जौ कहत मोहि संक गुरु लोगनि की,
मारत निसंक काम कासौं कहौं जाय जाय॥
एरे निरदई कान्ह कहत सुजान तोसौं,
तेरे बिन देषें आषें रहैं झर लाय लाय।
दूरि जौ बसाय तौ परेषौहू न आय अब,
निकट बसाय मीत मिलत न हाय हाय॥३०॥

इहां काम कौ सताइबौ बिगि राष्यौ चहियै।

कुलपति

[कवित्त]

जब तें निहारी प्यारी रूप उजियारी देषें,
चष चक चौंधें देह दामिनी दमक है।
घरी द्वैक भेट भई तव ही तें उर मांझ,
वाही भांति कांम के नगारे की धमक है॥
सांच है कि भ्रमं सोही तूही सुधि देहि वाहि,
पूछि भेद लई जानें नेह की गमक है।
ऊषा कौ हरन सुष सूषा थोरै मेहनि कौ,
जुगनू की जोति सम मन में चमक है॥३१॥

1. अलवर प्रति में यह प्रथम पंक्ति इस प्रकार है—
पहलैं तौ नैंनि सौं नैंननि लगाय...............

इहां काम कौ सताइबौ । बिगि राष्यौ चाहियैं समय प्रबंधक की तुक ।[1]

॥ दंडक छंद ॥

बिबस भ्रम भूलि प्रतिबिंब निज बिबका लषि अनषि मानिनी मांन कीनौं ।
काम भय भीत घनस्याम स्यामा बिना बिकल बिलपत्त अरसै अधीनौं ॥३२॥

इहां काम कौ सताइबौ बिगिराष्यौ चहियै ।

कुलपति

॥ दोहा ॥

अनुचित तैं नहि उचित है, रसहि बिगारन हेत ।
उचित प्रसिद्ध बनाइयौ, यहै रसनि कौ षेत ॥३३॥

जहां बिरसता कौं कहैं, तहां होइ ए दोष ।
बांधे जहां बिरुद्ध कौं, तहां करैं रस पोष ॥३४॥

जस तिय संपति रूप गुन, इनतैं भलौ न कोइ ।
सबै हौंइ सुष साज ए, जौ थिर जोवन होइ ॥३५॥

सांतिरस बिरुद्ध है तथापि इहां शृंगार कौं पोषै है । असैं ही और ठौर उचितता देषि लीजै ।

इति श्रीमद्वृंदाबन चंद्रबर चरणाबिंद मकरंद-पानानंदित अलि रसिक गुबिंद कबिराज बिरचितं श्री रसिक गोविंदानंदघने दूषन उल्लास निरूपणं नाम तृतीय प्रबंधः ॥३॥[2]

1. 'समय प्रवन्ध की तुक' से............'कुलपति' तक की सामग्री अलवर-प्रति में नहीं मिलती ।
2. अलवर–प्रति में केवल—"इति दूखन तृतीय" लिखा है ।

अथ गुणालंकार निरूपणं[2]

वार्त्ता

रस के उत्कर्ष होंइ ते गुणालंकार। इन मैं भेद—रस के गुण तौ संवाय संवंध करि कैं रहत हैं जैसें आत्मा बिषें सूरत्वादि गुन हैं। अलंकार संजोग संवंध करि कैं रहत हैं। जैसें सरीर बिषैं हारादिक हैं।

गुन तीन—माधुर्ज, ओज, प्रसाद।

अथ माधुर्ज लक्षणं

चित्त मैं द्रवीभाव कौं उत्तपत्ति करत जो आह्लादकारी होइ सो माधुर्ज। शृंगार बिषैं छवि करै है, करुणा, बिप्रलंभ, सांति इन मैं उत्तरोत्तर अधिक जानियै।

अथ औज लक्षण

चित्त की दीप्ति बिस्तारित करै सो औज। वीर, वीभत्स, रौद्र इन मैं उत्तरोत्तर अधिक जानियें।

अथ प्रसाद लक्षणं

अर्थ कौं सींघ प्रकास करि कैं अरु चित्त कौं प्रसन्न करै सो प्रसाद। इन गुननि के ए[1] वर्ण बिंजक हैं।

अथ माधुर्ज के बर्ण

ट ढ़ ड ढ़ रहित अरु कादि मांन जहां तहां सदीर्घ विंदु ह्रस्व जिन के वीच मैं औसे रेफ अरु नकार। स्वल्प समास कहूं समास भाव।

---

2. अलवर-प्रति में "अथ गुन लिंकार" लिखा है।
1. अलवर-प्रति में 'ए' सर्वत्र ही 'ये' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

॥ सवैया ॥

करि कुंज लतानि की गुंजिन मंजु अलीनि के पुंज नचावतु है ।
अंग अंग अलिंगि उतंग अनंग गुबिंद की सौं सरसावतु है ।
बिकसे नव कंजनि सौं मिलि कैं रज रंजित ह्वै चलि आवतु है ।
यह मंद समीर चहूं दिसि वृंद सुगंधनि के बरसावतु है ॥१॥

विहारी

॥ दोहा ॥

रस सिंगार मंजन कियैं, कंजनि भंजन दैंन ।
रंजन अंजन हूं बिनां, पंजन गंजन नैंन ॥२॥

अथ ओज के वर्ण

वर्ग के आदि के अक्षरनि कौं तृतीयनि करि कैं दुतिय अरु चतुर्थ इन कौ समान कौ जो संवंध, ट वर्ग जुक्त, दीर्घ समास, जहां तहां दुत्त अक्षर।

॥ कवित्त ॥

भेष भयंकर जंभ जिह्व छुरी धार कर्ॺौ,
पंभ तैं गुबिंद यौं नृसिंह किलकारि कैं ।
दंत कट कटत बिकट्ट अट्टहास दाढ़,
दिट्ठि विज्ज छटा देति दुष्ट गर्ब्ब गारि कैं ॥
हक्क पक्क इंद्र कैं फनिंद्र हू कैं सक्क पक्क,
धराहू धसक्की दीह धक्क पक्क धारि कैं ।
जुद्ध करि क्रुद्ध ह्वै विरुद्धी दुरबुद्धी कौं,
प्रसिद्ध नष उद्धत सौं डारचौ पेट फारि कैं ॥३॥

अथ प्रसाद के बर्ण

श्रवण मात्र तैं बोध होइ संपूर्ण बर्णनि कौ कारणत्व ।

।। सवैया ।।

कुच पीन नितंबनि के परसें मलिनीं दुहुं घां दरसावति हैं ।
तन कौ मधि भाग न बीच लग्यौ सु, हरि ही गुबिंद सुहावति हैं ।।
भुज डांरी दुहूं सिथलाय जहां विथुरी की रचना सरसावति है ।
सयनी नलिनी दल की तिय की हिय की बिरहागि जतावति है ।।४।।

।। लाल कौ कवित्त ।।

रेसम रसमि समसि सम सिरोरुह,
सुंदरी कैं सघन घटा तें स्यांमताई सरसाति है ।
ता पं दुहूं ओरनि तें परम सँवारी पाटी,
पिय मन मारिबे की घाटी अहटाति है ।।
गूंथति गुननि कल मोतिनु बनाई मांग,
ता की उपमां कौं मेरी मति ललचाति है ।
तमकि चमकि तम पुंज की चमू कौं चीरि,
मांनौं चारु चंद्रमां की चौकी चली जाति है ।।५।।

इन गुननि की उपकारिनी ए वृत्ति हैं । उपनागरिका, परुषा, कोमला । माधुर्ज के विंजक बर्ण जा बिषैं, सो उपनागरिका । ओज के विंजक बर्ण जा बिषैं, सो परुषा । संपूर्ण बर्णनि करि कैं अरु अर्थ कौं शीघ्र प्रकास करैं, सो कोमला । कोऊ इनहीं सौं गौडी, वैदर्भी, पांचाली कहत हैं ।

अथ उपनागरिका

।। कवित्त ।।

घुघरारी अलक सँवारी अनियारी भौंहैं,
कजरारी आंषैं कजरारी मतवारी मैं ।
धारी सारी जरतारी सरस किनारी वारी,
मालती गुही है बेंनी कारी सटकारी मैं ।।

बारी बैस रूप उजियारी श्री गुबिंद कहैं,
बारी सुर नारी नर नारी नाग नारी मैं ।
मिलन बिहारी सौं दुलारी सुकुमारी प्यारी,
बैठी चित्रकारी की तिवारी सुषकारी मैं ।।६।।

कबिनाथ

[कवित्त]

मदन तुका-सी पुनि राजै कुंदका-सी मानौं,
कंज कलिका-सी कुच जोरी हू बिकासी है ।
गांसी भरी हांसी मुष फांसी मोह फासी मद,
जोबन उजासी नेह दिये की सिषा-सी है ।।
जाकी रति दासी रस रासी है रमासी को,
कह तिलोत्तमा-सी रूप-सारनि प्रकासी है ।
काम की कला-सी चपला-सी कबिनाथ किधौं,
चंपलतिका-सी चारु चंद्र चंद्रिका-सी है ।।७।।

भाषा भूषन

[दोहा]

नभ कारी भारी घटा, प्यारी बारी बैस ।
पिय परदेस अँदेस यह, आवत नहि संदेस ।।८।।

अथ परुषा

[दोहा]

कोकिल चातक भृंग कुल, केकी कठिन चकोर ।
सोर सुनें धरक्यौ हियौ, काम कटत अति जोर ।।६।।

अथ कोमला

केसव

॥ कवित्त ॥

दुरि है क्यौं भूषन बसन दुति जोवन की,
देह ही की जोति होति द्यौस ऐसी राति है ।
नाह की सुबास लगैं ह्वै है कैसी केसव,
सुभाव ही की बास भौंर भीरि फारैं षाति है ॥
देषि तेरी मूरति की सूरति बिसूरति हौं,
लालन की द्रष्टि देषिवे कौं ललचाति हैं ।
चलि है क्यौं चंदमुषी कुचनि कौ भार भयें,
कुचनि के भार तैं लचकि कटि जाति है ॥१०॥

कोमल बिमल मन बिमला-सी सषी साथ, कमला ज्यौं लीनैं हाथ
कमल सनाल के । इत्यादि ॥११॥

भाषा भूषण

[दोहा]

घन बरषत दांमिनी चलत, दिसि दिसि नीर तरंग ।
दंपति हियें हुलास सौं, अति सरसात अनंग ॥१२॥

इति गुन निरूपणं ।

अथ अलंकार निरूपणं

केसव

॥ दोहा ॥

जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुवरण सरस सुवृत्त ।
भूषण बिनु न बिराज ही, कबिता बनिता मित्त ॥१॥

अथ अलंकार लक्षणं

रस तें विगि तें भिन्न अरु शब्दार्थ कौ भूषित करै, सो अलंकार । सो दु-विधि — सब्दालंकार, अर्थालंकार ।

शब्दालंकार (५)

१. वक्रोक्ति, २. अनुप्रास, ३. जमक, ४. श्लेष, ५. चित्र । अलंकार उक्ति भेद तै होत हैं, उक्तनि मैं वक्रोक्ति प्रधान हैं यातै प्रथम बक्रोक्ति कहत हैं ।

अथ वक्रोक्ति लक्षणं

और भांति कह्यौ जो वाक्य ताकौं और भांति समुझिये, सो वक्रोक्ति । सो दु-विधि-श्लेष बक्रोक्ति, काक बक्रोक्ति ।

अथ श्लेष बक्रोक्ति दु-बिधि-सभंग, अभंग ।

अथ सभंग श्लेष वक्रोक्ति

।। लाल कौ कवित्त ।।

वातनि विलोकौ कत पवन बिलोकियत,
पीतम निहारौ तुम पीवौ अंधकार कौं ।
आये नंदलाल हम गाहक बजाजी के न,
देषौ बनमाली तौ लै आवौ गुहि हार कौं ।।
वौलै वलवीर तौ बिदारौ कंस के सी जाइ,
अैंठी कित जाति कियें ठीक किहि वार कौं ।
अैसें वहु भांति बतराय सतराय ठगी,
दूतिका न पावै वाकी बातनि के पार कौं ।।८।।

अथ अभंग श्लेष बक्रोक्ति

घनस्याम

॥ कवित्त ॥

षोलौ जू किवार तुम को हौ इहि बार हरि,
नाम है हमारौ बसौ काननि पहार मैं ।
माधव हौं भाभिनी तौ को किला के माथैं भाग,
भोगी हौं छबीली जाय पैठौ जू पतार मैं ।
नायक हौं नागरी तौ लादौ किन दाडौं जाय,
हौं तौ घनस्यांम जाइ वरसौ जू हार मैं ।
हौ तौ बनबारी जाइ सींचौ किन बाग बारी,
मोहन हौं प्यारी फुरौ मंत्र के विचार मैं ॥३॥

अलंकार माला

॥ सोरठा ॥

मही दीजियै दांन, सु तौ मही दै हैं नृपति ।
बैन सुनौ अब कांन, जाइ बजावहु रास मैं ॥४॥

अथ काक वक्रोक्ति

॥ लाल कौ सवैया ॥

ऊग्यौ जु भान तौ ऊगन दै, अरविंदनि मैं अलिहू सचुपै हैं ।
कुंज गुलावनि के चटकैं, चकई चकवा मन मोदन मै हैं ॥
लेहु भलैं मुष वासर के, रजनी सुष तें सजनी अधिकै हैं ।
ए व्रजचंद सवै व्रज के हितू, आजु गये फिरि काल्हि न ऐहैं ॥५॥

विहारी

[दोहा]

किती न गोकुल कुलबधू, काहि न किहि सिष दीन्ह ।
कौंनें तजी न कुल गली, ह्वै मुरली मुरलीन ।।६।।

तुलसीदास जू

[दोहा]

काहि न पावक जारि सक, कान समुद्र समाहि ।
कान करै अवला प्रवल, किहि जग काल न षाइ ।।७।।

अथ अनुप्रास

बर्ननि की समता, सौं अनुप्रास । सो दु-बिधि—छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास ।

अथ छेकानुप्रास

अनेक वर्णं की समता असंनिधि जामैं, सो छेकानुप्रास । सो दु-बिधि—सुर की समता अरु स्वर की बिषमता ।

अथ स्वर की समता

।। कृष्ण कौ कवित्त ।।

गौनें आई दुलहनि लौनें तनवारी या तें,
जगर मगर होत भवन कौ भाग है ।
विधि नें सुधारि धरी चातुरी की ओप रूप,
आगै रूप रति कौ रती कहू न लाग है ।।

मेरे जानि मुह दिषरावनी कौ नेग जानि,
आपु ही तें सौंपि दीनौं कीनौं अनुराग है ।
सास हू सदन दीन्ह प्यारेलाल मन दीन्ह,
औरै प्रीति-पन दीन्ह सौतिन सुहाग है ।।८।।

कुलपति

[कवित्त]

मौंहिनी-सी गौहन फिरति रति-सी है कौंन,
मौंन गहि रही मुष बातनि कछूक है ।
जलज-से नैंन बैन कैसी छबि गोरी भोरी,
किधौ ह्वै है अैसी मानौं अमृत के ऊक[ओक]है ।।
बरनी न जाइ रूप-रासि प्रेम की सी फांसि,
जाके गुन गनिवे कौं गिरा भई मूक है ।
अकल बिकल तन बेगि दरसाय मोहि,
प्रान परसायन तौ तेरी बडी चूक है ।।६।।

अथ सुर की विषमता

।। कवित्त ।।

नूतन लसनि बनी अंगनि की नीकी बाकी,
छकी बंक भौंहैं दिना द्वै कही तें दरसी ।
सरनि समान चितवनि लौंनी ललनां के,
नैंननि की अनी आनि काननि लौं परसी ।।
उठनि उरोजनि नितंबनि मैं पीनताई,
सहज सुगंध वृंद गंधित अतर-सी ।
अरबिंद इंदिरा तैं चंद्रिका तैं चंद्रहू तैं,
श्री गुबिंद सुंदरी की सुंदरता सरसी ।।१०।।

अथ वृत्यानुप्रास

एक बर्ण की अथवा अनेक बर्ण की संमती संनिधि होइ जामैं, सो वृत्यानुप्रास ।

कुलपति

।। सवैया ।।

चंद-सो आनन चाह सौं चूमैं, चलै चप चारुनि चौंप चपाई ।
हार हिये बघना कठुला पहुची, पहरी सु महा छबि छाई ।।
तोरि तिलूका दिठौंना बनाय कें, प्यार सौं वारति लौन रु राई ।
गोद सौं गोद हसें भरि मोद विनोद सौं देषि री लाल कन्हाई ।।११।।

।। काहू कौ कवित्त[1] ।।

चेतन मैं वसि कें निकेतनि जरावै वाय,
के तन की रीति मीन के तनकहात की ।
सून केसरनि सौं असून असरन करें,
षूंन बितरन कौं अनाथ अवलात की ।।
रितु अनुकूली के बियोग जर धूली ह्वै है,
भूली सुधि शूली के बिजैत्री नैंन पात की ।
को करै प्रतीति बात और की अनंग पीर,
तात की न जानी रे वधू के बध पात की ।।१२।।

देव

[कवित्त]

ष्याल ही की षोल मैं अषिल ष्याल षेलि षेलि,
गाफिल ह्वै भूल्यौ दुष दोष की पुस्याली तैं ।
लाष लाष भांति अभिलाष लषे षोटे अरु,
अलष लष्यौ न लषी लालनि की लाली तैं ।।
पुलकि पुलकि देव प्रभु सौं न पाली प्रीति,
दै दै कर ताली न रिझायौ बनमाली तैं ।

---

1. अलवर-प्रति में नहीं मिलता ।

झूठी झलमल की झलक ही मैं झूल्यौ जल,
मल की पषाल षल षाली षाल पाली तैं ।।१३।।

बिहारी[1]

रस सिंगार मंजन कियैं कंजनि भंजन दैंन । इत्यादि ।

[दोहा]

नभ लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन ।
रति पाली आली अनत, आये बन–मालीन ।।१४।।

जम करि मुह तरि परचौ, यह धरि हरि चित लाइ ।
बिषै तृषा परि हरि अजौं, नरहरि के गुन गाइ ।।१५।।

।। सवैया ।।

कोमल है कल है कमला ज्यौं, कियें कर कंज मैं कंज कली कौं ।
भाषै को भायनि भूरि भरी कौं सु, भूषन भेद कौं भांति भली कौं ।।
छाक छकी छबि सौं छलकैं छलै, छैल छबीले गुबिंद छली कौं ।
आवति है अलबेली अली लै, अलीनि कौं और चली अवली कौं ।।१६।।

।। कवित्त ।।

अतर अन्हाय अंग अंग आछे आभूषन,
अंबर अमल आभा है अनेक इंदु-सी ।
आस पास अली अलि अवली है श्री गुबिंद,
अंगना अनंग की तैं अधिक अमंद-सी ।।१७।।[2]
इत्यादि

1. अलवर वाली प्रति में 'रस सिंगार मंजन कियैं' के बाद ही इत्यादि लिखा है और आगे के दोनों दोहे भी नहीं हैं—
नभ लाली·········तथा जमकरि·········।
वहां तो रससिंगार के उपरान्त अगला सवैया ही लिखा मिलता है ।
2. अलवर-प्रति में इस कवित्त का केवल एक ही चरण है।

अरु तीन वृत्ति अनुप्रास ही तें होति हैं सो गुन-निरूपण मैं कहि आये ।

अथ लाटानुप्रास

भाव भेद तें शब्दार्थ फिरि आवै, सो लाटानुप्रास ।

कुलपति

॥ कवित्त ॥

बोलत मधुर होन सुजस मधुर यह,
नीकौ जानि नीकौ मन मोद ही सौं भरियै ।
करियै तौ डरियै न करियै तौ डरियै जू,
सब ही भलाई जौ भलाई उर ढरियै ॥
जैसें सीत भान भान प्रभा प्रभा प्रभाकर,
त्यौं ही जांन जांन पन्यौं फल यहै जिय धरियै ।
कीजै नित नेह नंद नंदनि के पायनि सौं,
पायनि सौं तीरथ के पंथ अनुसरियें ॥१८॥

मुकंद

॥ दोहा ॥

जिन सौं मित मिले नही, तिन्है बजार उजारि ।
जिन सौं मित मिले नही, तिन्हैं बजार उजारि ॥१९॥

सोमनाथ

[दोहा]

रन मैं जे हारत नही, पैंने जिनके बांन ।
रन मैं जे हारत नही, पैंने जिन के बांन ॥२०॥

भाषा भूषण

[दोहा]

पिया निकट जाकैं नही, घाम चांदिनी ताहि ।
पिया निकट जाकैं नही, घांम चांदिनी ताहि ।।२१।।

अथ जमक

शब्द कौ फिरि श्रवण अरु अर्थ दूसरौ होइ, सो जमक ।

भा०

सीतल चंदन चंदनहि वडवानल ही जोइ ।।२२।।

।। कवित्त ।।

संष सषी तेरैं वादरी मैं वादरी मैं कालिह,
कोही पिक बनी बैंनी कारी ही ।
मुष चंद्रमानिनी कौ चंद्रमाननी कौ अैसौ,
कहत गुबिंद चंद्रमानि तैं उज्यारी ही ।।
कोटि उरबसी वारौं और उरबसी नाहि,
उही उरवसी उरबसी उरधारी ही ।
बिन कजरारी कजरारी आंषैं बेसरि ही,
बेसरि सँवारी ही सुवेसरि सवारि ही ।।२३।।

भूषण

[कवित्त]

जेते मन मानि कहैं तेते मन मानि कहैं,
धरा मैं धरायें धरा धूरि ही मिलाइवी ।

देह देह देह फेरि पाइ है न ऐसी देह,
कौंन जानै कौंन देह कौंनि जौं न जायवी ।।
भूष एक राषि भूष राषैं जिन भूषन की,
भूषन की भूषन तैं भूषन बिलाइबी ।
गगन के जम गन गनन न दैहैं यातैं,
नगन चलैंगे साथ नगन चलाइबी ।।२४।।

केसव

[कवित्त]

हरिंत हरित हार हेरत हियौ हरत,
हारी हौं हरिन नैंनी हरिन कहूं लहौं ।
बनमाली ब्रज पर बरषत बनमाली,
दूरि दुष केसव कैसैं सहौं ।।(?)
आप घन घनें स्याम घन ही से होत घन,
सामन के द्यौस घनस्याम बिन क्यौं रहौं ।
हृदे मैं कमल नैंन देषि कैं कमल नैंन,
हौंहुगी कमल नैंन औरहूं कहा कहौं ।।२५।।

[दोहा]

श्री कंठ उर बासुकि लसत, सर्व मंगलामार ।
श्री कंठ उर बासुकी लसत, सर्बं मंगलामार ।।२६।।[1]

।। सवैया ।।

दूषन दूषन के जस भूषन भूषन अंगनि केसव सोहैं ।
ज्ञान सँपूरन पूरन के परिपूरन भावनि पूरन जोहैं ।।
श्री परमानंद की परमा परमानंद की परमा कहि कोहै ।
पातुर-सी तुरसी जिन कैं अब दातुर-सी तुरसी पति मोहै ।।२७।।

---

1. अलवर-प्रति में यह दोहा इस स्थान पर नहीं है—'सवैया' के बाद है ।

बिहारी

[दोहा]

केसरि केसरि करि सकैं, चंपक कितिक अनूप ।
गात रूप लषि जात दुरि, जात रूप कौ रूप ।।२८।।

आज सरबरी सरबरी, सरब सरब सरचंद ।
मानि अधमरे अधमरे, मतिर मतिर मतिमंद ।।२९।।

।। लाल कौ कवित्त ।।

मेह बरसानें तेरे नेह बरषानें देषि,
एह बरसानें बर मुरली बजावैंगे ।[1]
साजि लाल सारी लाल करैं लाल सारी देषिवे,
की लाल सारी लाल देषैं सुष पावैंगे ।।
तूही उरबसी उरबसी नहि आन तिय,
कोटि उरबसी तजि तो सौं चित्त लावैंगे ।
सेज बनवारी बनवारी तन आभूषन,
गोरे तनवारी बनवारी आज आवैंगे ।।३०।।

अथ श्लेष

एक शब्द मैं अनेक अर्थ होंइ, सो शब्द श्लेष ।

मुकंद

स्यांमा सेवत मधु सहित, ताकी ताप नसाइ ।[2]

---

1. अलवर प्रति में 'इत्यादि' ही लिख दिया गया है ।
2. अलवर-प्रति में 'ताकी ताप नसाइ' के स्थान पर 'ताके नसैं विकार' लिखा गया है ।

।। सवैया ।।

बतियां मन मोहनी मोहै गुबिंद भली विधि नेह नवीन सनी ।
अवनी की सवै अँगना मै यहै उजियारी जगामग जोति घनी ।।
बर अंवर मैं सु प्रकासित है सुषमा कबि कौंन पें जाति भनी ।
कमनी नव बाल बनी सजनी किधौं दीप की माल रसाल बनी ।।३१।।

केसव

[सवैया]

लोग लगे सगरे अपमारग बात भली बुरी जानि न जाई ।
चंचल हस्तिनि कौं सुषदा अचला चित पद्मनि कौं दुषदाई ।।
हंस कला निधि सूर प्रभा हरषंड सिषंडिनु की अधिकाई ।
केसव पावस मास किधौं अबिबेक महीपति की ठकुराई ।।३२।।

।। कवित्त ।।

केसौदास है उदास कर कमला कर सौं,
सोषक प्रदोष ताप तमोगुन तारिये ।
अमृत असेष के बिसेष भाव बरसत,
कोकनद मोद चंड षंड न विचारिये ।।
परम पुरुष पद बिमुष पुरुष परुष,
सुमुष सुषद बिदुष न उर धारियै ।
हरि हैरि हिय मैं न हरन हरिन नेंनी,
चंद्र-मुषी चंद्रमा न नारद निहारियै ।।३३।।

विहारी

[दोहा]

नांक बास बेसरि लह्यौ, वसि मुक्तनि के संग ।
अजौं तरौ नांहीं रह्यौ, श्रुति सेवत इक अंग ।।३४।।

अथ चित्र

पद्मादिक आकार करि कैं अरु वर्णनि कौं लिषियै, सो चित्र ।

केसव

॥ दोहा ॥

केसव चित्र समुद्र मैं, बूडत परम विचित्र ।
ताके बूंदक केक नहि, बरनत हौं सुनि मित्र ॥३५॥

अध्र ऊरध बिन बिंदु जुत, तजि रस हीन अपार ।
बधिर अंध गन अगन के, गनियत अगन बिचार ॥३६॥

केसव चित्र कवित्त मैं, इतने दोष न देषि ।
अक्षर मोटे पातरे, बवजय एकहि लेषि ॥३७॥

अति रति मति गति एक करि, वहु बिबेक जुत चित्त ।
ज्यौं न होइ क्रम-हीन त्यौं, बनहु चित्र कवित्त ॥

उदाहरन

॥ दोहा ॥

अंग अंग अंग राग जुग, जगमग जगमग जाग ।
रंग रंग रंग राग संग, पग पग द्रग द्रग लाग ॥३८॥

तन तन मन मन प्रान पन, घन घन घन सनमान ।
छिन छिन गुन गन गान बन, बन बन बन तन आन ॥३९॥

ए दोऊ दोहा कमलबंध, कपाटबंध, हारबंध, अश्वगति, सर्प गति, गोमूत्रिका त्रिपदी आदि औरहू अनेक प्रकार लिषियत हैं ।[1]

---

1. अलवर प्रति में 'अथ सवैया लिखकर 'मधि नाना छंद' दिया गया है और श्री राधाकृष्णांयनमः लिखकर वह सवैया लिखा गया है जो जोधपुर-प्रति में पत्र सं ३८७ का प्रथम छंद है ।

केसव

।। दोहा ।।

रामदेव नरदेव गति, परसु धरन मद धारि ।
बामदेव गुरुदेव गति, परकु धरन हद धारि ।।४०।।

यह दोहा कपाट बंध, अश्वगति, सर्पगति, त्रिबिधि त्रिपदी लिषियै है ।*

।। धनुसबंध-दोहा ।।

परम धरम हरि हेरि ही, केसव सुनौं पुराना ।
मन मन जानै नारदै, जिय जस सुनैं न आंन ।।१।।

केसव

।। कल्पवृक्ष-सवैया ।।

मुष रांम रषैं मन काम सरैं, अति हानि हियें सब आन कहैं ।
सुष काम अरैं तन लाज मरैं, मति जानि लियें तव प्रांन दहैं ।।
दुष बाम बरें गन साज करैं, रति बानि किये जब सान गहैं ।
रुष धाम धरैं धन राज हरैं, गति मानि बियै कब मान रहै ।।१।।

केसव

।। चक्रबंध दोहा ।।

मुरलीधर मुष दरसि मुष, संमुष मुष श्री राम ।
सुनि सारस नैंनि सिषे, जों सुष पूजैं काम ।।१।।

---

* सम्बन्धित चित्र यहां नहीं दिये गये हैं । सम्भव हुवा तो परिशिष्ट में दिये जा सकेंगे ।

केसव

।। सर्वतोभद्र ।।

रामदेव चित्त चाहि । धाम सेव नित ताहि ।
कामदेव मित्त दाहि । काम भेव वित्त पाहि ।।१।।

।। डमरू बंध तथा चौकी बंध ।।

नर सरब श्री सदा तन मन सरस सुरवस करन ।
नरक सव रस सकल सुष दुष ही न जीवन मरन ।।
नर मन बजी नही निरदय सदय मति मन हरन ।
नरहत मति मय जगत किसवदास श्रीवर सरन ।।१।।

चरण गुप्त

।। दोहा ।।

राजत अंग रस बिरस अति, सरस सरस रति भेव ।
पग पग प्रति दुति बढ़ति गति, बयन नयन मति देव ।।१।।
सुबरन बरन सु सुवरननि, रचित रुचिर रुचि लीन ।
तन मन प्रगट नवीन गति, नव रंग राय प्रवीन ।।२।।

इति केसवोक्ति ।

कामधेनु

सीता सी न न सीता सी, ता रमा र रमा रता ।
सीमा कली लीक मासी, नर लीन नर्ला रन ।।

इति केसव ।

।। गतागत ।।

राका राज जरा का रा मा समास समास ।
राधा मीत तमी धारा सी लसी सु सुसील सी ।।१।।

।। पर्वत बंध सवैया ।।

या मय रागे सुतौ हितु चोर टी काम मनोहर है अभया ।
मीत अमीतिनो कौं दुष देत दयाल कहावत ही न दया ।।
सत्य कहौ कहा झूठ मैं पावत देषौ वेई जिनि रेषी कया ।
या मयगे तुम मीत सवै सु सुवेस तमी मतु गेय मया ।।१।।

केसव

।। अथ गतागत सवैया ।।

मास मासोह सजैं बन बीन, नवीन बजै सह सोम समा ।
मार लतानि बनावति सार, रसाति वनावनि ताल रमा ।।
मान वही रहि मोरद मोद, दमोदर मोहि रही वनमा ।
माल वनी वलि केसवदास, सदा बस केलि बनी वलमा ।।

[सवैया]

वीन वजावति रास मैं वाल रसाल है शुद्ध सुधामृत वानी ।
गावति तान तरंग विलास षुस्याल हैं प्रेम पगी सुष सानी ।।
भौंह नचाय नचाय कें मान अनूप है गोंबिद के मद मानी ।
अंग उमंग सुधंग सुजान सुरूप है तो सी तुही ठकुरानी ।।

स.टि. अलवर-प्रति में क्रम कुछ अलग है और ये पृष्ठ अलग दिए जा सकते हैं, परन्तु वस्तुत: सामग्री समान है, क्रम में अंन्तर दृष्टिगोचर होता है ।

अलष तरंग

।। अथ मात्रा रहित कवित्त ।।

कलन परत पल जलज तलप पर,
मलय पवन बस उठत अनल झल ।
कदन करत सर सरस मदन वर,
हृदय हलत भय सम चल दल दल ।।
प्रवल तपन तन मन हर हर रट,
जपत रहत इक रस न लगत पल ।
ललन बदन दरसन रत उमडत,
अलप तरंग सर भरत नयन जल ।।५३।।

केसव

[कवित्त]

जग जगमगत भगत जन रस बस,
भव भय हर कर करत अचर चर ।
कनक बसन तन असन अनल बल,
बट दल बसन असन जल थल कर ।।
अजर अमर अज बरद चरन धर,
परम धरम गज चरन सरन पर ।
अमल कमल बर वदन सदन जस,
हरन मदन मद मदन कदन हर ।।५४।।

।। एकाक्षर दोहा ।।

केकी कूका कोक कौं, का कौं कूकै कोक ।
कोक कूकी कोकी कुकी, कूकें केकी कोक ।।५५।।

।। निरोष्ट कवित्त ।।

लोक लोक लोक लाज लीलत से नंदलाल,
लोचन ललित लोल लीला के निकेत हैं ।
सौंहनि कौं सोच न संकोच काहू लोक हू कौं,
देत सुष सषी ताहि दूनौं दुष देत हैं ।।
केसौराय कान्हर कनेर ही की कौर कसे,
अंग रंगे राते रंग अंत अति सेत हैं ।
देषि देषि हरि की हरनता हरिन नैंनी,
देषौं नांहीं देषत ही हियौ हरि लेत हैं ।।५६।।

अथ पुनरुक्त बेदाभास

मुकंदजू

[दोहा]

भासै पद पुनरुक्त परि, नहि पुनरुक्त बिचार ।
मदन काम मन मथ सषी, करत पंच सर मार ।।५७।।

इति शब्दालंकार ।

अथ अर्थालंकार

उपमान अरु उपमेय ए अलंकार के प्रांन हैं, यातें प्रथम इनहीं कौं कहत हैं ।

अलवर वाली प्रति का लेखन प्रकार—

समाज आज है।भली।मृदंग बीन।बाज ही।अमंद। शुद्ध चंद ।चारु।चांदिनी।छई।छई।
नबीन साज है।अली।महा प्रबीन।साज ही।प्रबंध। बाजुवंद ।हारु।किंकनी।ठई।ठई ।।
सुघंगला समैं। कई ।सुतान मांन। पेषियै ।गुमान।मान छंद।अंग ।माधुरी।मई। मई।
विलास रास मैं। सही ।प्रकासमान। देषियै ।सुजान।श्री गुविंद।संग ।सुंदरी ।नई। नई।

अथ उपमा

उपमेय कौं जहां साधारण धर्म करिकैं अरु उपमान की साद्रस्य कीजै, सो उपमा। जाकी साद्रस्यता दीजै, सो उपमान। जाकौं साद्रस्यता दीजै सो, उपमेय। दोऊ ओर की साद्रस्यता दिषावै, सो वाचक। दोऊन की लक्षमी की जो समानता, सो साधारन ध्ररम। ये चारचौं जहां हौंइ सो पूर्णोपमा। इनमैं तें एक विना द्वै विना तीन बिना हौइ, सो लुप्तोपमा।

अथ पूर्णोपमा

भाषाभूषण

[दोहा]

इहि बिधि सब समता मिलै, उपमा सोही जानि।
ससि सौं उज्जल तिय बदन, पल्लव से मृदु पानि ॥५८॥

अलंकारमाला

[दोहा]

उपमाँ जहँ इक-सी प्रभा, द्व पदारथ की होइ।
प्रभु तव कीरति गंग-सी, बिहरति त्रिपुरनि सोइ ॥५९॥

सोमनाथ

[दोहा]

चाहत सुष संपति सदा, तौ नित प्रति चित लाइ।
ललित नवल नीरज सद्रस, रघुबर चरन मनाइ ॥६०॥

अलंकार करणाभरण

[दोहा]

मुष ससि सौ उज्जल चपल, षंजन-से हैं नैंन ।
सुबरण सौ तिय तन लसै, मधुर सुधा से बैंन ।।६१।

।। कवित्त ।।

मद गजराज कै सी चाल चलै मंद मंद,
पद अरबिंद से सुछंद सुक(कु)मार हैं ।
केहरि की कटि अैसी पीन कटि पीन कुच,
हेम कुंभ से हैं कंठ कंबु सौ सुढ़ार हैं ।।
धनुष-सी बांकी भौंह बनी हैं गुबिंद द्रग,
मृग कैसे चल मुष चंद अैसौ चारु है ।
चतुर बिहारी एक प्यारी मैं निहारी जाकैं,
अंगनि की सुषमां की उपमा अपार है ।।६२।।

अथ लुप्तोपमा । धर्म लुप्ता ।

सोमनाथ

।। दोहा ।।

बिहरै पगी उछाह मैं, निज पंछीनिकी छांह ।
धरैं सषी की ग्रीव मैं, हेमलता-सी बांह ।।६३।।

कुलपति

।। सवैया ।।

ध्यान धरौ मन ही मन मैं रुचि सौं, मृदु मूरति कौं अवरेष्यौ ।
व्याकुल ह्वै चहु ओर तकौ उझकौ, बिझुकौ यह कौन सौ लेषौ ।।

मौंहन जू बिन देषें तिहारें उतें, उर आनें वे प्रेम परेषौ ।
ताप तचावत बादि हियौ चलि क्यौं न, पिया ससि सौ मुष देषौ ।।६४।।

अलंकार कर्णाभरण

।। दोहा ।।

पिक बानी-सी लसति है, तो मुष की बतरानि ।
तो गति गजगति-सी अहे, पिय मन कौं सुषदानि ।।६५।।

अथ बाचक लुप्ता

सोमनाथ

।। दोहा ।।

चंद्र बदन की जौंन्ह सौं, छबि की उठति तरंग ।
निरषत ही हरि बस भये, बिद्रुम अधर सुरंग ।।६६।।

अलंकार कर्णाभरण

।। दोहा ।।

मुष ससि निर्मल लाल कौं, मेरे नैन चकोर ।
भरे षरे री चाह सौं, लगे रहैं उहि ओर ।।६७।।

अथ उपमान लुप्ता

सोमनाथ

[दोहा]

रची बिरंचि बिचारि कें, सुनिये श्री घनस्यांम ।
राधा-सी सुंदर सुघर, और न ब्रज मैं बाम ।।६८।।

अलंकार करणाभरण

[दोहा]

कोइल-सी बांनी मधुर, तो मुष सौं सुनि बाल ।
होइ रहे मो हित अहे, अलि नंद नंद रसाल ।।६९।।

अथ उपमेय लुप्ता

सोमनाथ

[दोहा]

फैलि रही रति कुंज मैं, चहु दिसि कला तरंग ।
फिरति चंचला-सी चपल, मन मौंहन के संग ।।७०।।

अलंकार करणाभरण

[दोहा]

रति सम सुंदर जाति है, चली डुलावति बांह ।
तन जोबन दुति जगमगै, निरषति छिन छिन छांह ।।७१।।[1]

अथ बाचक धर्म लुप्ता

सोमनाथ

[दोहा]

अतन ताप तन क्यौं तचति, अजहूं सिष उर आंनि ।
चलि व्रजचंद सुजान की, निरषि जौंह्न मुसकानि ।।७२।।

---

1. अलवर-प्रति में अलंकार करणाभरण से पहले तथा सोमनाथ से बाद में उदाहरण दिए गये हैं। जोधपुर-प्रति में यह क्रम उलटा है—पहले सोमनाथ से उदाहरण तदुपरान्त अलंकार करणाभरण से ।

अलंकार करणाभरण

[दोहा]

कमल बदन नंदलाल कौ, अलि अलि मेरे नैंन ।
अनुरागे लागे रहैं, सदा रूप रस लैंन ।।७३।।

अथ बाचक उपमान लुप्ता (अ.क.)

[दोहा]

पट दावैं पाटी गहैं, सोवति तिय पिय संग ।
मृग बिसाल नैंननि लषै, रहै समेटै अंग ।।७४।।

अथ धर्म उपमान लुप्ता (अ.क.)

[दोहा]

चौंचहाट चटकनि कियौ, चौंकि चले हरि जागि ।
मृग से द्रगनि निहारि कैं, बाल रही गल लागि ।।७५।।

।। सोरठा ।।

कहियौ ऊधौ निडर ह्वै, करुणा हियें समोइ ।
ब्रज बनितनि के सांवरे, तुम सम और न कोइ ।।७६।।

अथ धर्म उपमेय लुप्ता (अ.क.)

[दोहा]

मुरली सुंदर स्यांम की, बजी सरस रस भोइ ।
ताकी धुनि श्रवननि सुनत, रही मृगी-सी होइ ।।७७।।

॥ सोरठा ॥

घूंघट कौ पट टारि कें, चितई नेह निवाहि ।
मगन भयौ मन मुदित उह, सरद चंद सम चाहि ॥७८॥

अथ उपमान उपमेय लुप्ता (अ.क.)

[दोहा]

आये झूंमत झुकत से, चित्रित बनें बिसाल ।
मतवारे से रहन कौं, चहियत ठौर रसाल ॥७९॥

अथ बाचक धर्म उपमान लुप्ता (अ. क.)

[दोहा]

रही मौंन ह्वै कें कहा, वैठी भौह चढाइ ।
श्रवननि कौं सुष दै प्रिया, कोइल बचन सुनाइ ॥८०॥

सोम०[नाथ]

[दोहा]

बिलसति साथ सषीनि के, पिक-बैंनी हि निहारि ।
निपट चकित चित्त ह्वै रहे, मौंहन सुमति बिसारि ॥८१॥

कुलपति

॥ कवित्त ॥

तेरी सुनि बानी मौंन गहति भवानी देषें,
नैंननि कौ पानी रति रानी वारि नाषिये ।

भौंहनि बिलास मंद हास अंग के सुबास,
रूप के उजास मुष नीकौ देव साषियै ।।
प्राननि के आंन अवली जै न निदान प्यारी,
नैंक मुसकाय प्रेम पागे बेंन भाषियै ।
सोभा सुष दैंनी पाय धारि गज गैंनी इत,
देषि मृग-नैंनी मोत लाय उर राषियै ।।८२।।

सर्व लुप्तोपमा

।। कवित्त ।।

चंद सौ वदन हास चंद्रिका प्रकास है,
सुछंद अरबिंद–सी सुगंध अभिरामिनी ।
कल कमला-सी कोक काव्यनि की कारिका-सी,
हेम तनतासी कोऊ काम की न कामनी ।।
रसिक गुबिंद स्यांम सुंदर सुजान कान्ह,
देषियै तिहारी आन देह धरैं दामिनी ।
मनहरि-लैंनी सुष-दैनी रस-बरसैंनी,
प्यारी पिक-बैंनी मृग-नैंनी गज-गामिनी ।।८३।।[1]

अथ मालोपमा

कुलपति

[दोहा]

कहै एक उपमेय कौ, बहुत भांति उपमान ।
सो द्वै-बिधि मालोपमा, धरम भेदि तैं जानि ।।

---

1. अलवर'प्रति में सर्वलुप्तोपमा का उदाहरण यह कवित्त नहीं मिलता ।

।। सवैया ।।

सोच तें रूप कुमंत्र तें भूपति साह बिताय गयें घर दाम ज्यौं ।
नेह घटें जिमि जोति दिया ससि की दुति देषत ही रबि धाम ज्यौं ।।
लोभ तें धर्म वडाई अनीति तें जैसें सनेह बिदेस बिराम ज्यौं ।
नेंक वियोग ही तें मुष प्यारो कौ छीन ह्वै जात है सांझ के घाम ज्यौं ।।८४।।

'इहां छीन ह्वै जात है' यह साधारन धरम कहि कह्यौ ।

अथ द्वुतीय भेद

कुलपति

।। कवित्त ।।

सरद की जौंन्ह सम सीतल करति नैंन,
बांसुरी की धुनि सम चित्त कौं हरति है ।
कमला ज्यौं पूरति मनोरथनि नीकें रितु,
पावस ज्यौं बसुधा कौं रसीली करति है ।।
दामिनी-सी घनस्यांम तन मैं लसति सुधा,
मूरति ज्यौं नष सिष माधुरी धरति है ।
फूलि रितुराज कै सी वेली अभिराम बांम,
देषौ जाय स्यांम देपिवे की जौ पें रति है ।।८५।।

इहां न्यारे न्यारे साधारन धरम कहे ।

अथ रसनोपमा

उत्तरोत्तर उपमेय कौं उपमांन अरु उपमान कौं उपमेय कीजैं, सो रसनोपमा ।

कुलपति

॥ सवैया ॥

मोहन के अभिलाष-सी बैस औ बैस समान सुरूप गन्यौं हैं ।
रूप समान लुनाई विराजै लुनाई समान सुजान पन्यौं हैं ॥
जैसी सुजानता तैसौ बिचारि कैं कान्ह कुमार सौं नेह सन्यौ हैं ।
नेह समान लहे सुष साज सु राधे कौ जीवन धन्य गन्यौं हैं ॥८६॥

इहां उत्तरोत्तर उपमेय कौं उपमान कियौ ।[1]

अथ एक देस वर्त्तिनी उपमा

मुष्य उपमांन अरु अंग ए कछु सब्द तें कछु अर्थ तें जहां पाइयें, सो एक देस वर्त्तिनी उपमा ।

कुलपति

॥ सवैया ॥

भट सेवत भूप भयंकर रूप वनें तिन ग्राह समान चहै ।
कवि कुंज तहां रतनावलि-सी निसि बासर पास लगे ही रहैं ॥

---

1. अलवर-प्रति में इस स्पष्टीकरण के उपरान्त 'काहू को कवित्त' और है—

कैसौरी सुधासर में फूल्यो है कमल नील,
तैसौ पंक वदन मयंक ही कौ हेरौ है ।
कैसौ पंक बदन मयंक ही कौ हेरौ आली,
जैसौ अलि कवल में गहत बसेरौ है ॥
कैसो नलि कमल मैं गहत वसेरौ आली,
जैसौ मैंन मुकर मैं मोर छाक रेरौ है ।
कैसौ मैंन मुकुर में मोर छाक रेरौ मालो,
जैसौ री कपोल पै अमोल तिल तेरौ है ।

इहां उत्तरोत्तर उपमान कौं उपमेय किये ।

विष के हथियार लषैं अरि भार गहैं कर वार न भाज तहैं ।
कवितामृत को जस चंदहू को जग कारन राम नरेंद्र कहैं ।।८८।।

इहां राजा सौं अरु समुद्र सौं उपमान अर्थं तें पाइयत है अरु अंगनि की उपमा सब्द तें पाइयत है तातें एक देस मैं बिसेष कहत हैं, यातैं एक देस वर्त्तिनि कहावै ।

पुनः

॥ कवित्त ॥

भामिनीनि की है दुति दामिनी ज्यौं श्री गुविंद,
घन जैसें घनस्यांम सुंदर सुजान की ।
चारु पिचकारिनु की धारनि के धारा धर,
धुरवा की धूकनि धुकार डफ मांन की ।।
अबिर गुलालनि की सघन घटा री भारी,
चोआ की चहलगारी कूक मुरवांनि की ।
षेलै मन मौंहन सौं होरी रंग वोरी आज,
गोरी भोरी नवल किसोरी वृषभांन की ।।८९।।

इहां होरी के षेल सौं अरु बर्षा रितु सौं उपमान अर्थं तें पाइयत है अरु अंगनि की उपमा सब्द तें पाइयत है ।

अथ अनन्वय

उपमेय ही उपमांन जहां होइ, सो अनन्वय ।

मुकंद

रूप जुवन गुन रस भरी, तोसी तुही न आंन ।।९०।।

भा०

तेरे मुष की जोर कौं, तेरौ ही मुष आहि ।।९१।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

नष-सिष लौं निरषि सबै, ब्रज तिय भलैं सिंगारि ।
पैं तो-सी सुंदरि तुही, श्री वृषभान कुमारि ॥९२॥

अ०क०

[दोहा]

यह जोरी-सी है यही, जोरि परम रसाल ।
अैसी सुंदरि है यही, तुम से तुम ही लाल ॥९३॥

केसव

॥ कवि०[त्त] ॥

एक कहै अमल कमल मुष राधे जू कौ,
एक कहै चंद महा आनद कौ कंदरी ।
होइ जौ कमल तौ पैं रैंनि मैं सकुचि रहै,
चंद दुति बासर मैं होति अति मंदरी ।
रैंनि मैं कमल अरु चंद दुति बासर हू,
रैंनि अरु बासर बिराजै जग-वंदरी ।
देष्यौ मुष भावत न भावत कमल चंद,
यातैं मुष मुष ही है कमल न चंदरी ॥९४॥

अथ उपमानोपमेय

परसपर उपमा लागै, सो उपमानोपमेय ।

मुकंद

तिय तव मुष ससि सौ लसै, ससि तव मुष सौं मांनि ॥९५॥

भा०

षंजन हैं तव नैंन से, तव द्रग षंजन सेय ।।९६।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

रहित डह डही रैंनि दिन, फूल फलनि कौं झेलि ।
तिय तुव चंपक-बेलि-सी, तो-सी चंपक वेलि ।।९७।।

अ०क०

तू रंभा-सी रूप मैं, तो-सी रंभा नारि ।।९८।।

।। कवित्त ।।

सोभित पदम जैसे पद पदमिनि तेरे,
पद तैसैं पदम प्रसिद्ध पहिचानियें ।
सरद कौ चंद सौ प्रकासमांन मुष अरु,
मुष के समान चारु चंद अनुमांनियें ।।
धनुष-सी भौंह बांकी भौंह से धनुष मांहि,
रूप की निकाई श्री गुबिंद सुष दानियैं ।
मैंन कैसै पैंने सर नैंन न बनैं आली,
तेरे नैंन अैसे पैंने सर मैंन के बषानियैं ।।९९।।

अथ पंच प्रतीप

उपमेय कौं उपमांन कीजै सो प्रथम । उपमांन तैं उपमेय कौ आदर जहां नही होइ सो दुतिय । उपमान जब उपमेय तैं अनादर पावै सो तृतीय । उपमेय की समता लायक उपमांन जब नही होइ सो चतुर्थ । उपमेय के आगैं उपमान जब व्यर्थ होइ सो पंचम ।

अथ प्रथम प्रतीप(भा०)

लोयन से अंबुज बनें, मुष सौं चंद बषांनि ।।१००।।

सौ० [मनाथ]

[दोहा]

देति मुकति सुंदर हरषि, सुनि रघुबीर उदार ।
है तेरी तरवारि-सी, कालिंदी की धार ।।१०१।।

अ०क०

[दोहा]

मोहि देत आनंद हौ, वा मुष सौ यह चंद ।
लीनौं आनि छिपाय कें, बैरी बादर वृंद ।।१०२।।

[सवैया]

कंजनि मैं तव नैंननि की दुति सो जल पुंजनि दीनें बुडाई ।
तो मुष की छबि चंद मैं ताहि गुबिंद की सौं घन लीनौं छिपाई ।।
तो गति-सी गति हंसनि की सु गये गिरि कंदिर मैं अकुलाई ।
तेरे सद्रस्य बिनोद हौ सीत सु देषि सक्यौ न दई दुषदाई ।।१०३।।[1]

अथ दुती[य] प्रतीप(भा०)

गरब करति मुष कौ कहा, चंदहि नीकै जोइ ।।१०३।।

---

1. अलवर-प्रति में यह सवैया नहीं मिलता ।

अ०क०

[दोहा]

गरब करति गति कौ चलति, गज-गति नीकै देषि ।
कहा करै तन दुति गरब, सुबरण दुति अवरेषि ॥१०४॥

सोमना०[थ]

[दोहा]

बचन मधुर धुनि कौ कहा, रही गरूर बढ़ाय ।
नै सुकि निज अंगुरीनि तें, सुनिये वीन बजाय ॥१०५॥

अथ तृतीय प्रतीप(भा०)

तीछन नैंन कटाछि तें, मंद कान के बांन ॥१०६॥

अ०क०

[दोहा]

कोइल अपनें वचन कौ, काहे करति गुमान ।
मधुर बचन बनितान के, तो तें अधिके जानि ॥१०७॥

सो०[मनाथ]

[दोहा[

क्यौं साजति है नवल तिय, मनि आभरन अमंद ।
तेरे तन की दमक तें, दामिन दीपति मंद ॥१०८॥

॥ कवित्त ॥

करि कैं सिंगार रति मंदिर पधारति हो,
अँगनि तैं महकै सुगंध गति न्यारी कौ ।
लहकारे बारनि के भार लचकति लंक,
कुच उचकति चकाचक बंसबारी कौ ॥
षंजन तैं सरस छबीले द्रग सोमनाथ,
रंचक निहारि मन हरचौ गिरधारी कौ ।
मंद मंद गवन गयंदहि गरद करैं,
रद करै चंदहि अमंद मुष प्यारी कौ ॥१०९॥

मुकंद

[दोहा]

गरब वडाई कौ कहा, हालाहल कहु टेरि ।
तो तैं दुरजन बचन अति, मारत लगत न वेर ॥११०॥

सुधा मधुरता कौ कहा, रह्यौ गरूर वढ़ाय ।
मधुर बचन कबिजननि के, तोहू तैं अधिकाय ॥१११॥

अथ चतुर्थ प्रतीप[भा०]

अति उत्तम द्रग मीन से, कहे कौंन बिधि जांहि ॥११२॥

अ०क०

[दोहा]

हरि मुष सुंदर अति अमल, ससि सम कह्यौ न जाय ।
डर चचाव लषत न बनत, कहा कीजियै हाय ॥११३॥

सोमनाथ

[दोहा]

जे जग मैं पंडित सुकबि, क्यौ कहि सकै बिचारि ।
अति उदार श्रीराम सौं, सुरतरु की उनहारि ।।११४।।

तुलसीदासजू

[दोहा]

कोक सोक प्रद बंधु त्रिष, दिन मलीन सकलंक ।
सिय सुष समता पाव किम, चंद बापुरौ रंक ।।११५।।

[कवित्त]

सुभग सिंगार अंग अंग सुकुमार चारु,
सरस उमंग सौं तरंग लेति तान की ।
अैसी छबि सिवा की न सची की न सारदा की,
रंभा रमा रति की न आंन उपमान की ।।
वृंदावन रानी सुषदानी जग जानि जिय,
जीवनि गुबिंद स्यांम सुंदर सुजान की ।
थोरी वै अनूप रंग रस बोरी अैसी गोरी,
भोरी नवल किसोरी वृषभान की ।।११६।।

कबिनाथ

[कवित्त]

तेरौ मुष रचि कें निकाई को निकेत राधे,
चारु मुष चंदन रच्यौ है और तेरौ सौ ।

छबिन कौ घेरौ सौ सुहाग कौ उजेरौ सब,
सौतिनि की आंषिन मैं पारत अँधेरौ सौ ॥
कान्ह की सौं कविनाथ के तौ पचि रह्यौ जाकी,
उपमान बनी हेरि हारचौ मन मेरौ सौ ।
जाकी सम काहि री बताऊं कहि का कौं जाकौ,
चाकर सौ चंद अरबिंद लागै चेरौ सौ ॥११७॥

सोभ

[कवित्त]

ऊभी-सी रहित अरविंदनि की आभा मह-
-बूबी मृग छौंननि की छाम करियति है ।
वूडी जल जोरनि मैं मीन बराजोरी सोभ,
भौंर मगरूवी बदनाम करियति है ॥
दूबी बन बीथिनु चकोर चारुताई मन-
-सूबी तुरगनि की तमाम करियति है ।
देषि देषि तेरी अषियानि की अजूबी प्यारी,
षूबी षंजरटनि की षाम करियति है ॥११८॥

अथ पंच प्रतीप(भा०)

द्रग आगैं मृग कछुन ये, पंच प्रतीप प्रकार ॥११९॥

सोमनाथ

[दोहा]

तिय तो मुष ही सौं सदा, रहै उजास अमंद ।
कहियै कहा बिरंचि सौं, वृथा रच्यौ है चंद ॥१२०॥

अ०क०

[दोहा]

प्यारी देषैं तो द्रगनि, मृग के द्रग कछु नांहि ।
त्यौं ही षंजन मीन हूं, कमल कछू न लषांहि ।।१२१।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

हरिन निहारि जकि रहे मन मारि वारि,
चर वारिज की वानिक बिकाती हैं ।
हांति जानि छाती छिन छिन मुरझाती षरी,
धीर मन रंजन जे षंजन जमाती हैं ।।
दीवें कौं द्रगनि की समान उपमान आंन,
एते पैं कबिनु की उकति अधिकाती हैं ।
प्यारी के अनौषे अनियारे इछिन छ्वै छ्वै,
तीछन कटाछिनि सौं कटि कटि जाती हैं ।।१२२।।

[कवित्त]

सहज सुबास अलि आस पास भ्रू बिलास,
मंदता सु जासु देषि पूजी मन साधिका ।
ऐसी छबि सिवा मैं न सची मैं न सारदा मैं,
रंभा रमा रति मैं रती कहू न आधिका ।।
जाकें नित नेति नेति निगम अगम गावैं,
ध्यावै तई पावैं सुभ संपति अगाधिका ।
नील-पट धारिनि सुजस बिसतारिनि,
गुबिंद सुष कारिनि बिहारिनि श्रीराधिका ।।१२३।।

अथ रूपक

उपमान कौ अरु उपमेय को एक रूप करि दिषावैं, सो रूपक । सो दु-बिधि—तद्रूप, अभेद । दोऊन के तीन तीन भेद हैं—१. अधिक, २. नून, ३. सम ।

अथ अधिक तद्रूप रूपक (भा०)

मुष ससि वा ससि तें अधिक, उदित जोति दिन राति ।।१२४।।

अ०क०

[दोहा]

अधिक कम[ल] तै मुष कमल, अमल सुबास निवास ।
रहत सदा प्रफुलित करत, हरि द्रग अलिन हुलास ।।१२५।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

बिषधर नागिनि तें सरस, तिय-लट नागनि स्यांम ।
निरषत ही आवत लहरि, बिसरि जात धन धाम ।।१२६।।

राजा छत्रसिंघ

।। सवैया ।।

वाकौ प्रकास रहै रजनी यह तौ दिन राति प्रकासहि बाहै ।
वामैं कला षट औ दस या मधि चौसठि है नित राजत भाहै ।।
बाही कलंकी कहैं सिगरे यह देषत कोटि कलंकनि दाहै ।
वा सम मूढ़ न और कोऊ तजि कें व्रजचंद जो चंदहि चाहै ।।१२७।।

अथ नून तद्रूप रूपक

सागर तें उपजी न यह, कमला अपर सुहाति ।।१२८।।

अथ कर

[दोहा]

कैसे आवत हैं चलें, लषि आली घनस्यांम ।
कुसुम सरासन पैं न कर, अपर काम अभिराम ।।१२९।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

मौंहन यह सब बिधि लसै, पैं न गृहनि कौ ईस ।
सीसफूल दिन करन यौ, लष्यौ तरुनि के सीस ।।१३०।।

अथ सम तद्रूप रूपक (भा०)

नैंन कमल यह अैंन हैं, और कमल किहि काम ।।१३१।।

अ०क०

[दोहा]

गये दूरि दुष अति लह्यौ, चित चकोर आनंद ।
नैंन कुमुद प्रफुलित भये, निरषत तो मुषचंद ।।१३२।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

मन भाये फल देत नित, सुनि मौंहन रस दानि ।
साँचे भुज तव काम तरु, सुर तरु और कथानि ।।१३३।।

श्री भट्ट देवजू

दूसरी कोकिला मधुर सुर बोलै ।।१३४।।

देव

।। कवित्त[1] ।।

वरुनी बघंवर हैं गूदरी पालक दोऊ,
को ये रति बस नभ गौहैं भेष षरियां ।
वूडै जल ही मैं दिन जामिनि हूं जागैं भौंहैं,
धूम सिर छाये बिरहानल त्रिलषियां ।।
असुआ फटिक माल लाल लाल डोरे से ली,
सजि भई हैं अकेली तजि चेली संग सषियां ।
दीजिये दरस देव कीजिये सजोगिन यौं,
जोगिन ह्वै वैठी हैं बियोगिनि की अषियां ।।१३४।।

अथ अधिक अभेद रूपक(भा०)

गवन करति नीकी लगति, कनक लता यह बांम ।।१३५।।

अ०क०

[दोहा]

अरुण बरण तेरे अधर, बिद्रुमहीं दरसाइ ।
अधिक मधुर रस पाय कैं, प्रीतम रह्यौ लुभाई ।।१३६।।

---

1. अलवर-प्रति में देव का कवित्त नहीं है, किन्तु इसके स्थान पर जो आगे चल कर जोधपुर-प्रति में क्रमांक १४६ पर दिया गया का० कवित्त' है ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

व्रज मैं बिहरै छहूं रितु, पुजवत सब के काम ।
नेह-धार बरषत सदा, मन मौंहन घनस्यांम ।।१३७।।

केसव

।। कवित्त ।।

सोभा सरवर मांझ फूल्यौंई रहत सदा,
राजै राजहंस के समीप सुष दानियै ।
केसौदास श्रास पास सौरभ के लोभ घनें,
घ्राननि के देव भौंर भ्रमत बषानिये ।।
होंति जोति दिन दूनी निसि मैं सहस गुनी,
सुरज सुषद चारु चंद सम मानिंयें ।
प्रीति कौ सदन छुइ सकै न मदन अैसौ,
कमल वदन जग जानकी कौ जानियै ।।१३८।।

अथ नून अभेद रूपक(भा०)

अति सोभित विद्रुम अधर, नहि समुद्र उतपन्न ।।१३९।।

अ०क०

[दोहा]

तेरो आनन चंद्रमा, अमल सुधा कौ अैंन ।
चैंन चकोरनि देत नहि, कुमुद फुलावत हैन ।।१४०।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

जगमगात मंदिर सबै, कान्ह निरषिये रंग ।
है सांची तिय दामिनी, पैं न चपलता अंग ।।१४१।।

अथ सम अभेद रूपक (भा०)

तुव मुष पंकज बिमल अति, सरस सुवास प्रसन्न ।।१४२।।

सोम०[नाथ]

[दोहा]

निरषत हीं रंग रीझि कैं, लई रँगीले लाल ।
छिनहूं छुटति न कंठ तें, यह तिय चंपक-माल ।।१४३।।

अ०क०

[दोहा]

तेरे अलक फंदानि मैं, परे क्यौं न उरझाय ।
कर सायल मन लाल कौ, कैसें कें बचि जाय ।।१४४।

।। लाल कौ कवित्त ।।

बैंठ्यौ वन बीथिनु बनाय दरवार नव-
-पल्लव की गिलम गुलाबनि की गद्दी है ।

भौर कीर कोकिल नवीन नव सिधा किये,
और पतझार दफतर कुल रद्दी है ।।
बिरह पुरा पें यह अमल लिषाय लायौ,
हरें हरें चातुरी सौं चापत चौहद्दी है ।
कीनें सरसंत सब संत औ असंत पर,
काम छिति कंत कौ बसंत मुतसद्दी है ।।१४५।।

।। काहू कौ कंवित्त ।।

फूल्यौ मन सुमन अविद्या पतझार भयौ,
सुमति कमलनि की छबि उफनंत हैं ।
कोकिला समान बुद्धि बोलत मधुर बानी,
आनद सरोवर की सोभा सरसंत है ।
सबद अनाद के बाजत अनेक बाजे,
सीतल सुगंध मंद पवन वहंत है ।
सुरति सहेली साथ ज्ञान रँग रँगे गात,
चेतन अषंड आज षेलत वसंत है ।।१४६।।

अथ परिणाम

वर्णनीय उपमान ह्वै कै अनीक्रिया करै, सो परिणाम ।

मा०

लोचन कंज बिसाल तें, देषत देषहु बाम ।।१४७।।

अ०क०

[दोहा]

भुज लतानि सौं लाल कौं, गहि ब्रज बाल रसाल ।
मुदित होइ कर पंकजनि, मुष सौं लाइ गुलाल ।।१४८।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

नये नेह तें द्रगनि सौं, कछुक लाज सरसाति ।
लषि अलि तिय मुष चंद सौं, प्रीतम सौं बतराति ।।१४९।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

तरनि तनूजा तीर बीर वलभद्रजू के,
नीर कै निकट ठाढ़े गायनि के गन मैं ।
चपला से सोहैं पट कोटि काम से प्रगट,
निपट कपट जान्यौं गोपिनु नें मन मैं ।।
मोहिनी के मंत्र केऊ कामरूके जंत्र तंत्र,
तंत्र मै दिषावति हैं एक एक छिन मैं ।
चली है पदंबुज सौं देषें हैं द्रगंबुज सौं,
गहै हैं हृदंबुज सौं अंबुज के बन मैं ।।१५०।।

अथ उल्लेष दु-विधि

एक कौ बहुत जन बहुत रति करि कें समुझैं, सो प्रथम । एक कौं बहुत गुननि सहित बहुत बिधि करि कैं बर्नियें, सो दुतिय ।

अथ प्रथम उल्लेष[भा०]

अर्थिनु सुर तरु तिय मदन, अरि कौं काल प्रतीति ।।१५१।।

अ०क०

[दोहा]

पिय हिय तिय सरसावनौं, तुव मुष सुषमाकंद ।
अमल कमल जान्यौं अलिनु; लष्यौ चकोरनि चंद ।।१५२।।

मतिराम

[दोहा]

जानति सौति अनीति है, जानति सषी सुनीति ।
गुरजन जानैं लाज है, प्रीतम जानैं प्रीति ।।१५३।।

[कवित्त]

मल्ल[1] व्रज जानैं अरुन नर जानैं नरवर,
नारि जानै यही मार मूरति रसाल है ।
गोप जानैं सुजन सु जादौं-कुल देव जांनैं,
असत नृपति जानैं सासता कराल है ।।
अज्ञानी बिराट जानैं जोगी परतत्व जानैं,
रंग भूमि राम कृष्ण गये अैसे हाल है ।
नंद जानैं बालक गुबिंद प्रतिपाल जानैं,
साल सत्रु वंस जानैं कंस जानैं काल है ।१५४।।

गंग

[कवित्त]

पारथ प्रसिद्ध भूप भारत मैं तेरे डर,
भाजे देसपती धुनि सुनि कैं निसान की ।

1. अलवर-प्रति मैं 'मल्ला जानैं वज्र'

गंग कहै ताकी रानी अति सुकुमारि सु तौ,
फिरै बिललानी सुधि भूली षान-पांन की ।।
बन बन गिरि गुहा हाथिनु हरिनु बाघ,
बानर तें रछ्या भई तिन के यौं प्रान की ।
सची जानी गजनि कलानिधि मृगनि जानी,
देवी जानी सिंघनि कपिनु जानी जानकी ।।१५५।।

देव

चामी कर चोर जानी चंपलता भौंर जानी,
चांदिनी चकोर जानी मोर जानी दामिनी ।।१५६।।

अथ दुतिय उल्लेष(भा०)

तू रण अर्जुन तेज रबि, सुर गुरु बचन बिसेषि ।

अ०क०

[दोहा]

सीता सील सुरूप मैं, तू रति की उनहारि ।
बानी है वर वचन मैं, सब बिधि पूरी नारि ।।१५८।।

मुकंद[1]

[दोहा]

सोतिनु कौं है सुरा-सी, सषियनि कौं है ऊष ।
गुरु लोगनि सु मयूष-सी, प्यारे पियहि पियूष ।।१५९।।

1. अलवर-प्रति में मुकंद का यह दोहा नहीं मिलता ।

अथ स्मरण

उपमांन कौं देषि कैं उपमेय की सुधि आवै, सो स्मर्ण ।

सुधि आवति वा बदन की, देषैं सुधा निवास ॥१६०॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

जव तैं अलि सँग हौं गई, षिले कोक नद लैंन ।
तब तैं छिन बिछुरैं नही, ललित लाल के नैंन ॥१६२॥

अ०क०

[दोहा]

उमडि घुमडि आये सघन, सरसावै उर कांम ।
सुधि आवत घनस्यांम की, देषत ए घनस्यांम ॥१६३॥

अथ भ्रम

उपमेय बिषैं उपमान कौ भ्रम होइ, सो भ्रम ।

भा०

वदन सुधा निधि जानि कैं, तुव संग फिरै चकोर ॥१६४॥

अथ क.[रणाभरण]

[दोहा]

वृंदाबन बिहरत फिरत, राधा नंदकिसोर ।
घन दामिन जिय जानि संग, डोलत बोलत मोर ॥१६५॥

सो० [मनाथ]

[दोहा]

बर्नि सकै को लाल अब, वा तरुनी के अंग ।
नैंन तामरस जानि अलि, भ्रम सौं तजैं न संग ।।१६६।।

कासीराम

।। कवित्त ।।

मंदहू चपत इंदु बधू के बरन होत,
प्यारी के चरण नवनीत हू तें नरमैं ।
सहज ललाई बरनी न जाई कासीराम,
चूई-सी परति अति वाकी मति भरमैं ।।
एडी ठकुराइन की नाइन गहति जब,
ईंगुर सौं रंग दौरि आवै दरवर मैं ।
दीनौं है कि दैनौं है निहारैं सोचै वार बार,
बावरी-सी ह्वै रही महावरी लैं कर मैं ।।१६७।।

अथ संदेह

उपमांन को जहां निश्चै नही, सो संदेह ।

भा०

बदन कीधौं यह सीत कर, किधौं कमल भयें भोर ।।१६८।।

।। कवित्त ।।

काजर की कोठरी मैं कचनि की रेष किधौं,
सघन घटा मैं दमकति दुति दामिनी ।
कुहूकी निसा मैं नव दीपनि की माल किधौं,
दिपति रसाल श्री गुबिंद अभिरामिनी ।।

सिंगार की साला मैं मुदित मन मौहिनी कै,
नील कंज की कुटी मैं कमला है कामिनी ।
कैधौं कारी सारी मैं किशोरी गोरी भोरी आज,
भाय भरी आजै भली भांतिन सौं भामिनी ।।१६९।।

कालीदास

[कवित्त]

षरी षंड तीसरैं रँगीली रंग रावटी मैं,
तकि ताके ओर छकि रह्यौ नंद नंद है ।
कालिदास बीचिनु दरीचिनु ह्वै झलकति,
छबि की मरीचिनु की झलक अमंद है ।।
लोग देषि भरमैं कहाधौं इहि घर मैं,
सुरगमग्यौ जगमग्यौ जोतिनु कौ कंद है ।
लालनि की माल है कि ज्वालनिकी झाल है कि,
चामी कर चपला कि रबी है कि चंद है ।।१७०।।

अथ शुद्ध अपह्नुति

आरोप तें धरम दुरै, सो अपह्नुति ।

भा०

उर पर नांहि उरोज ए, कनक-लता फल मांनि ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

बंदन की बैंदी नही, क्यौं अलि करत विचार ।
परगट भयौ सुहाग यह, तिय के ललित लिलार ।।१७१।।

किसोर

।। कवित्त ।।

गाजत न घन ए सघन तन तूर वाजैं,
मोर कीन कूक ए निवाजनि के हेले हैं ।
वक की न पांति ए लसति माल कौडनि की,
जल की न धुंधि ए बिभूतिनि के रेले हैं ।।
फूली नहि सांझ लाल चद्दरी किशोर कहैं,
दौरत न वादर चपल गति चेले हैं ।
सुनि री सलौंनी नारि काहे कौं करति संक,
पावस न भेले ए मंगलनि के मेले हैं ।।१७२।।

अथ हेतु अपह्नुति

वस्तु कौं जुक्ति सो दुराइये सो, हेतु अपह्नुति ।

भा०

तीव्र न चंदन रैंनि रबि, बडवानल ही जोइ ।।१७३।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

नर मैं इतौ न वल अमर, छिति पैं धरैं न पाय ।
गिरि धरिवे कै हेतु यह, सेस अवतरचौ आय ।।१७४।।

अ०क०

[दोहा]

लषि सरवर के सलिल मैं, नीको सौभित होइ ।
कमल न चंचल ससि नही, बिन कलंक मुष जोइ ।।१७५।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

अंक जो ससांक मैं हैं ताही कौं कलंक कहैं,
कोऊक तौ पंक जल-निधि कौं प्रमानैं हैं ।
कोऊ छाया धरिनी कौ कोऊ सुत हरिनी कौ,
कोऊ गुरु घरिनी कौ दाग पहचानैं हैं ।
कोऊ कहै मंदिर की टक्कर लगी है यह,
भोरे भारे लोग जे अयनि ते यौं मानैं हैं ।
हम तौ सलौनौ रूप देषि याकी जननी नैं,
काजर कौ मुष पै दिठौंना दीनौं जानैं हैं ।।१७६।।

अथ पर्यस्थापह्नुति

और के गुन और विषैं आरोपण कीजैं, सो पर्यस्थापह्नुति ।[1]

भा०

होय सुधाधर नाहि यह, बदन सुधाधर आप ।।१७७।।

अ०क०

[दोहा]

नहीं सुधा मैं मधुरई, मधुराई अधरानि ।
मो अधरानि मिलाइ दै, जीव दानि सुपदानि ।।१७८।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

हिये लाल के चुभत ही, बेसुधि किये निदान ।
तीषे मनमथ सरन ही, तिय द्रग तीछन बान ।।१७९।।

1. अलवर-प्रति में + 'और के गुन और विखैं' ।

अथ भ्रांतापह्नुति

बचन तें जब परायौ भ्रम जाइ सो भ्रांतापह्नुति ।

भा०

ताप करति है ज्वर कहा, नां सषि मदन सताय ॥१८०॥

सो० [मनाथ]

[दोहा]

लाल अरुनई द्रगनि क्यौं, कहौ आरसी ताकि ।
होरी आगम जानि कैं, पियौ रामरस छाकि ॥१८१॥

अ०क०

[दोहा]

हियौ सिरायौ अति कहा, चंदन लियौ लगाइ ।
बहुत दिननि मैं भांवतौं, मोहि मिल्यौ अलि आइ ॥१८२॥

विहारी

[दोहा]

लाल कहां लाली लई, लोइन कोइनि मांह ।
बाल तिहारे द्रगनि की, परी द्रगनि पर छांह ॥१८३॥

अथ छेकापह्नुति

जुक्ति करि कें अरु और सौं बात दुराइयै, सो छेकापह्नुति ।

भा०

करत अधर छत पिय सषी, नही सीत रितु बाय ।।१८४।।

अ०क०

[दोहा]

आयें अति सीतल भई, दीनौं ताप निवारि ।
क्यौं सषि प्रीतम के लषें, नां सषि ससिहि निवारि ।।१८५।।

सो०[मनाथ]

।। अरिल्ल ।।

निरषत नैंननि चैंन अधिक उपजावई ।
कर परसे ते अंग मनोज जगावई ।।
तिय यह चरचा करति सुमीत गुबिंद की ।
नां सषि सुंदर बरन सरस अरबिंद की ।।१८६।।

अथ कैतवापह्नुति

एक कौ मिसु करि कैं अरु अन कौ वर्नन कोजै, सो केतवापह्नुति ।

भा०

तीछन तिया कटाछ मिसु, बरषत मनमथ बान ।।१८७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

राषि रही समुझाय पैं, बिसरि गई कुल-कांनि ।
हरि मुरली की टेर मिस, नित बिष बरषत आनि ।।१८८।।

अ०क०

[दोहा]

निकसि तमालनि तैं झमकि, चंचल गति दरसाइ ।
कामिनि के मिस मो निकट, दामिनि ह्वै ह्वै जाइ ।।१८९।।

अथ उत्प्रेक्षा

मुष्य वस्तु मैं आन की संभावना कीजै, सो उत्प्रेक्षा । सो त्रि-बिधि-बस्तु, हेतु, फल ।

अथ वस्तु उत्प्रेक्षा

भा०

नैंन मनौं अर बिलास बिसेष ।।१९०।।

अ०क०

[दोहा]

सोभित सुंदर स्यांम सिर, मुकट मनोहर जोर ।
मनहु नील मनि सैल पर, नांचत राजत मोर ।।१९१।।

होरी षेलत है ससी, दिसिजुवतिनि सौं जोर ।
मांनहु बीर अबीर यह, फैंलि रह्यौ चहुं ओर ।।१९२।।

बिहारी

[दोहा]

सोभित ओढ़ैं पीत पट, स्यांम सलौंनें गात ।
मनहु नील मनि सैल पर, आतप परयौ प्रभात ।।१९३।।

अलंकार माला[1]

तम देषैं संका यहै, भई जु मो मन आइ ।
चकई की बिरहागि कौं, रह्यौ धूम मनु छाइ ।।१९४।।

लीपत सौ तम अँगनि कौं, बरषत अँजन अकास ।।

।। सिरोमनि कौ सवैया ।।

आयौ असाढ़ परी अति गाढ़ पहार-सी रैंनि भई सषि ठाढ़ैं ।
प्रात ही तैं करैं कोकिला कूक सिरोमनि लेति करेजौइ काढ़ैं ।।
कौंन सुनैं अब कासौं कहौं चहु ओर तैं मारति दामिनी काढ़ैं ।
कामिनि के हनिवे कौं मनौ झमकी चमकी जमकी जम दाढ़ैं ।।१९४।।

पुषी

।। कवित्त ।।

सिंघ मरवर की सुधारि सरवर पारि,
फूले तरवर सब बिपिनि सँवारचौ है ।
ठाढ़ो तहां प्यारी संग विहरि बिहारी पुषी,
रैंनि उजियारी इत बदन उज्यारचौ है ।।
कांन तैं तरौंना टूटि परसि पयोधर कौं,
धरनी पर तक नीझरि झनकारचौ है ।
रोस भरि पूरि जिय जानि कैं कलंकी कूर,
मनौं चंद्र चूर चंद्र चूर करि डारचौ है ।।१९५।।

---

1. अलवर-प्रति में इसे अ०क०(अलंकार करणाभरण) से उद्धृत बताया है ।

कालिदास[1]

[कवित्त]

अंधकार धूमधार सम सिर छूटे वार,
बिथुरे बिराजैं रति सेज अंत-पर मैं ।
कालिदास काम रूप स्यांम संग सोई बाम,
काम कामिनी यौं मनौं काम-केलि घर मैं ।।
नवला की नाभि कुहनि दै कान्ह गहै कुच,
सोये जोये ललित अंगूठी सोहै कर मैं ।
मेरे जानि वांबी तैं निकसि कारे नाग फन,
राख्यौ मनि मंडित सुमेर के सिषर मैं ।।१९६।।

अथ हेतु उत्प्रेक्षा

अ०क०

[दोहा]

छैल छवीले रावरे, अधिक रसीले नैंन ।
मानौं मद-माते भये, यातें राते अैंन ।।१९७।।

अ०मा०

भूमि चपत तव पद कमल, भये अरुन इहि लेष ।।१९८।।

।। सवैया ।।

एक बधू बहु भांति बकैं भटकैं घर ही घर दूसरी नारी ।
तीसरें मार कुमार भयौ कहि गोबिंद सो उनमत्त महा री ।।

---

1. अलवर-प्रति में नहीं है ।

सिंधु बसै अहि की सयनी पुनि बांहन भोगिनु ही कौ अहारी ।
आपुनें भौंन के देषि चरित्रनि सूषत दार भयो यौं मुरारी ॥१९९॥

॥ पुषी कौ कवित्त ॥

चौंथि ते चकोर चहु ओर मुष चंद जानि,
रहे डर बसनि दसन दुति संपा के ।
लीलि जाते बर ही विलोकि बैंनि ब्याल गुन,
गुही पैं न होती जौ कुसुम सर पंपा के ॥
कहै कबि पुषी ढ़िग भौंह न धनुष होती,
कीर कैसें छाडिते अधर बिंब झंपा के ।
दाष के से झौंरा झलकति जोति जोबन की,
चाटि जाते भौंरा जौ न होति रंग चंपा के ॥२००॥

अथ फल उत्प्रेक्षा(अ०मा०)

कुच धरिवे कौं वलिनु कटि, वांधी कंचन दाम ॥२०१॥

अ०क०

[दोहा]

तेरे तन के बरन की, सुवरन हौंन समान ।
मानहु परि पावक जरै, बरन्यौं सकल जिहान ॥२०२॥

तेरे सूछम लंक को, लहन एकता काज ।
करत मनौं बनवास है, मृग-नैंनी मृगराज ॥२०३॥

मा०

तुव पद समता कौं कमल, जल सेवत इक पाइ ॥२०४॥

केसव

।। कवित्त ।।

गृहनि मैं कीनौं गेह सुरनि दै राष्यौ देह,
सिव सौं कियौ सनेह जाग्यौ जग चारचौ है ।
जलधि मैं जप्यौ जप तपनि मैं तप्यौ तप,
केसौदास सब पुमास प्रति गारचौ है ।।
उडगन ईस द्विज ईस औषधीस भयौ,
जद्दपि जगत ईस सुधा सौं सुधारचौ है ।
सुनि नंद नंद प्यारी तेरे मुष चंद सम,
चंद पै न भयौ कोटि छंद करि हारचौ है ।।२०५।।

अथ गम्य उत्प्रेक्षा

।। सवैया ।।

वमई नव नाभिहीं तें निकसी इक स्यामल ब्यालि रुमालि सही ।
चित चाय सौं उच्च चढ़ी जुग षंजन नैंननि के भष कौं उमही ।।
मग मैं लषि नासा षगेस बिसेस डरी उर और ही रीति गही ।
कुच ह्वै द्रढ़ सैल की संधि कें मध्य गुबिंद उहै दुरि जाति रही ।।२०६।।

[सवैया]

बिप्र मनोज कौउ कृत है यह दंत अकास बराह कौ भ्राजै ।
सींप उडग्गन मुक्तनि की गजराज अँध्यार कौं अंकुस छाजै ।।
कूंची सिंगार के आगर की है कर्तनिय मान के छेदन काजे ।
बार बधू रजनी कौ नषच्छत चंद्रकला यौं गुबिंद बिराजै ।।२०७।।

---

1. अलवर-प्रति में 'तीनू' कहा गया है। तीनूं=तीनों, किन्तु वहां पहला सवैया है, दूसरा नहीं हैं।

अथ रूपकातिसयोक्ति

उपमान जहां केवल ही होइ, सो रूपकातिसयोक्ति ।

॥ सवैया ॥

चपलता लगे श्रीफल द्वैं नि पैं इक कंबुक सो है सलौंना ।
ता पैं गुविंद खिले इक कंज पैं षेलत षंजन के जुग छौंना ॥
ता पैं सरासन द्वै सर हैं तहां हेम-पटी कौ बिछ्यौ है बिछौंना ।
ता पैं घटा बग पंगति साज लिष्यौ इक अद्‌भुत आज षिलौंना ॥२०८॥

[सवैया]

स्यांम घटा मधि है ससि मंडल तामैं कछू चमकैं चपलारी ।
एक नछत्र सुदर्पन द्वै इक नील सरोज लसैं सुषकारी ॥
द्वै सर दोइ सरासन द्वै रवि द्वै अवलि अलि की अतिकारी ।
त्यौं बनी एक त्रिवैंनी गुबिंद यहै छवि आज अनौषी निहारी[1] ॥२०८॥

भा०

कनक-लता पर चंद्रमा धरैं, धनुष द्वै बान ॥२०६॥

अथ अपह्नुतिसयोक्ति(भा०)

और के गुन और पैं ठहराइये, सो अपह्नुतिसयोक्ति ।

सुधा भरयौ यह बदन तुव, चंद कहै बौराय ।

1. अलवर-प्रति में 'निहारी'- अन्तिम शब्द लिखने से रह गया है ।

अ०क०

[दोहा]

और फलनि-मैं मधुर रस, कहैं चतुर सोहैंन ।
तो नथ के लटकन तरें, बिंब भरे रस अैंन ॥२१०॥

सौ० [मनाथ]

[दोहा]

निस दिन सुष सरस्यौ रहै, राजत गुनी हजूरि ।
बिबुध पाल श्रीराम तुम, इंद्रहि कहैं सु कूर ॥२११॥

केसव

॥ सवैया ॥

है गति मंद मनोहर केसव आनँद कंद हियें उलहे हैं ।
कोमल हासनि नैंन बिलासनि अंग सुबासनि गाढ़े गहे हैं ॥
बंक बिलोकनि कौं अवलोकि सु मार ह्वै नंदकुमार रहे हैं ।
एही तौ काम के बान कहावत फूलनि के बिधि भूलि कहे हैं ॥२१२॥

अथ भेदकातिसयोक्ति

और और ए पद जा मैं होइ, सो भेदकातिसयोक्ति ।

भा०

औरें हसिबौ देषिबौ औरै या की बात ॥२१३॥

अ०क०[1]

[दोहा]

औरै चित बनि चषनि की, औरैं ही मुसकानि ।
औरैं ही तेरी चलनि, औरैं ही बतरानि ।।२१४।।

।। काहू कौ सवैया ।।[2]

जद्दपि है अति ही अति सुंदरि कोटि मनमथ के मन लोभा ।
जो कोउ जान सुजानैं सषी घनस्यांम सनेही के चित्त की चोभा ।।
ज्यौं पुट सौं पट रंग षुलै यौं झिलै अंग अंग अनंद की गोभा ।
लाडिले गोविंदलालजू के ढ़िग आयें लडैंती की और ही सोभा ।।२१५।।

स्वामी हरिदासजू[3]

यह कौंन बात जू अब हीं और अबहीं अवहीं और इत्यादि ।

अथ संबंधातिसयोक्ति

अजोज्ञ कौं जोज्ञ कहिये, सो संबंधातिसयोक्ति ।

मा०

या पुर के मंदिर कहैं, ससि लौं ऊंचे लोग ।।२१६।।

---

1. अलवर-प्रति अ०क० से पूर्व अ०मा० (अलंकार माला) का उदाहरण और है—
औरैं चलति चितौंनि सखि औरै औरैं बानि । (केवल एक ही पंक्ति है)

2. सवैया से पूर्व यह सो० का दोहा अलवर-प्रति में और है—
औरैं गति बिथुरी अलक, औरैं रंग के नैंन ।
तिय हमसौं अऊहू कहत, औरैं विधि के बैंन ।।

3. अलवर-प्रति में नहीं है ।

अ०मा०

परसति या नृप की धुजा, रबिहय के पद चाहि ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

दसरथ राजकुमार सुनि, जैता जालिम जंग ।
ऊंचे लगत सुमेर से, तेरे समद मतंग ।।२१७।।

नंददासजू

धवल नवल ऊंचे अटा, करत घटा सौं बात ।।२१८।।

अथ असंबंधातिसयोक्ति

जोग कौं अजोग कहिये, सो असंबंधातिसयोक्ति ।

भा०

तो कर आगैं कलपतरु, क्यौं पावै सनमान ।।२१९।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

दसरथ राजकुमार सुनि, जालिम तुव तरवारि ।
ता पैं दुवनि बिदारिबौ, तडिता पड़ति बिचारि ।।२२०।।

अ०क०

[दोहा]

पूरत प्रीतम काम जो, उपजत मो मन मांहि ।
ता की सरिबर कलपतरु, कह्यौ जात है नांहि ।।२२१।।

अथ अक्रमातिसयोक्ति

क्रम बिना कारण अरु कारज, एऊ एक संग ही होइ, सो अक्रमातिसयोक्ति ।

भा०

तो सर लागत साथ ही, धनुषहि अरु अरि अंग ।।२२३।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

नष सिष लौं तिय थरहरी, उर मैं सरस्यौ नेह ।
पिय के चाले साथ ही, भई दूवरी देह ।।२२४।।

अथ चपलातिसयोक्ति

कारण के नाम ही तें कारज होइ, सो चपलातिसयोक्ति ।

भा०

कंकन ही भइ मूंदरी, पिया गमन सुनि आज ।

सो०[मनाथ]

नाम सुनत ही नेह कौ, भये चीकने बार ।।२२६।।

अ०क०

[दोहा]

मांगी बिदा बिदेस कौं, पिय साहस उर लोय ।
सुनत बाल की हाल ही, चुरीं चढ़ी भुज जाय ।।२२७।।

मुकंदजू

।। सवैया ।।

देषत फूल भयौ मन लैन भई त्यौं हथेरिनु मांझ ललाई ।
जावक दैंन की बात सुनी तरवानि मैं त्यौं उमगी तरुणाई ।।
चंदन लेपि की यादि कियें तन मैं श्रम सीकर देत दिषाई ।
ग्रैपें मुकंद सुगंध कौ भार सहै लट मैं सु यहै अधिकाई ।।२२८।।

अथ ग्रंत्ततातिसयोक्ति[1]

अगिलौ पिछलौ क्रम जामैं नही, सो ग्रंत्ततातिसयोक्ति ।

भा०

बान न पहुचै अंग लौं, अरि पहलें गिरि जांइ ।।२२९।।

सो[मनाथ]

पीछें पीयौ 'राम रस', चढ़्यौ पहल ही आइ ।।२३०।।

---

1. अलवर-प्रति में स्पष्टतः 'अत्यंतातिसयोक्ति' लिखा है ।

अथ तुल्य योग्यता त्रि-विधि

हित अरु अहित ए दोऊ एक ही शब्द मैं कहिये, सो प्रथम। बहुतनि मैं एक ही बांनि होइ, सो दुतिय। बहुतनि मैं समता गुननि करिकैं जहां होइ, सो तृतीय।

अथ प्रथम तुल्य योग्यता[1]

भा०

गुन निधि नीकैं देत तू, तिय कौं अरि कौं हार ॥२३१॥

अ०मा०

किय तुव सुबस कृपान करि, मित्र सत्रु मतिवान ॥२३२॥

सो० [मनाथ]

[दोहा]

बपत बली श्रीराम कौ, है यह सहज सुभाव।
मित्र अमित्रनि कौं सदा, निरषि देत सिर-पाव ॥२३३॥

---

1. तुल्य योगिता अलंकार को जोधपुर-प्रति में अच्छी तरह समझाया है। पहले तो तीनों को इस प्रकार बताया है—

हित अरु अहित ए दोऊ एक ही शब्द मैं कहियै, सो प्रथम। बहुतनि में एक ही बांनि होइ, सो दुतिय। बहुतनि में समता गुननि करि कैं जहां होइ, सो तृतीय।

फिर अथ प्रथम तुल्य योग्यता कहकर 'भा.' 'अ.मा.', 'अ.क.' आदि कृतियों से उदाहरण दिए गये हैं जैसा यहां स्वीकार किया गया है। अलवर-प्रति में यह सब विस्तार नहीं है।

अ०क०

[दोहा]

तो चतुराई निरषि हौ, रीझि हे मति ग्रैंन ।
भरी लुनाई पिय द्रगनि, अरु सौतिन के नैंन ।।२३४।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

राजनि के राजा महाराजा रघुबीर बीर,
धीरज जिहाज तेरे गुन अवदात हैं ।
तू तौ गुनबंत गुन जानतु है गुनीनि के,
निगुनी गुनी कौं देत बार न सुहात हैं ।।
कीनी बसुधा तें सुभ गुन तें सुधा के सम,
तेरे संग लगै कौंन भूपनिकी ज्ञाति हैं ।
तेरे घर हय हाथी रथ सुष पाल भरे,
यातें तो तें सत्रु मित्र पाय चले जात हैं ।।२३५।।

अथ दुतिय तुल्य योग्यता(भा०)

नवल बधू की बदन दुति, अरु सकुचत अरबिंद ।।२३६।।

[दोहा]

नैंकु न चंचलता लहै, कियैं हजारक छंद ।
दिनकर नंदन की चलनि, अरु मूरष मतिमंद ।।२३६।।

अ०मा०

सकुचनि बिरहनि मुष कमल, एकै गति यह जोइ ।।२३७।।

॥ सवैया ॥

वृक्ष बिहंग तजें फल हीन तजें मृग जोबन दग्ध दिषाई ।
गंध बिना अलि फूल तजें सर सूषे कौं सारस हू तजि जाई ॥
सेवक भूपति भृष्ट तजें बिन द्रव्य तजें नर कौं निकाई ।
या जग मांझ गुबिंद कहैं बिन स्वारथ कौंन की कासौं मिताई ॥२३८॥

अथ तृतीय तुल्य योग्यता(भा०)

तुही सिद्धि तुही धरम निधि, तुही चंद अरबिंद ॥२३९॥

अ०क०

[दोहा]

रमा सची रति उरबसी, रंभा गिरिजा नारि ।
तू ही है अति सुंदरी, श्री वृषभान कुमार(रि) ॥२४०॥

सो०[मन्नाथ]

[दोहा]

निसि बासर नंदलाल सौं, नेंकु न बिछुरति बाल ।
तुही मौंहनी मनि तुही, मुरली तू बनमाल ॥२४१॥

व्यासजू

तू जीवन भूषन धन मेरें, यह व्रत मन प्रतिपारो ॥२४२॥

देव[1]

॥ कवित्त ॥

आदि व्रह्म बिद्या बेद प्रकृति कहत जा सौं,
जोई जोग माया जानि जोगिनु समाधी है ।

1. अलवर-प्रति में नहीं है ।

भैरवी भवानी भवनेश्वरी मतंगी मात,
काली अंनपूरणा कपाली अंग आधी है ।।
एक तें अनेक जानी जल थल मैं समानी,
अगिनत बानी सिद्ध साधकनि साधी है ।
साधारण देवी सो असाधारण रूप धरैं,
बाधा हरिवैं को देव राधा ही अराधी है ।।२४३।।

अथ दीपक

अपनैं अपनैं गुननि सहित वर्ण्य अवर्ण्य कौ एक ही भाव जहां होइ, सो दीपक ।

भा०

गज मद सौं नृप तेज सौं, सोभा लहत बनाय ।।२४४।।

अ०भा०

घन कर दामिनि लसति है, नीलांबर करि बाम ।।२४५।।

अथ क०[रणाभरण]

[दोहा]

सरनि सरोजनि सौं तरुनि, फल फूलनि अधिकाय ।
काजर सौं कामिनि द्रगनि, अति सोभा सरसाय ।।२४६।।

सो०[मनाथ]

सरसौं सिंधु तरंग तैं, चंचल ता तैं नैंन ।।२४७।।

।। कवित्त ।।

मद सौं दुरद अरबिंद सौं सरोबर,
सरबरी अमंद चंद सुंदर कौं छाय कें ।

सुंदरी सुसील तैं तुरंगन तरलता तैं,
मंदिर गुविंद नित्य उत्सव कौं पाय कैं ।।
बानी ब्याकरन तैं मिथुन तैं मराल सभा,
पंडित तैं कुल सतपुत्र उपजाय कैं ।
नीति तैं रजाई राजा तुम तैं अवनि त्यौं हीं,
बिष्णु तैं तिलोकी छबि लहति बनाय कैं ।।२४७।।

अथ दीपकावृत्ति त्रि-बिधि

पद की आवृत्ति जा मैं होइ, सो प्रथम । अर्थ की आवृत्ति होइ, सो दुतिय । पद अरु अर्थ दुहूनि की मिलि कैं आवृत्ति होइ, सो तृतिय ।

अथ प्रथम दीपकावृत्ति (भा०)

घन बरसैं हैं री सषी, निसि बरसैं हैं देषि ।।२४८।।

अ०क०

[दोहा]

सरस कियौ कानन सकल, आवत मनमथ मित्त ।
कुसम सरासन अरु सरस, कियौ कामिनिनु चित्त ।।२४९।।

सो० [मनाथ]

बिरह सताइ देह पिय, अजहूं दरसन देह ।।२५५।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

तेज कौ निवास पुनि तम कौ बिनास जहां,
कौंन देषिवे कौं कर दिया पकरत हैं ।
अैसो स्वर्गवास अपछरा ससि पास सब,
सुष के समाज करि दिया पकरत हैं ।।

बैठक बिमान सुनें किंनर कौ गान जाहि,
मैंनका समान तन भूषत है ।
सुंदर बसन जहां सुधा कौ असन हरें,
मन कौ जातें पीरा भूषन करत है ॥२५६॥

अथ दुतिय दीपकावृत्ति

फूले वृक्ष कदंब के, केतुक बिकसे आइ ।[२५७]

अ०क०

[दोहा]

आवत ही परदेस तें, पिय प्यारौ सुष दैंन ।
लषि हरषे चष सषिनु के, मुदित भये तिय नैंन ॥२५८॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

जनक के बाग षरी राजंति सुहाग भरी,
देषति कुसुम पुंज सवै द्रुम षूले हैं ।
विकसे गुलाब सोन केतूकी औ चंपा षिले,
रायबेलि मलिका सुमन-गन फूले हैं ॥
छोटी बडी लता सो तौं फूल सौं सुपेद भई,
नीर भयौ सेत बिंब नलिन के झूले हैं ।
जहां तहां सुक पिक सारिका के बोल सूधे,
श्रुतिन कौं लागें तैसे पौन अनुकूले हैं ॥२५९॥

अथ तृतीय दीपकावृत्ति(भा०)

मत्त भये हैं मोर अरु चातक मत्त सराहि ॥२६०॥

अ०क०

[दोहा]

दमकन लागी दामिनी, करन लगे घन घोर ।
बोलति माती कोइलैं, बोलत मांते मोर ।।२६१।।

।। काहू कौ सवैया ।।

श्री मनमौंहन राधिका कौं अषरा मथुरा चलिबे के सुनाये ।
बात कहैं मुष सूषि गयौ पुनि अंग सबै बिरहानल छाये ।।
चाहै कह्यौ न कछू कहि आवत घूंघट ओट दै नैंन दुराये ।
जी भरि आयौ हियौ भरि आयौ गरौ भरि आयौ द्रगें भरि आये ।।२६२।।

।। कवित्त ।।

नेह भरी डोलनि सनेह भरी सारी अंग,
आनद उछाह भरी बालम समेति हैं ।
गहकि गहकि गावैं बहकि बहकि गीत,
डहकि डहकि बीरी पिय मुष देति हैं ।
हमकों तो होरी विधि होरी मैं दियौ है दुष,
प्रीतम विदेस कहूं दुष कौं न छेत हैं ।
और सब लालन कौं अंक भरि लेत हम,
हियौ भरि गरौ भरि आंवें भरि लेत हैं ।।२६३।।

श्रीपति

[कवित्त]

स्यामा स्यामा जानत हौं स्याम स्याम मानत हौं,
स्यामा स्यांम पूजत जपत स्यामा स्याम हौं ।
स्यामा स्याम हीं सौं काम स्यामा स्यांम कौं प्रनाम,
स्यामा स्याम ही कौं नाम रटौं आठौं जाम हौं ।।

श्रीपति सुजान स्यामा स्याम मेरे जीव प्रान,
स्यामा स्याम ही कौ ध्यान धरौं अभिराम हौं ।
स्यामा स्याम मेरे मन काम के कलपतरु,
स्यामा स्याम की सौं स्यामा स्याम कौं गुलाम हौं ।।२६४।।

अथ प्रतिवस्तुपमा

बर्ण्य अबर्ण्य ए दोऊ वाक्य समान कहिये, सो प्रतिबस्तुपमा ।

भा०

सोभा सूर प्रताप वर, सोभा सूरहि बान ।।२६५।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

सुष बिलसौ नँदलाल सौं, तजौ अटपटे नेह ।
लसति नारि मुनि माल सौं, लसति नारि पिय नेह ।।२६६।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

साधू कसिबे कौं काल दाता कसियै दुकाल,
मोती कसिवे कौं थाल नट कौं नटौटी है ।
हीरा कसिवे कौं घन सूरा कसिवे कौं रन,
पंडित के कसिवे कौं पत्र औ पटौटी है ।।
तान कसिये कवान घोरा कसिये चौगान,
कारीगर कसिवें कौं हाथ की हथौटी है ।
मित्र कसियै कुदाव नाव कसियै बहाव,
मानस के कसिवे कौं मामला कसौटी है ।।२६७।।

अथ दृष्टांत

बिंब अरु प्रतिबिंब कौ एक ही भाव होइ, सो दृष्टांत ।

भा०

कांतिमान ससि ही वन्यौं, तू ही कीरतिवांन ।।२६८।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

कंत बिनि कामिन(नि)बसंत विनि कोकिल ज्यौं,
दंत बिनि दिग्गज कमल बिन सर है ।
नीत बिन राज ज्यौं महीप मजलस विन,
दांन बिन मांन जैसैं मुंड बिन धर है ।।
पांनी बिन मोती जैसैं बानी विन कंठ जैसें,
जोति विन आंषैं जैसें पंछी बिन पर है ।
बिन रीझि दैबौ यौं कबित्त रस चित्त बिन,
गति बिन हंस जैसें मति बिन नर है ।।२६९।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

परबत पक्ष बिदारनौं, सुरपुर मैं अमरेस ।
षर गढ़ गंजन जगत मैं, श्री रघुबीर नरेस ।।२७०।।

अ०क०

[दोहा]

प्रीति रावरी सांवरे, रही सकल जग छाइ ।
फैली ससि की चांदिनी, ज्यौं दिसानि मैं जाइ ।।२७१।।

का०

[दोहा]

नर की अरु नल नीर की, गति एकै करि जोइ ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊंचौ होइ ।।२७२।।

[दोहा]

चलैं फिरैं धन होत है, बैठैं देगौ कौंन ।
उद्दम के सिर लछमो ज्यौं, पंपे सिर पौंन ।।२७३।।

।। सवैया ।।[1]

जे गुन हीन महाधन संजुत ते न लहैं सुषमां जग मांही ।
जौ गुनवंत बिना धन है तौ तिन्हैं कवि लोग गुबिंद सरांहीं ।।
ज्यौं द्रग लोल बिसाल फटे पट ताहि लषैं जन रीझि बिकांहीं ।
नैंन बिहीन तिया मन कंचन भूषण तैं कछु भूषित नांहीं ।।२७४।।

अथ त्रि-बिधि निदर्शना

दोऊ बाच्यार्थ समान कहियै, सो प्रथम । और बस्तु मैं और गुन अर क्रिया एक ही होइ, सो दुतिय । कछु कारज देषि कैं अरु भले बुरे कौ भेद बताइये, सो तृतीय ।

अथ प्रथम निदर्शना

दाता सौम्य सु अंक विन, पूरन चंद बन वसो ।।२७५।।

*

[दोहा]

फैलि रह्यौ मनि सदन मैं, आनन अमल प्रकास ।
अलकनि चंचलता अली, नागनि गमन बिलास ।।२७६।।]

1. अलवर-प्रति में नहीं है ।
* अलवर-प्रति में सो॰(सोमनाथ) दिया गया है ।

अ०क०

[दोहा]

अन हठ पिय हिय नवल तिय, लगै चाह सौं धाय ।
अष्ट सिद्धि नव निधि मिलत, अनायास ह्वै जाय ।।२७७।।

अथ द्वितिय निदर्शना(भा०)

देषौ सहज ही धरत ये, षंजन लीला नैंन ।।२७८।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

श्रीरघुबीर महाबली, तेरौ सुजस गंभीर ।
लहि बिहार कलहंस कौ, लसत मान-सर तीर ।।२७९।।

अ०क०

[दोंहा]

धारत लीला मीन की, लोचन तेरे बाल ।
होइ रहे मोहित अहे, अलि नंद नंद रसाल ।।२८०।।

अथ तृतीय निदर्शना(भा०)

तेजस्वी सौं निबल बल, महादेव अरु मैंन ।।२८१।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

सबै ठौर समता भली, दूजी बिधि न सवाद ।
श्रवन सुषद कहि कौंन कौं, सठ पंडित कौ बाद ।।२८२।।

का०

जलधर की एकौ घरी, अरहँट बारह मास ।।२८३।।

का०

।। कवित्त ।।

कबित करत तुक दौरैं मन दौरै जहां,
जहां जहां औरै औरै औरै सुठि सांकरैं ।
सौंनै की सी सांकर ए मिसरी के कांकर से,
आंक-रस आकरै सु हां करैं निसां करैं ।।
सौंठैं के सी गांठैं तुक गांठे तेऊ गांठि की न,
सांठैं सौं लै आनी अैसे आंकनि के रांकरैं ।
दोऊ ते समान यौं जिहांन कौ जमानौं जानि,
भौं भौंर भयें जीत्यौ षट पद भद(पद)माकरैं ।।२८४।।

।। सवैया ।।

सज्जन नांहि करैं तृस्कार करैं तो गुबिंद महा सुषदानी ।
नीच करैं अति आदर कौं जिय जद्दपि है दुष ही की निसानी ।।
ठोकर देय तुरंग ललाट मैं तद्दपि कीरति ही सरसानी ।
जौ षर पीठि पैं लेई चढ़ाइ तऊ जग मैं अपहास कहानी ।।२८५।।

अथ व्यतरेक

उपमांन तें उपमेय अधिकौ देषियैं, सो व्यतरेक ।

भा०

मुष है अंबुज सौ सषी, मीठी वात विसेष ।।२८६।।

मुकंद

गिरि से ऊंचे रसिक मन, कोमल प्रकृति बिसेष ।।२८७।।

अ०मा०

श्रीफल से सुंदर उरज, कठिन भेद यह एक ।।२८८।।

अ०क०

राधे तव मुष चंद सौ, विन कलंक सरसाय ।।२८९।।

[सवैया]

नैंन बनें अरबिंद से सुंदर अैपें कटाछिन की सरसाई ।
इंदु अमंद सौ आनन अैपें अनौंषी ये वातन की मधुराई ।।
कंचन सौ तन तेरौ तिया पें सुगंध के वृंदनि की छबि छाई ।
आनदकंद गुबिंद की सौं सब ही बिधि तो मधि है अधिकाई ।।२९०।।

सेनापति[2]

।। कवित्त ।।

तेरौ मुष देषें चंद देष्यौ न सुहाय अरु,
चंद के अछत मेरौ मन तरसतु है ।

2. अलवर-प्रति में नहीं है ।

ग्रैसें तेरे मुष सौं कहत सव कबि ग्रैसें,
देषौ मुषचंद के समान दरसतु है ।।
वेतौ समुझै न कछू सेंनापति मेरे जानि,
चंद तें मुषारबिंद तेरौ सरसतु है ।
हसि हसि मीठी मीठी बातें कहि कहि ग्रैसे,
तिरछे कटाछ कब चंद बरसतु है ।।२९१।।

ग्रथ सहोक्ति

एक संग ही रस कौं सरसाय कैं बर्नियैं, सो सहोक्ति ।

भा०

कीरति ग्ररि कुल संग ही, जल निधि पहुची जाय ।।२९२।।

ग्र०मा०

झटक उपारयौ गिरि हरी, मघवा गर्व समेत ।।२९३।।

ग्र०क०

[दोहा]

मांन मनावत ग्रापुही, ग्राये स्यांम सुजान ।
मान मानिनि संग ही, छूट्यौ सौति गुमान ।।२९४।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

हरि दूरि निरषौ हिये मैं, जोबन कियौ बिहार ।
बढे द्रगनि के संग ही, नव तरुनी के बार ।।२९५।।

केसव

।। कवित्त ।।

सिसुता समेत भई मंद गति लोचननि,
गुननि सौं बलित ललित गति पाई है ।
भौंहनि की होडा-होडी ह्वै गई कुटिल अति,
तेरी वानी मेरी रानी लागति सुहाई है ।
केसौदास सुष हास साथ छीन कटि तट,
छिन छिन सूछम छबीली छबि छाई है ।।
बीर बुद्धि बारनि के साथ ही वढ़ी है अरु,
कुचनि के साथ ही सकुच उर आई है ।।२९६।।

बिहारी

[दोहा]

अर तें टर तन बर परे, दई मरक मनु मैंन ।
होडा-होडी बढ़ि चले, चित चतुराई नैंन ।

अथ द्वि-बिधि बिनोक्ति

कछु बिना छीन प्रस्तुत होइ, सो प्रथम । प्रस्तुत कछु हीनता तें अधिकी सोभा पावै, सो दुतिय ।

अथ प्रथम बिनोक्ति(भा०)

द्रग षंजन से कंज से, अंजन बिन सोभैं न ।।२९८।।

अ०क०

[दोहा]

वसन आभरन मिलि भई, सोभा सरस अतोल ।
सबै सिंगार अमोल पैं, फीकौ बिनां तमोल ॥२९९॥

मुकंद

सब गुन सहित प्रबीन तू, बिना नमृता हीन ॥३००॥

अ०मा०

सब बिधिनी कौ दुर्गा अति, पैं सदोष बिन कूप ॥३०१॥

॥ कवित्त ॥

सीषे रस रीति सिष प्रीति के प्रकार सब,
सीषे केसौराय मन नन सौं मिलाइबौ ।
सीषे सौंहैं षान मुसकान नटि जान सीषे,
सीषे सैंन बैननि मैं हसिबौ हसायबौ ॥
सीषे चाह चाह सौं जु चाह उपजायबे की,
जैसी कोऊ चाहै चाह तैसी चाह चाहिबौ ।
जहां तहां सोष अैसी बातैं घातैं तातैं तुम,
तहां क्यौं न सीषे एक नेह कौ निबाहिबौ ॥३०२॥[1]

अथ दुतिय बिनोक्ति(भा०)

बलि सब गुन सरसाति, तू रंच रुषाई है न ॥३०३॥

---

1. अलवर-प्रति में सोमनाथ से यह उद्धरण और है—
नीकी आनन अरु नई, भृकुटी की बिधि वंक ।
अलबेली बिन छीनता, लसति न तेरी लंक ॥

अ०मा०

बिना दुष्ट राजति सु अति, नृप तव सभा सुढंग ।।३०४।।

अ०क०

[दोहा]

उह मौंहन सब गुन निपुन, जानत अति रस रीति ।
है प्रतीति जाकी निपट, बिना कपट की प्रीति ।।३०५।।

मुकंद

विन कायरता नृपति तुव, सब गुन अति छवि (छबि) देत ।।३०६।।

अथ समासोक्ति

प्रस्तुत बर्नन मैं अप्रस्तुत फुरै, सो समासोक्ति ।

मा०

कुमुदिनि हूं प्रफुलित भई, देषि कला-निधि सांझ ।।३०७।।

अरुण जु यह मुष बारुणी, चुंबत चंद सुजान ।।३०८।।

अ०क०

[दोहा]

सहित सुमन रस लैन मैं, अलि यह महा प्रवीन ।
पावत जहीं सुवास होत, तहां[तहां] ही लीन ।।३०९।।[1]

---

2. अलवर-प्रति में अ.मा. का उदाहरण और है—
अरुन जु यह मुख दारुणी, चुंवत चंद सुजान ।

सो० [मनाथ]

मधुपहु भये सचेत तिय, लषि फूल्यौ रितुराज ॥३१०॥

अथ परिकर

आसय लियें बिसेषण होइ, सो परिकर ॥३११॥

भा०

ससि बदनी यह नाइका, ता पर रति है जोइ ॥३१२॥

सो० [मनाथ]

पैनें तिय के नैंन ए, वेधत हियो निदान ॥३१३॥

अ०क०

[दोहा]

सुधा बचन आनद करन, हिये दया सरसाय ।
बिकल परी उह बाल है, चलि बलि लेहु जिवाइ ॥३१४॥

अ०भा०

चलि मिलि पिय हिय ताप हरि, अंगनि चंदन चारि ॥३१५॥

अथ परिकरांकुर

अभिप्राय सहित विसेष्य जब होइ, सो परिकरांकुर ॥३१६॥

भा०

सूधे हूं पिय के कहैं, नेंकु न मानति बाम ॥३१७॥

अ०मा०

चारि पदारथ देत हैं, सदा चतुर्भुज देव ।।३१८।।

अ०क०

[दोहा]

तन की रही सँभार नहि, गई प्रेम सर भोइ ।
मोंहन लषि तेरी दसा, क्यों न भटू अस होइ ।।३१९।।

आली या दुपहर समय, यह उपाय अभिराम ।
सब गरमी मिटि जाय जौ, अब आवै घनस्यांम ।।६२०।।

अथ अप्रस्तुत प्रसंसा दु-बिधि

प्रस्तुत बिना बर्नन कीजै, सो प्रथम । प्रस्तुत के अंस कौ बर्नन कीजै सो दुतिय ।[६२१]

अथ प्रथम अप्रस्तुत प्रसंसा(३२२)

धनि यह चरचा ज्ञान की, सकल समैं सुष देत ।।३२३।।

अ०मा०

धन्नि बिहंगनि मैं सुतजि, इंद्र न जाचति अन्य ।।३२४।।

मुकंद

धनि केई जे एक सौ, करैं नेह निरबांह ।।३२५।।

सो०[मनाथ]

।। कवित्त ।।

दिसि-विदिसानि तें उमडि मढ़ि लीनौं नभ,
छोरि दिये धुरवाजवा से जूथ जरिगे ।
डह डहे भये द्रुम रंचक हवा के गुन,
कुहू कुहू मुरवा पुकारि मोद भरिगे ।।
रह गये चातक जहां के तहां देषत ही,
सोमनाथ कहैं बूंदा बूंदी ह्न न करिगे ।
सोर भयौ घोर चहूं ग्रोर मही मंडल मैं,
ग्राये घन ग्राये घन ग्राय कें उघरिगे ।।३२६।।

ग्रथ दुतिय ग्रप्रस्तुत प्रसंसा

बिष राषतु है कंठ सिव, ग्राप धरचौ इहि हेतु ।।३२७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

राज हंस मन दै सुनौं, यहै ग्रनौंषौ गाउ ।
बांनि भुलायें ग्रापुनी, लोग धरैंगौ नांउ ।।३२८।।[1]

।। राजा नागरीदास कौ कवित्त ।।

गहिबौ ग्रकास पुनि लहिबौं ग्रथाह थाह,
ग्रति विकराल ब्याल कालहि षिलाइबौ ।
सेल समर धार सहिवौ प्रहार बान,
गज मृगराज द्वै हथेरिनु लराइबौ ।

1. सोमनाथ के उदाहरण के बाद 'राजा नागरीदास' तथा 'काहू को कवित्त' ग्रलवर-प्रति में नहीं दिए गये हैं।

गिरि सौं गिरन ज्वाल माल मैं जरन,
काासी मैं करौत देह हेम मैं गलाइबौ ।
पीबौ बिष बिषम कबूल कबि नागर पैं,
कठिन कराल एक नेह कौ निवाहिबौ ।।३२६।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

नष बिन कटा देषे सीसधारी जटा देषे,
जोगी कनफटा देषे छार लायें तन मैं ।
मौंनी अनबोल देषे सेवरारौं छोल देषे,
करत कलोल देषे बन षंडी बन मैं ।।
कायर औ सूर देषे गुनी अरु कूर देषे,
माया के अपूर देषे पूरि रहे धन मैं ।
जनम के दुषी देषे आदि अंत सुषी देषे,
अैसे नही देषे जाके लोभ नही मन मैं ।।३३०।।

अथ अर्थ श्लेष

एक अर्थ अनेक पक्ष लगै, सो अर्थ श्लेष ।

देवीदास

।। कवित्त ।।

सरद की चांदिनी से ऊजरे अमोल सुभ,
सुंदर सुहात न दुरायें दुरिबे के हैं ।
बडे गुनवंत देवीदास मन मोहि लेत,
पानिप सौं पूरण सुढार ढरिबे के हैं ।।
काहू एक कूर की कुराई करि फूटि गये,
फिरि मूढ़ मोरचौ चाहैं बैन मुरिबे के हैं ।
मीतनि कौ मन मोती फूटि टूटि द्वै भये सो,
लाष दैकैं जोरौ कहा फेरि जुरिबे के हैं ।।३३१।।

कुलपति

॥ सवैया ॥

न वचै दुरि दुज्जन सागरहू पग लागत ते गल गाजत हैं ।
वर तेज कौं पुंज लसै सुधि आयें जिन्हैं हिय के तम भाजत हैं ॥
सति मूल धरा अनुकूल सदा सुष साजनि साजन साजत हैं ।
जस सील के धाम हैं पूरन काम तिहूं पुर राम बिराजत हैं ॥[३३२]

वृंद[1]

॥ छप्पै ॥

वन वन व्याकुल फिरत कुंज कुंजनि प्रति चंपत,
गिरि गिरि चढ़ि गिरि परत कूप बापी सर झंपत,
दावानल मैं परत बिरह आतप तन तावत,
जिहिं जिहिं परसत जाइ ताप तिहि तिहि उपजावत,
कहि वृंद रंग सरसाव तजि मलिन अंग निसि दिन गवन ।
सज्जन बसंत बिछुरत भयौ विरही जन ग्रीषम पवन ॥३३३॥

अथ प्रस्तुतांकुर

प्रस्तुत अर्थ मैं प्रस्ताव्य बर्नियै सो प्रस्तुतांकुर ।

भा०

कहां गयौ अलि केतु की, छाडि सुकोमल जाय ॥३३३॥

---

1. वृंद का छप्पै अलवर-प्रति में नहीं मिलता ।

विहारी

[दोहा]

नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि बिकास इहि काल ।
अली कली ही सौं बिंध्यौ, आगें कौंन हवाल ।।३३४।।

जिन दिन देषे उह कुसुम, गई सुबीति बहार ।
अब अलि रही गुलाब मैं, अपत कटीली डार ।।३३५।।[1]

गिरधर

[दोहा]

भौंरा ए दिन कठिन हैं, सहि आपुनें सरीर ।
जौ लौं फूलै केतुकी, तौ लौं बिरमि करीर ।।३३६।। इत्यादि

का०

कैसें आज सेवन सुगंध तजि सेवती कौ,
कौंन वन वेलिनु भमर आनि भूलि हौ ।।३३७।।

केसव

।। सवैया ।।

जातु नही कदली की गलीनि भली बिधि लै बदरी मुह लावै ।
चाहैं न चंप-कली की थली मलिनी नलिनी की दसा न सिधावैं ।।
जौ कोऊ केसव नागल वंग लता लवली अबली लै चरावै ।
षारिक दाष चषाइ मरौ किन ऊंटहि ऊट कटेरौई भावै ।।३३७।।

1. अलवर-प्रति में विहारी का दूसरा दोहा नहीं दिया गया है ।

अथ अन्योक्ति[1]

और पें डारि कें और कौं समुझाइये, सो अन्योक्ति ।

गिरिधर

भौंरा भ्रम दे छाडि कें, भ्रमत काहि इहि ठौर ।
यहै चित्र कौ कमल है, तू समुझै सो और ।।३३८।।

धोखें दारचौ के सुवा, गयौ नारियर षांन ।
षम षाई पाई सजा, तब लाग्यौ पछितान ।।
तब लाग्यौ पछितान बुद्धि अपनी कौं रोयौ ।।इत्यादि

[दोहा]

चल्यौ जाहु इहा को करै, हाथिनु कौ व्यौपार ।
या नगरी तींनू वसै, धोबी ओड कुम्हार ।।३३८।।

बृंद

[दोहा]

समै पाइ समुझत नहीं, ते पीछें पछितात ।
समै फूल फल होत है, समैं पात झरि जात ।।३३९।।

1. जोधपुर प्रति में 'अन्योक्ति अलंकार' दिया गया है, परन्तु अलवर-प्रति में 'अन्योक्ति' न देकर 'प्रस्तुतांकुर' के बाद 'दुविधि पर्यायोक्ति' का ही विवरण है। साथ में यह स्पष्ट कर दिया है कि कुछ लोग 'प्रस्तुतांकुर' को ही 'अन्योक्ति' कहते हैं। शायद इसीलिए अलवर-प्रति में 'अन्योक्ति' को अलग देने की आवश्यकता नहीं समझी। इन बातों से ऐसा लगता है कि 'अलवर-प्रति' जोधपुर-प्रति की संशोधित प्रति है। जो बातें जोधपुर-प्रति में अनावश्यक समझी गई वे अलवर प्रति में नहीं है।

॥ सवैया ॥

वारिद बारि भरचौ गरजं कहा छोरि दै बारि अरे अभिमानी ।
केतिक द्यौस कौ प्यासौ पपीहरा पीवहि पीव रटै मृदुबानी ॥
अैसो समैं न मिलै कबहूं सुनि लै कबि गोबिंद की यौं कहानी ।
पौंन प्रचंड चलै छिन मैं तौ कहां तू कहां पपीहा कहां पानी ॥३४०॥

[सवैया]

पटानि तें दान चुचात भली बिधि जान्यौं जबै जिय मत्त गयंद ।
महा मुद ह्वै मधु गंध लुभाइ कैं आयौ तहां इक भौंर गुबिंद ॥
बिराजि बिभूषित कीनौं सुबारण डारण धूरि लग्यौ मति मंद ।
करी सिर धूरि परी पर सिद्धि अलिंद गयौ अरविंद के वृंद ॥३४१॥

कोऊ प्रस्तुतांकुर ही सौं अन्योक्ति कहत हैं ।

अथ पर्यायोक्ति दु-बिधि

कछु रचना सहित बात कहियै, सो प्रथम । मन भांवतौ कारज कछु मिस करि कैं साधि लीजै, सो दुतिय ।

अथ प्रथम पर्यायोक्ति(भा०)

चतुर उहै जिहि तुव गरैं, बिन गुन डारी माल ॥३४१॥

अ०क०

[दोहा]

जिहि पद नष गंगा प्रगट, भई अवनि मैं आइ ।
तो तन लषि जिहि करज, छत मो अघ गये बिलाइ ॥३४२॥

अ०मा०

जिहिं उर धरि भव तरि सु, जिहि सुर तरु जुत महि कीन ।।३४३।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

रीझि रही तुम कौं निरषि, अति प्रबीन सो वाल ।
आज सांवरे तै किये, जिहि वहुरंगी लाल ।।३४४।।

चिंतामनि

।। कवित्त ।।

सौंने कौन रूपे कौन जान्यौं जात पन्ननि कौ,
हीरे कौन मोती कौन काहे कौ वनायौ है ।
देव कौ चढयौ है कि दिवारी कौ चढयौ है काहू,
गुनी कौ गढ़यौ है बिन गुन गर आयौ है ।।
चिंतामनि प्रान प्यारे उर सौं उतारि लीजै,
नैंक मेरे हाथ दीजै मोहू मन भायौ है ।
छल कौ छला सौ इंद्रजाल की कला सौं,
यह सांची कहौ हा हा हरि हार कहां पायौ है ।।३४५।।

।। का०—सवैया ।।

क्यौं घनस्यांम इति दुचीती तुम मो तन द्रष्टि करौ सुषदाई ।
कंज गुलाबनि की अरुणाई तें लाल गुलाल हू तें सरसाई ।।
नैंननि पै अति घैरु घनौं धनि है रंगरेजनि की चतुराई ।
सांची कहौ इनि आंषिनि की तुम दीनी कहा नँदलाल रँगाई ।।३४६।।[1]

. अ०+ अ०क० जिन पद नख गंगा प्रगट, भई अवनि मैं आई ।
तो तन लखि जिहि रज छुतो, अघ गए विलाई ।।
अ०क० जिहि उर धरि भवतीर सु जिहि सुरतर जुत महि कीन ।
सो० रीझि रही तुमकौं निरखि, अति प्रवीन को वाल ।
आज सांवरे तैं किये, जिहि वहुरंगी लाल ।।

अथ द्वितिय पर्यायोक्ति(भा०)

तुम दोऊ बैठौ इहां, जाति अन्हावन ताल ।।३४७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

लषि मौहन तिय कौ बदन, मृदु मुसकाय अमोल ।
लट सुरझैवे के मिसैं, छिगुनी छियौ कपोल ।।३४८।।

अ०भा०

तुम दोऊ बैठौ इहां, आवति कुंज निहारि ।।३४९।।

अ०क०

[दोहा]

बैठौ नीकी छांह मैं, तुम दोऊ बट मूल ।।
हौं लैं आंऊं कुंज तैं, हरहि चढ़ावन फूल ।।३५०।।

केसव

।। कवित्त ।।

वेष कें कुमारिका कौं व्रज की कुमारिकांनि,
मांझ सांझ केसौदास त्रास पग पेलिकें ।
काम की लता-सी चल प्रेम फासी-सी अमल,
वृद्धि बल राधिका के कंठ भुज मेलिकें ।।

दौरि दौरि दूरि दूरि पूरि पूरि अभिलाष,
लाष लाष भांति की अनूप रूप केलिकें ।
जनी के अजिर आज रनी मैं सजनी री,
सांची कीनी स्यांम चोर-मिहीचनी षेलिकें ।।३५६।।

।। संभु कौ कवित्त ।।

कान्ह कौं चेलो बनाइ कें संभु गई वृषभान के भौंन गुसाइनि ।
देषन कौं जुरि आंई सबै तिय डारी सहेलिनु राधिका पाइनि ।।
अंक लगाइ बिभूति दंई पुनि यौं कहि कें चित चौगुने चाइनि ।
याहि इकंत लै मंत्र जपै तौ पैं होइ सबै व्रज की ठकुराइनि ।।३५७।।

अथ व्याज स्तुति दु-बिधि

निंदा मिस स्तुति होइ, सो प्रथम । स्तुति मैं और की स्तुति होइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम व्याज स्तुति(भा०)

पतित चढ़ाये स्वर्ग लै, गंग कहा कहौं तोहि ।

अ०क०

[दोहा]

कहा सिषाई कुटिलता, लाल द्रगनि दुष दैंन ।
जा तन ताकत नैंक हौ, ता के लगत न नैंन ।।३६०।।[1]

---

1. 'अ०क०' के बाद अलवर-प्रति में सोमनाथ का यह दोहा और है—

घर मैं एक विसाति है, यह कराल किरवान ।
पर धन कौं हरि लेत हौ, निरखे भले सुजान ।।

।। काहू कौ सवैया ।।

कानिनि लौं अषियां है तिहारी हथेरी हमारी कहां लगि फैलि है ।
मूंदि है तौ तुम देषति हौ हम कोरें तिहारी कहां धौंस केलि हैं ।।
कान्हर हू कौ सुभाव यहै उन्है तौ हम हाथनि ही पर हेलि हैं ।
राधे जू मानौं भलौ कि बुरौ अषि-मीचनौ संग तिहारें न षेलि हैं ।।३६१।।

अथ दुतिय व्याज स्तुति

आप तरै तारैं सबनि धनि धनि हरि के दास ।।३६२।।

मुकंद

[दोहा]

धनि विभीषण राम मिलि, अजहुं करत है राज ।
धनि पांडव हरि कृपा तैं, लहे सकल सुष साज ।।३६३।।

अ०क०

[दोहा]

तूहीं धनि तमाल है, करत रहत है केलि ।
प्यारी भुज-सी पल्लवित, तो सौं लपटी वेलि ।।३६४।।

अथ व्याज निंदा दु-बिधि

स्तुति मिस निंदा होइ, सो प्रथ[म] । निंदा मिस और की निंदा होइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम व्याज निंदा(अ०मा०)

धनि धनि सषि मोहित भई, नष रद छत जुत अंग ।।३६५।।

अ०क०

[दोहा]

मोहैं ही मन लेति हैं, छबि रावरी रसाल ।
आये हौ मेरे लियें, छके छबीले लाल ।।३६६।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

कहा कहौं तो सौं सषी, भली करी है आज ।
दुसह दंद नष बेदना, सबही आय मो काज ।।३६७।।

कु०[लपति]

।। सवैया ।।

देह धरी पर काज ही कौं जग मांझ है तो सी तुही सब लायक ।
दौरें थकें तन स्वेद भयौ समझी सषी ह्वां न मिले सुषदायक ।।
मोही सौं प्यार जनायौ भली बिधि जानी जू जानी हितून की नायक ।
सील की मूरति सांच की सूरति मंद किये जिहि काम के सायक ।।३६८।।

।। का० कवित्त ।।

बूझति हौं कान्ह कहौ आपु ही अनोषे भये,
परम चतुर चतुराई सौं गडतु हौ ।
सामुहैं न होत केतौ साहस करत तुम,
नीचे ही चहत हित बीच ही षगतु हौ ।।
मेरी दीठि परें दीठि नैंकु न जुरति अैसी,
स्यांनि सौं लगे हौ आछी भांति सौं पगतु है ।

मेरे जानि लाल कबू तजिये न लाज श्राज,
लाज भरे लोचन सौं नीके ही लगतु हौ ।।३६९।।'

अथ दुतिय ब्याज निंदा(भा०)

सदा छीन कीनौं न तू, चंद मंद है सोइ ।।३७०।।

अ०क०

[दोहा]

समुझावत ऊधौ कहा, झूठी बात बनाइ ।
उह तौ कपटी कान्ह हैं, दासी लिये लुभाइ ।।३७१।।

सो०[मनाथ]

।। [दोहा] ।।

बँसुरी सठ सोई निपट, श्रैसी रची बनाइ ।
कीनी नही दुसाल तू, श्रति छाती चहकाइ ।।३७२।।

अ०मा०

कौंन सौति उह श्रधम है, जिहि मारयौ तुव मांन ।।३७३।।

---

1. श्रलवर-प्रति में सोमनाथ का यह दोहा श्रौर है—

कहा कहौं तो सौं सखी, भली करी है श्राज ।
दुसह दुंद नख वेदना, सब ही श्राय मो काज ।।

।। सैंनापति कौ कवित्त ।।

बिनहीं जिरह हथयार बिन वाके ग्रव,
भूलि जिन जाहु सैंनापति समुझाये हौ ।
करि डारी छाती षौरि घायनि सौं राती तुम,
मोहि धौं बतावौ कौंन भांति छुटि आये हौ ।
आवौ आप सेज करौं औषधि की रेज प्यारे,
मैं तौ तुम्हैं पूरबलै पुन्यनि तैं पाये हौ ।
कीनें कौंन हाल उह बाघिनि-सी बाल वाहि,
कोसति हौं लाल जानें फारि फारि षाये हौं ।।३७४।।

अथ त्रि-बिधि आक्षेप

निषेध कौ आभास जहां होइ, सो प्रथम । पहिलैं कछु कहियै फिरि ताही कौं फेरियै, सो दुतिय । बचन की बिधि तैं निषेध दुरै, सो तृतीय ।

अथ प्रथमाक्षेप(भा०)

हौ नहि दूती अगनि तैं, तिय तन ताप बिसेष ।।३७५।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

हठ करि बरजति हौं नहीं, चलियैं लाल बिदेस ।
पैं बिरहनि कौं देइगौ, सांवन मांस कलेस ।।३७६।।

अ०क०

[दोहा]

तुम सौं सरस सनेह पिय, छिन छिन मैं सरसात ।
हौं न कहति मुष तैं कढ़ति, चित के हित की बात ।।३७७।।

केसव

।। कवित्त ।।

नीकें कें किवार दै हौं द्वार द्वार दरवान,
केसौदास ग्रास पास सूर जौं न छावैगौ ।
छिन मैं छबाइ ल हौं छप्पर ग्रटानि ग्राज,
ग्रांगन पटाइ लै हौं जैसौ मोहि भावैगौ ।।
न्यारे न्यारे नारदानि मूंदि हौं झरोषा जांन,
पाइ है न पांनी पौंन ग्रावन न पावैगौ ।
प्रीतम तिहारे चलें मो पह मरन मूढ़,
ग्रावन कहत सुतौ कौंन मग ग्रावैगौ ।।३७८।।

ग्रथ दुतियाक्षेप(भा०)

सीत करन दै दरस तू, ग्रथवा तिय मुष ग्राहि ।।३७९।।

ग्र०क०

[दोहा]

हित करि चित चुराइयै, कहि सषि पिय सौं जाइ ।
तू जिन जाहौं ही सबै, कहि लैहौं समुझाइ ।।३८०।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

ग्रलबेली तिय कौं इहां, ल्यावति सिषै सयान ।
कैं मनि मंदिर मैं उहां, चलियै क्यों न सुजान ।।३८१।।

अथ तृतीयाक्षेप(मा०)

जाइ दई मो जनम दै, चले देस तुम जाहि ।।३८२।।

अ०क०

[दोहा]

कीजै गवन बिदेस जौ, तुमहि सुहायौ लाल ।
फूल्यौ सरस सुहावनौं, निरषौ नैंक रसाल ।।३८३।।

अ०मा०

गवन हु जौ ह्वै है पिया, जनम मोर उहि देस ।।३८४।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

दंपति अंक भरन समै, ढ़िग आवति अलि हेरि ।
मधुर बोलि बीरी नवल, बिहसि मगाई फेरि ।।३८५।।

केसव

।। कवित्त ।।

चलत चलत दिन बहुत बितीत भये,
सकुचत कित चित चलत चलायें हीं ।
जात हैं ते कहौ कहा नांहि नैं मिलत आनि,
जानि यह छाडौ मोह बाढ़त बढ़ायें हीं ।
मेरी सौं तुमहि हरि रहियौ सुषहि सुष,
मोहू है तिहारी सौं रहौंगी सुष पायें हीं ।
चलें ही बनत तौ पें चलियै चतुर पिय,
सोवति ही छाडि यौं जगौंगी तुम्हैं आये हीं ।।३८६।।

अथ बिरोधाभास

पद मैं बिरोध अरु अर्थ जाकौ अबिरोध, सो बिरोधाभास ।

॥ काहू कौ दोहा ॥

हस्त बंध्र जे नृपति हैं, जोगी लिप्त बिभूति ।
हरि सुमरत जे भगत हैं, तीनूं गये बिगूति ॥३८७॥

केसव

॥ कवित्त ॥[1]

परम पुरुष कुपुरुष संग सोभिजत,
दिन दान मति अरु दान सौं न रति है ।
सूरज कुल कलस एहु के रहत सुष,
साधु कहैं साधु परदार प्रिय अति है ।
अकर कहावत धनुष धरें देषियत.........इत्यादि ॥३८८॥

अथ बिभावना छ-बिधि-

बिना ही कारण कारज उतपंन्न होइ, सो प्रथम । अपूर्ण कारण तैं पूरण कारज होइ, सो दुतिय । प्रतिबंधक के होतें हूं पूरण कारज होइ, सो तृतीय । अकारण बस्तु तें कारण उत्पन्न होइ, सो चतुर्थ । काहू कारण तैं बिरुद्ध कारज होइ, सो पंचम । कारज तें कारण उत्पन्न होइ, सो छठौ ।

अथ प्रथम बिभावना(भा०)

बिन जावक दीनें चरण, अरुण लषे हैं आज ॥३८९॥

---

1. अलवर-प्रति में केसव का यह कवित्त नहीं है ।

अ०क०

[दोहा]

अलबेली रुचि सौं रमैं, उहीं कदम की छांह ।
बिन हीं पिय निरषैं हरषि, बिहसि पसारें बांह ।।३९१।।

मुकंद

[दोहा]

बिन तमोल तेरे अधर, सोभित लाल रसाल ।
अरु काजर बिन नैंन ए, कजरारे नव बाल ।।३९२।।

का०तु०

काहे कौं गुलाल लाल बाल भरिवे कौ श्रम करौ ।
बिन ही गुलाल लाल लाल भये जात हैं ।।३९३।।

कल्यान

काजर बिन कारी री तेरी आंषैं फुलेल बिनु ।
चिकुर चीकने अधर आरक्त बिन पांन.......इत्यादि । [३९४]

अथ दुतिय विभावना(भा०)

कुसुम बान कर गहि मदन, सब जग जीत्यौ जोइ ।।३९५।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

मो पैं नहि बरनत बनैं, तेरे तरुन बिचार ।
नैंक बिहसि चेरे किये, हरि त्रिभुवन करतार ।।३९६।।

मुकंदजू

नैंक मंद मुसकाइ कैं, चित लै गयौ चुराइ ।।३९७।।

केसव

।। कवित्त ।।

चंचल न हूजै नाथ अंचल न अैंचौ हाथ,
सोवे नैंक सारिका हू सुक तौ सुवायौ जू ।
मंद करौ दीप दुति चंद-मुष देषियत,
दौरि कैं दुराइ आंऊं द्वार त्यौं दिषायौ जू ।।
मृगज मराल बाल बाहिरैं बिडारि देंऊ,
भावैं तुम्है केसव सु मोहू मन भायौ जू ।
छल के निवास अैसे बचन बिलास सुनि,
सौगुनौं सुरत हू तें स्यांम सुष पायौ जू ।।३९८।।

।। सवैया ।।

पाय परैं मनुहारि करैं पलिका पर पाय धरचौ भय भीनें ।
सोइ गई कहि केसव कैसें हूं कोरही कोरिक सौंह न कीनें ।।
साहस कैं मुष सौं मुष छ्वै छिन मैं हरि मानि सबै सुष लीनें ।
नैंक उसासहि के उस सें सिगरेई सुगंध बिदा करि दीनें ।।३९९।।

का०

[सवैया]

परदेस तें कोऊ न आयौ भटू उठि रोज मनोरथ कीजत है ।
निस नीद न आवति सेज विषें करि कोटि उपायनि छीजित है ।।
बढचौ प्रेम बियोग बिहाल हियें असुवानि सौं यौं तन भीजत है ।
निज प्रीतम की उनहारि सषी ननदी मुष देषी कें जीजित है ।।४००।।

अथ तृतीय विभावना

निसि दिन श्रति संगति तऊ, नैंन राग की षांनि ।।४०१।।

अ०मा०

तरवनि रवि बिधु मुष निकट, बढ़त जु कच तम स्यांम ।।४०२।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सदा सास बरजै घरी, उघरन देइ न अंग ।
तऊ जाय तिया कुंज मैं, बिहरै हरि के संग ।।४०३।।

अ०क०

गुरुजन दाढ़ दढ़े न ए, षरे परे बस मैं न ।
नागर नट की सैंन सौं, वर बट अटके नैंन ।।४०४।।

गदाधरजू

कचनि रचना राहू ढ़िग ही, उदित बदन मयंक ।। इत्यादि ।।

मुकंद

।। सवैया ।।

सास षिजै बरजै ननदी तरजै पति भांति अनेक रिसैबौ ।
और अनेक हसैं गुरु लोग नहि परबाह कितौ समुझैबौ ।।
आनन चद मुकंदजू कौ लषि नैंन चकोरनि कौ सुष दैबौ ।
नेह लग्यौ नँदलाल सौं बाल लयौ नित मंजु निकुंज कौ जैबौ ।।४०५।।

अथ चतुर्थ विभावना(भा०)

कोकिल की बांनी अबै, बोलत सुन्यौं कपोत ।।४०६।।

मुकंद

[दोहा]

आज अनौषौ मैं सुन्यौं, जामैं सरस सवाद ।
संषनि तैं निकसै मधुर, मृदु मृदंग कौ नाद ।।४०७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

कहा कहौं ता घरी तैं, उठत हिये मैं साल ।
जब तैं लष्यौ मयूर बन, चलत हंस की चाल ।।४०८।।

अ०क०

कियौ सुधारस पांन सषि, अधर बिद्रुम तैं आज ।।४०९।।

अ०मा०

पिक स्वर सुनैं कपोत तैं, सषि बड अचिरज आहि ।।४१०।।

अथ पंचमी बिभावना(मा०)

करत मोहि संताप यह, सषी सीतकर शुद्ध ।।४११।।

मुकंद

तव मुष मृदु अरबिंद तैं, करकस बचन न भाषि ।।४१२।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

प्यारी तू क्यौं करि रहि, अरुनत नैंने नैंन ।
कढ़त मधुर अधरानि तैं, जहर लपेटे बैंन ।।४१३।।

अ०क०

अधिक सलौंनौ रूप तउ, मधुर लगत अषियानि ।।४१४।।

बिहारी

कितौ मिठास दयौ दई, इते सलौंने रूप ।।४१५।।

केसव

मांषन-सी जीभ मुष कंज अैसौ कोमल पैं,
काठ-सी कठेठी बातें कैसें निकरति हैं ।।४१६।।

अथ छठी बिभावना (भा०)

नैंन मीन तें देषि यह, सरिता बहति अनूप ।।४१७।।

सो०[मनाथ]

तिय तन चंपक-माल तैं, प्रगटत जल-कन पुंज ।[४१८]

अ०क०

निकसत मुष ससि सौं बचन, रस सागर सुष दैंन ।।४१९।।

बिहारी

[दोहा]

बेधक अनियारे नयन, बेधत करन निषेध ।
बरबट बेधत मोहि यौं, तो नासा कौ बेध ॥४२०॥

रही जु छबि तन बसन मिलि, बर्नि सकै सुन बैन ।
अंग ओप अंगी दुरै, आंगी आंग दुरैन ॥४२१॥

अथ बिसेषोक्ति

कारन तें कारज उतपन्न होइ, सो बिसेषोक्ति ।

भा०

नेह घटत नहि हिये तउ, काम दीप चित मांहि ॥४२२॥

अ०भा०

कटु बचन षरद छत कियें, पिय हिय हित नहि जाइ ॥४२३॥

मुकंद

सापराध पिय निरषि कें, तऊ न कीनौं मान ॥४२४॥

अ०क०

[दोहा]

आली या ब्रज छैल के, अंग अंग रस षानि ।
निरषत मैं नहि होत है, इन अषियानि अघानि ॥४२५॥

।। कवित्त ।।

आज ब्रज-सुंदरीनि साजे अंग अंग आछें,
मोहिनी कें मोहन के मोहन के दाव हैं ।
आभूषन अंबर अतर तर करि चारु,
चौप सौं चतुर अति गरब बढ़ाव हैं ।।
तदपि किसोरी गोरी भोरी की सहज सोभा,
गोबिंद कें चढ़ी चित चौगुने ही चाव हैं ।
लौंनी लाडिली के द्रगनि के ठग पीके ही के,
फीके लगें तोके सब ही के हाव भाव हैं ।।४२६।।

।। देव कौ सवैया ।।

प्यारे तिहारे के मोहिबे कौं सब सौति सिंगार करें बहु तेरौ ।
पैं अपुनौ पन हारि करैं मनुहारि निहारि(निहारि)सषी मुष तेरौ ।।
तेरे सुहाग के ऊपर वारियें औरनि कौ रंग राग घनेरौ ।
देव निसाकर जोति जगें न लगें जुगनूंन कौ पुंज उजेरौ ।।४२७।।

अथ असंभव

संभवै नही अैसौ कारज बनिये, सो असंभव ।

भा०

गिरिवर धरि है गोप सुत, यह को जानत आज ।।४२८।।

अ०क०

[दोहा]

को जानत हौं इंद्र कौं, जीति कलपतरु ल्याइ ।
सति भामा के सदन मैं, हरि लगाइ हैं आइ ।।

अ०मा०

किन देष्यौ यह भुवन पर, कहत जु ध्रुव थिर आहि ।।४२९।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

नींद भूष रुचि टरि गई, बिछुरत ही बलबीर ।
को जानत हौ द्रुषद यह, ह्वै है त्रि-बिधि समीर ।।४३०।।

मुकंद

को जानत हौ सिंधु कौं, कंपि उलंघि है आज ।।४३१।।

अथ त्रि-बिधि असंगति

कारज अर कारण न्यारी न्यारी ठौर हौंइ, सो प्रथम । और ठौर के काम और ठौर कीजै, सो दुतिय । और काज आरंभियै और ही कीजै, सौ तृतीय ।

अथ प्रथम असंगति(मा०)

कोइल मदमांती भई, झूमत अंबा मौर ।।४३२।।

सो०[मनाथ]

रचत गह-गहौ मोहि यौं, पांन रावरे षात ।।४३३।।

बिहारी

[दोहा]

द्रग उरझत टूटत कटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गांठि दुरजन हियें, दई नई यह रीति ।।४३४।।

बाढत तो तन उरज अति, भर तरुनई बिकास ।
बोझनि सौतिन के हियें, आवति रूंधि उसास ।।४३५।।

मुकंद

तुम निसि जागे मो द्रगनि, भई अरुनई आई ।।४३६।।

केसव

कान्ह लगावत चंदनें, मेरे नंन सिरात ।।४३७।।

नंददासजू

जागे रैंनि तुम सब, नैंना अरुन हमारे ।
तुम कीनौं प्रेमपन घूंमत हमारौ मन, कारन कौंन प्रान प्यारे ।।इत्यादि।
[४३८]

अथ दुतिय असंगति(भा०)

तेरे अरि की अंगना, तिलक लगायौ पाय ।।४३९।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

तिय सिंगार आरंभ ही, आवत निरखे लाल ।
ईंगुर लायौ चरन मैं, रच्यौ महावर भाल ।।४४०।।

अ०क०

[दोहा]

बंसी धुनि सुनि ब्रज बधू, चली बिसारि बिचार ।
भुज भूषरा पहरे पगनि, भुजनि लपेटे हार ।।४४१।।

अथ तृतीय असंगति(भा०)

मोह मिटायौ नाहि प्रभु, मोह बढ़ायौ आइ ।।४४२।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सजी गूजरी एक कर, त्यौं हीं लषे सुजान ।
आदर करि तिय नें तवै, बिहसि षवाये पान ।।४४३।।

अ०क०

[दोहा]

दरसन दै अब ही चले, वातैं मधुर बनाइ ।
बिरह मिटायौ नाहि पिय, बिरह बढ़ायौ आइ ।।४४४।।

बिहारी

आई जा मन लैंन जिय, नेह हि चली जमाइ ।।४४५।।

अथ त्रि-बिधि बिषम

अन मिलते कौ संग होइ, सो प्रथम । कारण कौ रंग और अरु कारज कौ और रंग होइ, सो दुतिय । भलौ उद्दम किये तें बुरे फल की प्राप्ति होइ, सो तृतीय ।

अथ प्रथम बिषम(भा०)

अति कोमल तन तीय कौ, कहां बिरह की लाय ।।४४६।।

अ०मा०

हरि उहि मुकति पठै दई, बकी तकी ही और ।।४४७।।

मुकंद

रसिक स्यांम सुंदर सुघर, कहां कूबरी जोग ।।[४४८]

सो[मनाथ]

कहां उदर मृदु कान्ह कौ, कहां कठोर यह दाम ।।४४९।।

।। सवैया ।।

सागर कौ जल पार कियौ अरु कंटक पेड गुलाब कौ कीनौं ।
मित्रनि मांझ बियोग रच्यौ पय पान बिषद्धर कौं पुनि दीनौं ।।
पंडित लोग दरिद्रित गोविंद मूढ़नि कौं धन धाम नवीनौं ।
अंकित शुद्ध शुधा वरषै बिधु या बिधि सौं विधि है बुधि हीनौं ।।४५०।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

सीता पायौ दुष अरु पारबती बंझा तन,
नृग नैं नरक पायौ गनिका गति पाई है ।
वें न होइ सुषी हरिचंद नृप दुषी बलि,
भूप कौं पताल स्वर्ग पूतना पठाई है ।।
संकर कौं विष विषधर कौं दयौ है पय,
पांडव पठाये जहां हेम अधिकाई है ।
हाल ठकुराइसि मैं पोलि कौ अचंभौ कहा,
ईश्वर के घर ही तैं पोलि चलि आइ है ।।४५१।।

अथ दुतिय बिषम

षडगलता अति स्याम तें, उपजी कीरति सेत ।।४५२।।

मुकंद

हिरण्यकस्यप कें हरि भगत, उग्रसेन कें कंस ।।४५३।।

अ०मा०

घन सषि स्यामल देंषियत, बरषत उज्जल नीर ।।४५४।।

सो०[मनाथ]

असित रावरे बिरह नैं, जरद रँगी व्रज-बाल ।।४५५।।

।। सूरति कौ सवैया ।।

वे मग अंधनि हैं पग दा चलिबौ इहि नीके निही कौं निवारचौ ।
सूरति थाह वतावत वे इहि प्रेम अथाह के बारिधि डारचौ ।।
वेबस बास बसावत है इहि बास छुटाइ उजारिनि पारचौ ।
देषहु री हरि की बंसुरी इहि कैसौ सुबंस कौ वंस बिगारचौ ।।४५६।।

अथ तृतीय बिषम(भा०)

सषि लायौ घनसार तें, अधिक ताप तन देत ।।४५७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

नेह बढ़ैवे के लियें, लषी रावरी ओर ।
सो तुम हम सौं भांवते, सिरती गही मरोर ।।४५८।।

बिहारी

[दोहा]

मार सुमार करी अरी, षरी मरीहि न मारी ।
सींचि गुलाब घरी घरी, अरी बरीहि न बारि ।।४५६।।

अथ त्रि-बिधि सम

जथा जोग्य कौ संग होइ, सो प्रथम । कारज मैं कारण की बानि देषियै, सो दुतिय । श्रम बिना कारज उद्दम करत ही सिद्धि होइ, सो तृतीय ।

अथ प्रथम सम(भा०)

हार बास तिय उर करचौ, अपनें लायक जोइ ।।४६०।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

जानिब रावरि साहिबी, चित चतुराई आनि ।
कीनी रवि सौं मित्रता, हिमकर नें सुष मांनि ।।४६२।।

अ०क०

[दोहा]

सागर तैं कमला निकसि, निरषे आप समान ।
असुर सुरनि निदरे बरे, गुननि धान भगवान ।।४६२।।

मुकंद

पान पीक ओठनि बनैं, नैंना काजर जोग ।।४६३।।

केसव

।। सवैया ।।

तारा-सी कान्ह तरैयनि संग मैं चंद्र कलानि मैं चंद्रकला-सी ।
दामिनि-सी घनस्यांम समीप लसै तन स्यांम तमाललता-सी ।।
सौंने की सी कसी दूरि भयें तें लगें उर हार विहार प्रभा-सी ।
आधिकि औषधि-सी कहि कैं सब काम के धाम मैं दीपसिषा-सी ।।४६४।।

अथ दुतिय सम(भा०)

नीच संग अचिरज नही, लछिमी जलजा आहि ।।४६५।।

अ०क०

प्यारी चितवनि रावरी, रही अतुल रस भोइ ।।४६६।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

मदन मनोहर स्यांम के, सुत सुंदर सुषदानि ।
क्यों न होंइ प्रद्युम्न मैं, तिय वस करनी वानि ।।४६६।।

अथ तृतीय सम(भा०)

जस ही को उद्दम कियौ, नीकैं पायौ ताहि ।।४६८।।

अ०क०

[दोहा]

होरी षेलन स्यांम सौं, सौंज सवारी वाल ।
तव ही लियौ गुलाल कौं, आय गये नंदलाल ।।४६९।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

अलबेले सुंदर सुघर, नित बिनोद के धाम ।
जतन करत ही आप तें, सो बर पाये स्याम ।।४७०।।

इहां रुक्मिनीजू कौ समय है ।

अथ बिचित्र

फल की इच्छा करि कैं अरु बिपरीति को जतन कीजै, सो बिचित्र ।

नवत उच्चता लहन कौं, जे हैं पुरुष पवित्र ।।४७१।।

अ०मा०

न्हात लेत अधगति वुड कि, यह उचगति की प्रीति ।।४७२।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

चाहत सुष संपति सदा, अमरनि कौ परसंग ।
छाडि जगत की गति जती, भसम लपेटत अंग ।।४७३।।

अ०क०

[दोहा]

पति-सेवा मैं रति रहति, नित हित चित सौं बाल ।
नवत ऊचाई लहन कौं, यह चतुरई बिसाल ।।४७४।।

का०तु०

मेरे पाय परे तेरे पाय परिवे के काज,
पाय परि गरें परिवे के दाय दीने हैं ।।४७४।।

अथ दु-बिधि अधिक

आधार तें आधेय अधिक होइ, सो प्रथम । आधेय तें आधार अधिक होइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम अधिक(भा०)

सात दीप नव षंड मैं, कीरति नांहि समात ।।४७५।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

कैसें ल्याऊं नवल तिय, सुनिये श्री ब्रजराज ।
छलकै पलक पछेलि कैं, अषियनि मैं तें लाज ।।४७६।।

अ०क०

[दोहा]

मोहन रसना एक सौं, एकै वरन्यौं जात ।
अगनित गुन हैं रावरे, त्रिभुवन मैं न समात ।।४७७।।

अथ दुतिय अधिक(भा०)

सब्द सिंधु केतो जहां, तुव गुन बरनें जात ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

व्यापक चौदह भुवन मैं, अनंत गति मित्त ।
सो रघुबीर सुजान के, हिय मैं बिहरैं नित्त ।।[४७८]

अ०क०

[दोहा]

अषिल लोक जाके उदर, भींतरि रहे समाइ ।
सो हरि तैं कैसें अहे, राषे द्रगनि बसाइ ।।४७९।।

का०तु०

एते बडे द्रग होते न मेरे तौ, कान्ह कहौ तुम कैसें समाते ।।४८०।।

अथ अल्पाल्य

आधेय तें आधार सूक्षम होइ, सो अल्पाल्य ।

भा०

अँगुरी की मुंदरी हुती, भुज मैं करति बिहार ।।४८१।।

सो[मनाथ]

[दोहा]

पिय बियोग तें तरुनि की, पियरानि मुष जोति ।
मृदु मुरवा की घूंघरी, कटि मैं किंकिनि होति ।।४८२।।

अ०क०

[दोहा]

मोहि सदा चाहत रहौ, चित सौं नंदकुमार ।
मो मन नाजुक नां सहै, नैंक रुषाई भार ।।४८३।।

अ०मा०

छिगुनि छला पिय गवन सुनि, भयौ जु माला कार ।।४८४।।

अथ अन्योन्य

परसपर उपकार बर्निए, सो अन्योन्य ।

भा०

ससि सौं निसि नीकी लगै, निसि ही मैं ससि-सार ।।४८५।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

पावत सोभा सीस जव, धरियै मुकट वनाइ ।
होइ बडाई मुकट कौं, जब हरि सीस लषाइ ।।४८६।।

अ०क०

पिय सौं नीकी तिय लगै, तिय सौं नीकौ नाह ।।४८७।।

।। रसषान कौ कवित्त ।।

छूट्यौ गृह-काज लोक-लाज मन मोहिनी कौ,
मौंहन कौ छूटि गयौ मुरली बजाइबौ ।
अब दिन द्वै मैं रसषांन बात फैलि जै हैं,
ए री ए कहां लौं चंद हाथनि छिपाइबौ ।।
कालिंदी के कूल काल्हि मिले हे अचांनक ही,
दोउनि कौ दुहूं ओर मृदु मुसकाइबौ ।
दोऊ परैं पैंयां दोऊ लेत हैं बलैयां उन,
भूलि दईं गैयां उन गागरि उचायबौ ।।४८८।।

।। सवैया ।।

प्यारी बिहारी पै हैं बलिहारि बिहारी सरब्बसु प्यारी पें वारें ।
प्यारी के जीवनि मूरि बिहारी बिहारी कैं प्यारी ही प्रान पधारें ।।
प्यारी बिहारी की है सब भांति बिहारी प्रिया कौं गुबिंद उचारें ।
प्यारी सजैं सिर सांवरी सारी बिहारी पितांबर कौं नित धारें ।।४८९।।

[सवैया]

छीर सौं नीर मिल्यौ जब छीर नें नीर बनायो है आप समानौं ।
छीर कें आच दई तब नीर जरचौं पहलें हित ही मैं लुभानौं ।।
नीर कें दाधत भाजि कें छीर सुजान कृसान मैं कीनौं पयानौं ।
नीर दै छीर छिमायौ गुबिंद मिताई के मित्त यहै गुन जानौं ।।४९०।।

देव०तु०

मोहि मोहि मौंहन कौ मन भयौ राधामय,
राधा मन मोहि मोहि मोंहन मई मई ।।४९१।।

अथ त्रि-बिधि बिसेप्य(भा०)

बिना आधार आधेय होइ, सो प्रथम । थोरोई आरंभ अधिक सिद्धि कौं देई, सो दुतिय । एक वस्तु कौं अनेक ठौर बर्नन कीजै, सो तृतीय ।

अथ प्रथम बिसेष्य(भा०)

नभ ऊपर कंचनलता, कुसम स्वच्छ है एक ।।४६२।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

लसत सरोबर गगन पै, निकट जमुन की धार ।
दुहूं ओर चकवा लसैं, लषि द्रग भये सुमार ।।४८३।।

अ०मा०

अस्त भये हूं रबि तमहि, न सत दीप करि रूप ।।४९४।।

बिहारी

[दोहा]

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ ।
बसत सुचित अंतर तऊ, प्रतिबिंबित ज़ग होइ ।।४९५।।

अथ दुय बिशेष्य(भा०)

कलपवृक्ष देष्यौ सही, तुम कौं देषत नैंन ।।४९६।।

सो०[मनाथ]

सब कछु पायौ औचकां, भुज भरि भेटे लाल ।।४९७।।

अ०क०

[दोहा]

लगी लालसा रहति ही, निस दिन आठौं जाम ।
तुम देषैं घनस्याम सौ, नैंननि निरष्यौ काम ।।४६८।।

मुकंद

[दोहा]

तीन पैंड भुव लेत ही, सरबसु लियौ छिनाइ ।
सकल मनोरथ सिद्धि मम, प्रभु तव दरसन पाइ ।।४६६।।

अथ तृतीय बिसेष्य(भा०)

अंतर वाहिर दिसि बिदिसि, उहै तिया सुष दैंन ।।५००।।

अ०क०

[दोहा]

नगर बगर बागनि डगर, नगनि किकुंजनि धाम ।
बंसी बट जमुना निकट, जित देषौं तिन स्यांम ।।५०२।।

सो०[मनाथ]

नीर छीर थिर चरन मैं, लषियत नदकुमार ।।५०१।।

हरिबंस गुसाइजू[1]

ए दोउ षोर षरिक गिरि गहवर बिहरत कुंवर कंठ भुज मेलि ।।
५०३।।

---

1. अलवर-प्रति में नहीं है ।

॥ लाल कौ कवित्त ॥

प्यारी तेरे अंगनि की उमगी सुबास सोई,
लागी हरि चंदन मैं इंदिरा के घर मैं ।
मालती लता बन मैं सेवति गुलाबनि मैं,
मृग मद घनसार अंबर अगर मैं ।
उछरि उछरि छबि छति पर छाय रही,
देषियत सोही मनि मानिक मुकर मैं ।
चंपक बनी मैं चिराकनि की अनी मैं चारु,
चंद की कला मैं चपला मैं चामी कर मैं ॥५०४॥

अथ व्याघात द्वि-बिधि

और वस्तु तैं और ही कारज कीजै, सो प्रथम । बिरोधी तैं कारज तुरत ही लीजै, सो दुतिय ।

अथ प्रथम व्याघात

सुष पावत जा सौं जगत, ता सौं मारत मार ॥५०५॥

सो० [मनाथ]

[दोहा]

जाके छ्वैवे तैं डरैं, निर किंनर अमरेस ।
तां बिषधर कौं सजत हैं, नित आभरन महेस ॥५०६॥

अ० क०

[दोहा]

जिन किरनिनु सौं जगत कौं, बरसि सुधा सुष देत ।
तिन ही किरनिनु चंद तू, मोचित करत अचेत ॥५०७॥

मुकंद

जे प्रिय सुमरन सु तिन सरनि, मदन करत अति धाय ।।५०८।।

रसषांन

[सवैया]

संकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन आनन धर्म वढ़ावें ।
नैंकहि ये मधि आवत ही जड मूढ महा रसपांन कहावें ।।
जाहि जपैं सब देव बरांगना वारति प्रान न वेर लगावें ।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरी छाछि कौं नांच नचावै ।।५०९।।

केसव

ता हरि पैं तू अहीर की बेटी महाबर पाय-धुवाइ दिवावें ।
हौं तौ बची अब हांसिनि हीं अैसें और जौ बूझै तौ उत्तर आवै ।।५१०।।

।। काहू कौ कवित्त ।।[1]

जाही पाप संतति सगर कैं न बची एकौ,
जाही पाप ताछिक परीछित कौं षायौ है ।
जाही पाप फरसा सहस्र भुज षंड कीनी,
जाही पाप केतौ जदुकुल कौं सतायौ है ।।
जाही पाप राजा दसरथ कौ मरन भयौ,
जाही पाप देषौ इंदु कालिमा तें छायौ है ।
जाही पाप रौंना के न छौंना बचे भौंनां मांझ,
सोही पाप लोगनि षिलौनां करि पायौ है ।।५११।।

---

1. अलवर-प्रति में 'काहू कौ कवित्त' ज्याहि पाप संतति........नहीं है।

अथ दुतिय व्याघात(भा०)

निहचैं जानत बाल तू, करत काहि परि हार ।।५१२।।

विहारी

[दोहा]

सीस सुम बेंनी गुही, नहीं सुरसरी धार ।
चंदन चंदन भाल यह, मैंन मैंन हर नारि ।।५१३।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

हरि बनि गौरी कही, निरषि भस्मासुर कौ रंग ।
नांचै निज सिर हाथ धरि, तौ बिहरौं तुव संग ।।५१४।।

अ०क०

[दोहा]

सुधा हेत ह्वै मौंहिनी, कहि असुरनि सौं मीठि ।
प्रथम सुरनि कौं प्याय हौं, नहि लगि जैहैं दीठि ।।५१५।।

अथ गुंफ

कारण ही जहां परंपरा होइ, सो गुंफ ।

भा०

निति हि धन तिहि त्याग पुनि, तातैं सुजस उदोत ।।५१६।।

अ०मा०

गुन तें धन धन तें सुदत, दत तें जस अवगाहि ।।५१७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

होति समय तें तरुनई, तातें बाढत नैंन ।
तातें सरस सुरूप मुष, लषि मोहे पिय अैंन ।।५१८।।

अ०क०

[दोहा]

दरसन ते लागै लगनि, लगनि लगें तें प्रीति ।
प्रीति लगे तें होति है, मन मिलाप की रीति ।।५१९।।

अथ एकावली

पद कौं छाडि कें गृहण कीजैं, सो एकावली ।

द्रग श्रुति लौं श्रुति बाहु लौं, बाहु जान्ह लौं जानि ।।५२०।।

केसव

धिक मंगन बिन गुन नहि गुनहि धिक सुनत न रिझय ।
रिझय धिक बिन मौज मौज धिक देत जु षिज्जिय ।।
देवौ धिक विन सांच सांच धिक धरम न भावै ।
धरम सु धिक बिन दया दया धिक अरि पें आवै ।।

अरि धिक चित्त न साल ही चित धिक जे न उदारमति ।
मति धिक के सज्ञान बिन ज्ञान सु धिक बिन हरि भगति ।।५२१।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

तैं फूलनि गूंथे चिहुर, चिहुर चरण परमान ।
चरण महावर सौं रंगे, लषि बस भयौ सुजान ।।५२२।।

अ०क०

[दोहा]

उर पर कुच कुच पर कँचुक कँचुक ऊपर हार ।
तहां जाइ मोहित भयौ, पिय मन करत बिहार ।।५२३।।

अथ माला दीपक

दीपक अरु एकावली ए दोऊ मिलैं, सो माला दीपक ।

मा०

काम धाम तिय हिय भयौ, तिय हिय कौ तुव धाम ।।५२४।।

सो० [मनाथ]

मेरौ तुम सौं नेह पिय. तुम्हरौ नेह सु अंत ।।५२५।।

मुकंद

मो मन प्रीतम मैं बसै, प्रीतम बसै बिदेस ।।५२६।।

[सवैया]

दीपक नेह दसा सौं मिलै सो दसा मिलि जोति हि जोति जगावै ।
जागै सो जोतिन सै तम ही तम हीं न सिकैं सुभता दरसावै ।।
सो सुभता रचै रूप कौ रूप करूपहि काम कला उपजावै ।
काम सु केसव प्रेम बढ़ावत प्रेम लै प्रान पियाहि मिलावै ।।५२७।।

का०तु०

भुज लागै चापनि सौं चाप लगे बाननि सौ,
बांन लगे अरि अरि लगे भूमि पात हैं ।।५२८।।

मेरे तौ चित्त मैं मित्त बसै, अरु मित्त के चित्त की जानैं बिधाता ।
।।५२९।।

सार

उत्तरोत्तर उतकर्ष वर्नियै, सो सार ।

मधु सौं मधुरी है सुधा, कबिता मधुर अपार ।।५३०।।

अ०क०

[दोहा]

धन सौं प्यारौ धाम हैं, ता सौं प्यारौ जीव ।
ता सौं प्यारो पुत्र है, ता सौं प्यारो पीव ।।५३१।।

मधु जल तातैं मधु सुधा, तातैं मधु बच मांनि ।।५३२।।

॥ काहू कौ कवित्त ॥

प्रथम सरस देह देह तं सरस नर,
नर तें सरस गऊ बिप्र अवतार है ।
बिप्र अवतारनि मैं कहियत सरस सोई,
जाकें जप तप वेद बिद्या कौ बिचार है ॥
विद्या तें सरस बिधि बिधि तें सरस बेद,
बेद तैं सरस जज्ञ जासौं ज्ञान सार है ।
ज्ञान तें सरस ध्यान ध्यान तें लरस दया,
दया तें सरस राम नाम जू अपार है ॥५३२॥

अथ जथा संष्य

अर्थ कौ निर्वाह अनुक्रम सौं कोजं, सो जथा संष्य ।

भा०

करि अरि मित्त बिपत्ति कौं, गंजन रंजन भंग ॥५३३॥

अ०क०

[दोहा]

लषिं नव जोवन जोति जुत, तुव मुष सुंदर चंद ।
पिय हिय सौं तिन सषिनु भो, हरष अनष आनंद ॥५३४॥

बिहारी[1] (?)

[दोहा]

अमी हलाहल मद भरे, सेत स्याम रत नाल ।
जिवे मरै झुकि झुकि परै, जित चितवत यह बाल ॥५३५॥

1. इससे पहले भी यह दोहा बिहारी के नाम से चलता था आज भी बहुत से लोग इसे बिहारी का दोहा ही कह देते हैं—वास्तव में यह दोहा 'रसलीन' का है ।
(सम्पादक)

का०

[दोहा]

सिद्धि सियारा धार बन, भाल अवधि व्रजचंद ॥
गन रघु गोकुल नाथ जय, सिव दसरथ नंद नंद ॥५३५॥

सो०[मनाथ]

आनन भृकुटी बचन अधर अरु नाभि गवन पुनि,
चंद्र धनुष बीना प्रवाल सरवर गयंद गुनि,
सरद स्यांम तंत्रित रसाल सूछम सपुष्ट तन,
उदयनि गुन अरु सुघर पानि नव हेम तरुन पन,
पूरन मनोज बज्जित अरुन वृत्ति बहुरि मद वृंद कौ ।
लषि यह कामिनि आनंद निधि हिय हरषत व्रजचंद कौ ॥५३७॥

अथ द्वि-बिधि पर्याय

क्रम सौं अनेक कौं आश्रय एक ही होइ, सो प्रथम । क्रम सौं एक कौ आश्रय अनेक होइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम पर्याय(भा०)

हुती तरलता चरन मैं, भई मंदता आइ ॥५३८॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

प्रति बासर हरि होत हैं, तिय के सुघर सुभाय ।
हुती लरिकई अंग सो, बसी तरुनई आई ॥५३९॥

भ०मा०

जिहि द्रग पहलैं रिस लषी, अब तिहि रस सरसात ॥५४०॥

मुकंद

जब थल हे अब जल भये, सुनि सषि याही ठौर ॥५४१॥

अथ द्वुतिय पर्याय(मा०)

अंबुज तजि तिय बदन दुति, चंदहि रही बनाइ ॥५४२॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सुनहु राम तुव तेग की, कौंन करि सकै रीस ।
लषी समर मैं म्यान तजि, लसी अरिनि के सीस ॥५४३॥

अ०क०

[दोहा]

जाइ बजाई बांसुरी, बन मैं सुंदर स्यांम ।
ता धुनि कुंजनि श्रवन ह्वै, आइ कियौ मन धाम ॥५४५॥

केसव

॥ सवैया ॥

सौंह दिवाय दिवाय सषी इक वारक काननि आंनि बसाये ।
जानें को केसव काननि तें कित ह्वै कब नैंननि मांझ सिधाये ॥
लाज के साज धरे ही रहे अरु नैंननि लै मन हीं सौं मिलाये ।
कैसी करौं अब क्यौं निकसै री हरैं हीं हरैं हरै हिय मैं हरि आये ॥५४६॥

अथ परिव्रत

थोरौई सौ कछु दै कैं बहुत सौ लीजै, सो परिव्रत।

भा०

अरि इंदिरा कटाछि तुव, येक बान बर लेइ ॥५४७॥

अ०क०

नैंक दरस ही देत हौ, सरबस लेत छिनाइ ॥५४८॥

अ०मा०

नैंक द्रगनि की सैंन दै, सर्बसु मन हरि लीन ॥५४९॥

मुकंद

नैंक दिषांई दै भटू, सर्बसु लियौ छिनाइ ॥५५०॥

आनंदघन

तुम कौंन धौं पाटी पढ़े हौ लला, मन लेत पैं देत छटाक नही।
॥५५१॥

अथ परसंष्या

बस्तु कौं एक ठौर बर्जि कैं अरु दूसरी ठौर ठहराइयै, सो परसंष्या।

मा०

नैह हानि हिय मैं नही, भई दिये मैं जाइ ॥५५२॥

सो० [मनाथ]

कठिनाई उर मैं नही, भई उरोजनि आनि ।।५५३।।

मुकंद

षंजन मैं नहि चपलता, है तिय तुव द्रग मांहि ।।५५४।।

।। सूरति कौ कवित्त ।।[1]

सूरताई ग्रंध मैं सुद्रढ़ताई पांहन मैं,
नासिका चनानि मध्य नौंन रह्यौ हाट मैं ।
धर्म रह्यौ पोथिनु बडाई रही वृछनि,
बंधे जव कपातिनि मैं पानी रह्यौ घाट मैं ।।
इह कलिकाल नें बिहाल कियौ सब जग,
सूरति सुकबि कैसी बनी है कुठाठ मैं ।
रज रही पंथनि रजाई रही सीतकाल,
राई रही राइते रणाई रही भाट मैं ।।५५५।।

अथ दु-विधि समुच्चय

एक संग ही बहुत भाव उपजें, सो प्रथम । एक के लियै बहुतनि कौं अन्वय कीजै, सो द्वितिय ।

अथ प्रथम समुच्चय

तुव अरि भाजत गिरत, फिरि भाजत हैं सतराइ ।

1. अलवर-प्रति में इसे 'नायक का कवित्त' बताया गया है ।

अ०क०

[दोहा]

आनि अचानक मींडि मुष, हसि भजि मुरि फिरि धाय ।
बाल छबिले लाल पर, गई गुलाल चलाय ।।५५६।।

अ०मा०

कर पकरत पिय कैं चकी, जकी जु हरषी बाम ।।५५७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

कर पकरत नंदलाल के, उर मैं सरस्यौ नेह ।
सकुची निरषि सषीनि पुनि, पुलकि थरहरी देह ।।५५८।।

केसव

[सवैया]

कौनैं तृसै बिहसै कहि कौंनहि का पर कोपि कैं भौंह चढ़ावैं ।
भूलति लाज भटू कबहूं मुप अंचल मेलि दुरावैं ।
कौंन की लेति बलाइ ल्यौं तेरी दसा यह मोहि न भावै ।
ऐसी तौ तू कबहू न भई अब तोहि दई जिन वाय लगावै ।।५५९।।

सुंदर

रोइ रिसानी डरी थहरानी चकी संकुचानी चितै हसि दीनौं ।।५६०।।

भाव सबलता कौ, किल किंचित हाव कौ, समुच्चय अलंकार कौ, उदाहरण एक सौई है।

अथ दुतिय समुच्चय

जोबन बिद्या मदन धन, मद उपजावत आइ ।।५६१।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

पावति सीष सषीनि की, तरुणाई रति नाह ।
ए सब मिलि तिय नवल कैं, उपजावत पिय चाह ।।५६२।।

गुन गुरुवाई चातुरी, जोबन रूप रसाल ।
ए सब बिहसि परे षरे, करत तोहि मद बाल ।।५६३।।

।। देबीदास कौ कवित्त ।।

कोऊ कहूं मिलै ताहि जानि सनमान करैं,
हसि दीठि जोरै अरु हिय सौं दिषावैं हेत ।
आपनौं गरब कहूं नैकु न जतावैं अरु,
कोऊ नाहि जानैं जैसैं गुपत ही दान देत ।।
कोऊ उपकार करै ताकौं परकास करैं,
धरम नियम पर नित रहैं सावचेत ।
आप उपकार करि चुप रहै देवीदास,
एते सब गुन कुलवंत हि बतांयें देत ।।५६४।।

[कवित्त]

पूरे कुल जनम निरोगल सरीर घर,
वैभव बिसाल सुरसरी-तीर धाम हैं ।
पतिव्रता नारि सील साहसी सपूत सुष,
दायक कुटुंब करै पूरे मन काम हैं ।।
रामजू की भगति सकति दान दीबे ही की,
चाकर हुकमकारी जाकौ जस नाम है ।

देवीदास एते गुन पाइये जगत मैं तौ,
सूनसान मुक्ति ही कौं दूरि तें प्रनाम है ।।५६५।।

केसव

[कवित्त]

बाहन कुचाल चोर चाकर चपल चित्त,
मित्र मतिहीन सूंम स्वामी उर आनियें ।
परघर भोजन निवास बास कुपुरनि,
केसौदास बरषा प्रवास दुष दानियें ।।
पापिनु के अंग संग अंगना अनंग बस,
अपजस जुत सुत चित हित हानिये ।
मूढ़ता बुढ़ाई ब्याधि दारिद जु गई आधि,
इहां ही नरक नर-लोकनि बषानियें ।।५६६।।

।। ब्रह्म कौ सवैया ।।

पूत कपूत कुलछिनी नारि लराक परौसी लजावन सारौ ।
भाई वटोहित प्रोहित लंपट चाकर चोर अतीत धुतारौ ।।
साहिव सूंम अराक तुरंग कसान कठोर दिवानन कारौ ।
व्रह्म भनें सुनि ये नर नाइक बारौं ही बाधि समुद्र मैं डारौ ।।५६७।।

अथ विकल्प

उह अथवा यह या रीति सौं कहियै, सो बिकल्प ।

भा०

करि है दुष कौ अंत सषि, जमकै प्यारौ कंत ।।५६८।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

कै उह बसंत बहार की, प्रफुलित नूतक तार ।
कै निरषत हरषत हियौ, यह धुरवनि की धार ।।५६९।।

का०

।। कवित्त ।।

कृष्ण जू तिहारे आगें लषहू चौरासी बेष,
नट लौं मैं तेरे रीझिवे के हेत आनें हैं ।
केते बेष षेचर के केते वेष भूचर के,
केते वेष नीरचर हू के पहचाने हैं ।।
केते वेष नीचे सिर केते बेष ऊंचे सिर,
उलटि पलटि ह्वै कें केते दरसाने हैं ।
यातें रीझि मौज दीजै नां तौ मोहि मनें कीजै,
द्वै मैं एक कीजं आप जैसी मन मानें है ।।५७०।।

[कवित्त]

दीजियै कमंडल के राज मही मंडल को,
दीजियै तुरंग कै कुरंग छाला कटि कौं ।
दीजं गजराज कै बिराजिवे कौं वृंदाबन,
दीजियै निवास कै अवास गंगा-तट कौं ।।
कंचन सिंघासन कै बाघंबर आसन कै,
चंदन चढ़ाऊं कै बिभूति लाऊं घट कौं ।
मांनिये अरज मेरी बांकरै बिहारी लाल,
द्वै मैं एक कीजियै परघोंन बीच भट कौं ।।५७१।।

निपट

[कवित्त]

भूष लागै प्यास लागै घाम जल सीत लागै,
मो पै नांहि मिटै प्रभू मिटै तौ मिटाइयै ।
चाहै देह दीजै चाहै लीजै देह आपुनी कौं,
निपट निरंजन जू अंत न डुलाइयै ।।
रावरौ भिषारी ह्वै कैं कौंन पै हौ मांगौं भीष,
भीष यह मांगौं मो पैं भीष न मंगाइयै ।
साधनि कौं सिद्धनि कौ संत औ महंतनि कौं,
जौ लौं जीवै जीव तौ लौं जीवका तौ चाहियै ।।५७२।।

मुकंद

कै इत अंजै आप कै, लीजै मोहि बुलाइ ।।५७३।।

अथ कारक दीपक

एक मैं अनेक भाव क्रम सौं जहां हौंइ, सो कारक दीपक ।

भा०

जाति चितै आवति हसति, बूझति बात बिबेक ।।५७४।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

पिय-बियोग चहु ओर लषि, चपला तमक समेत ।
छीन होति छिन छिन तिया, रिसति नैंन भरि लेति ।।५७५।।

अ०क०

[दोहा]

चंचल बाल सषीनि मैं, बिलसति हसति लजाति ।
गावति अँडावति चलति, पिय तन चितवति जाति ।।५७६।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

गहि गहि लेत पिय हिय सौं लगाय तिय,
ससकति जाति पुनि जिय ललचाति है ।
सेज मैं बिराजै नाथ साथ इतराति बत—
-राति तुतराति अंगराति अरसाति है ।।
नांही नांही करै सौंहैं देत हाहा षाति अन-
-षाति अकुलाति रसमांती न समाति है ।
हसति डराति नीबी षोलति लजाति कर,
ठेलति सिराति सतराति कतराति है ।।५७७।।[1]

केसव

चोरि चोरि चित चितवति मुष मोरि मोरि,
काहे तें हसति हिय हरष बढ़ायौ है ।।इत्यादि।।[५७८]

---

1. अलबर-प्रति में इस कवित्त के उपरान्त दूलह का यह कवित्त और है, किन्तु अन्तिम चरण नहीं है ।

बोलत मैं नांहीं पर षोलत में नाही कवि,
दूलह उछाही कला लाषनि लषाई हैं ।
चुंबन में नाहीं परिरंभन में नाहीं सब,
हास और विलासनि में नांहीं ठीक ठांहि है ।
मेल गल वांही केलि कीनी मनभांई यह,
हां तै भलो नाही कहां तें सीखि आई है ।

अथ समाधिक्य

और कारण मिलि कें कारज सुगंम हीं होइ, सो समाधिक्य ।

भा०

उत्कंठा तिय कौं भई, अथयौ दिन उद्दोत ।।५७९।।

सो[मनाथ]

[दोहा]

निरषन कौं तिय बदन दुति, पठई दीठि मुरारि ।
उत व्हां त्रि-बिधि समीर नें, घूंघट दियौ उघारि ।।५८०।।

अ०भा०

सूंने घर दंपति मिले, ज्यौं घन तम छय आइ ।।५८१।।

अ०क०

[दोहा]

लाल मिलन कौं होति ही, तिय तन अधिक अधीर ।
तब ही टरि कितहूं गई, सब गुरजन की भीर ।।५८२।।

।। राजा नागरीदास कौ सवैया ।।

भादौ की कारी अँध्यारी निसा झुकी बादर मंद फुंहीं बरषावें ।
स्यांमा जू आपुनी ऊंची अटा पें छकी रस मीत मलारहि गावें ।।
ता समैं नागर के द्रग दूरि तें आतुर रूप की भीष यौं पावें ।
पौंन मया करि घूंघट टारें दया करि दामिनी दीप दिषावें ।।५८३।।

अथ समाहित

कारण तैं कारज क्यौं हूं उतपन्न होइ नही तब दैव जोग तैं होइ, सो समाहित ।

केसव

[कवित्त]

छबि सौं छबीली वृषभान की कुमारि आज,
रही हुती रूप मद मान मद छकिकैं ।
मारहू तैं सुकुमार नंद कौ कुमार ताहि,
आयौ री मनावन सयान सब तकिकैं ।।
हसि हसि सौंहैं करि करि पाय परि परि,
केसौराय की सौं जब रहे जिय जकिकैं ।
ताही छिन उठे घन घोरि घोरि दामिनी ज्यौं,
लागी घनस्याम जू के उर सौं लपकिकें ।।५८४।।

अथ प्रत्यनीक

अरि सौं बसाय नही तब अरि की पक्ष के कौं दुष दीजं, सो प्रत्यनींक ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

जब न बसानो पथ सौं, औसर हिये बिचारि ।
भारत मैं अभिमन्य कौं, लियौं सबनि मिल मारि ।।५८५।।

मुकंद

रवि सौं चलै न चंद की, कंज प्रभा हरि लेत ।।५८६।।

अ०क०

[दोहा]

तो पर जोर चल्यौ न कछु, निबल अपनपौ मांनि ।
केलनि कौं तोरत करी, जंघनि की सम जानि ।।५८७।।

अ०भा०

जानि अजित द्रग अनुग श्रुति, कंजनि निज तर कीन ।।५८८।।

।। दयानिधि कौ सवैया ।।

रावरे रूप सौं जीत्यौ है काम औ चंद जित्यौ मुष चंद की बानि कैं ।
प्यारे तिहारे सिधारे पैं ए अब दोऊ मिले इक मो पर आनि कैं ।।
जौन्ह की पैंनी कृपान निकारि कैं फूल के चाप मैं बांन कौं तानि कैं ।
राषहु बेग दयानिधि केसव मारत हैं मुहि तेरी यै जानि कैं ।।५८९।।

अथ काव्यार्थापति

बिसेष कौ निदरि कें अरु सामान्य की बूझिये नही, सो काव्यार्थापति ।

भा०

मुष जीत्यौ वा चंद सौं, कहा कमल की बांन ।।५९०।।

अ०भा०

तुव कटाछ सर मदन के, जिते कहा सर आन ।।५९१।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

हारि मानि अमरेस हू, हरि के परसे पाय ।
औरनि की चरचा कहा, जो बनियें बनाय ।।५९२।।

अ०क०

[दोहा]

गति तें जीते हंस हैं, कौंन करी मद धाम ।
रति जीती तें रूप तें, कहा जगत की बाम ।।५९३।।

अथ काव्य-लिंग

अर्थ को समर्थन जुक्ति सौं कीजै, सो काव्य-लिंग ।

तो कौं मैं जीत्यौ मदन, मो हिय मैं सिव सोइ ।।५९४।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

रे घन अब न बसाइगी, जिन सोषे तुव सोत ।
सो मैं पूजे प्रीति करि, भये अगस्त उदोत ।।५९५।।

अ०क०

[दोहा]

अनियारे हैं ही बहुरि, काजर लागी दैंन ।
नायक मन बस करन कौं, लायक तेरे नैंन ।।५९६।।

अ०मा०

क्यौं जीतैगौ बिरह-तम, चंद-मुषी मो चित्त ।।५९७।।

अथ काव्यप्रकास के मत कौ काव्य-लिंग

सो०[मनाथ]

[दोहा]

पद समूह कौ हेत जहं, होत कबित्त मैं आइ ।
कै प्रति पद कौ हेत यौं, काव्य-लिंग द्वै भाय ।।[५९८]

अथ पद समूह कौ हेत

सो०[मनाथ]

[दोहा]

चैत चांदिनी कमल बन, कोकिल तृबिध समीर ।
सबै हितू बैरी भये, बिछुरत ही बलबीर ।।५९९।।

इहां एक तुक मैं हेतु 'बलबीर कौ बिछुरिबौ' ।

ध्रुवदासजू[1]

[दोहा]

चंदन चंद समीर बन, कंज कपूर समेत ।
सब दिन तौ इन सुष दियौ, तुम बिन अब दुष देत ।।६००।।

इहां हेतु 'राधाजू कौ मांन करिबौ' ।

---

1. अलवर-प्रति में ध्रुवदासजू का यह दोहा नहीं है ।

अथ पद पद कौ हेतु

सो०[मनाथ]

[दोहा]

षिले कमल निबरी निसा, करत मधुप मधु-पांन ।
चकई हरषी निरषि रबि, तउ ललचात सुजान ।।६०१।।

इहां 'कमल षिलिबे' कौ हेतु 'निसा निबरिबे' कौ हेतु 'चकई हरषिवे कौ हेतु 'रबि निरषिबौ' ।

अथ द्वि-बिधि अर्थांतर न्यास

बिसेष कहि कें अरु सामान्य सुभाव तें द्रढ़ कीजै, सो प्रथम । बडे के संग तें छोटे की बडाई होइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम अर्थांतर न्यास(भा०)

रघुवर के गिरवर तरे, बडे करें न कहा सु ।।६०२।।

अ०मा०

नाघ्यौ बारिधि पवन सुत, कहा समरथ के लेष ।।६०३।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

बसन चोरि हरि द्रुम चढें, पुनि बनी बैंठे साह ।
कहा न करि है ए सषी, प्रगट भयें हित चाह ।।६०४।।

अ०फ०

[दोहा]

राधे आधे द्रगनि तें, मौहन लीनें मोहि ।
रूप भरी अति गुन भरी, कहा कठिन है तोहि ।।६०५।।

॥ नंददासजू कौ कवित्त ॥

जमुना मैं जल-केलि करत कुवर कान्ह,
ग्रैसी छबि देषि देषि जिय जीजियत हैं ।
तीर ठाढ़ी रही कोऊ नवल नउढ़ा तिय,
पिय व्रजचंद कौं अनंद दीजियत हैं ।।
सषिन पकरि बारि मांझ डारि दीनी वाल,
भीत भरी नैंन मन मांझ षीजियत हैं ।
नंददास प्यारे कौं यौं धाय लपटानि उह,
बिपति परें न कहा कहा कीजियत हैं ।।६०६।।

अथ द्वितिय अर्थांतर न्यास

अ०क०

[दोहा]

चली चली तू इहि गली, अली कढ़ी कहु आइ ।
तरवनि तर की रज पिया, नैंननि लई लगाइ ।।६०७।।

वृंद

ढाक पात संग पान कें, चढ्यो छत्रपति हाथ ।।६०८।।

।। व्यास जू की साषि[1] ।।

वृंदावन कौ चूहरा, आंन गांउ कौ भूप ।
वा की सरिबर को करै, वेचि षात है सूप ।।६०६।।

अथ विकश्वर

बिसेष कहि कैं फिरि सामान्य कौं बिसेष कहिये, सो बिकश्वर ।।६१०।।

भा०

हरि गिरि धारयौ सन पुरुष, भार सहै ज्यौं सेस ।।६११।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

राधे हरि हिय मैं बसी, रँगी रँगीले रँग ।
यही नेह की रीति है, हरि कैं तिय अरधंग ।।६१२।।

अथ दु-बिधि प्रौढ़ौक्ति

बडे अकारन के बिषैं कारण कौं कल्पित कीजै, सो प्रथम । बर्नन मैं अधिकायी को अधिकार होइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम प्रौढ़ोक्ति(भा०)

जमुना तीर तमाल से, तेरे बार असेत ।।६१३।।

1. अलवर-प्रति में 'व्यासजू की साखी' भी नहीं है ।

अथ क०

[दोहा]

अरुण सरस्वती कूल के, बंधु जीव के फूल ।
तैसेई तेरे अधर, लाल लाल अनुकूल ।।६१४।।

अथ दुतिय प्रौढ़ोक्ति(भा०)

केस अमावस रैंनि घन, सघन तिमिर के तार ।।६१४।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

श्री रघुबीर उदार जग, जाहर तेरे बान ।
तोरि जवर पाथर करी, करकैं भूमि निदान ।।६१५।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

मथि कैं सिंगार रस सार तैं निकारी सुधा,
ता कौ सार लै कैं तेरौ बचन सुधारचौ है ।
कदली के षंभ ज्यौं निचोरि कैं सुधाकर कौं,
ता कौ मध्य सार लै बसन सेत सारचौ है ।।
तिमिर के थार कौ झकोरि गुन तामस मैं,
ता कौ सार लै कैं केस पास यौं पसारचौ[1] है ।
प्यारी तेरौ रूप ऐसौ रचि कैं बिरंचि हाथ,
धोइ कैं कुमुद कंज पुंज विसतारचौ[2] है ।।६१६।।

1. अलवर-प्रति में 'विसतारचौ'; 2. 'प्रतिपारचौ'

[कवित्त]*

[1]बैंनी नैंन रोमावली या ही रंग कालिमां हैं,
कहत कलंक मृग जेते भोरे-बारे हैं ।
तरवा अधर एतौ अरुण बरण राजें.
सांझ समैं प्यारेलाल देषिये उघारे हैं ।।
चाहि कहा रहे हौ अकास के प्रकास हरि,
चाहौ किन जाहि जेवे जग उजियारे हैं ।
प्यारी कौं बनाइ बिधि धोये हाथ ता कौ रंग,
जमि भयौ चंदा हाथ झारे भये तारे हैं ।।६१७।।

अथ संभावना

ऐसौ होइ तौ ऐसें होइ यह क[ह]नौ, सो संभावना ।

ग्र०मा०

जौ तू सब तजि हरि भजै, तौ दुष रहै न कोइ ।।६१८।।

भा०

बक्ता हो तौ सेस तौ, कहतौ गुनहि अपार ।।६१९।।

प्र०क०

[दो]

उद्धव जौ हौं तौ कछू, ब्रज-वासिनि सौं प्यार ।
तौ मथुरा सौं आवते, कान्ह एक हू बार ।।६२०।।

---

*. अलवर-प्रति में यह कवित्त नहीं है ।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

जितै दीठि अटकी अली, तितही कियौ पयान ।
हम सौं ह्वौं तौ नेह तौ, इत आवते सुजान ॥६२१॥

मुकंद

[दोहा]

कहति रहति नित नेह सौं, सुनि असबेली बाल ।
आज चलै जौ कुंज मैं, तौ तोहि मिलऊं लाल ॥६२२॥

का०

[दोहा]

दुष मैं तौ हरि कौं भजै, सुष मैं रहै जु सोइ ।
जौ सुष मैं हरि कौं भजै, तौ दुष काहे कौं होइ ॥६२३॥

का०

॥ कवित्त ॥

सुनहु सुजान उह बावरौ बिरंचि बिधि,
मैं हूं हुतौ तौ पैं बिधि ऐसी ही बनावतौ ।
मृगनि की नाभि पै जु कीनौं मृग-मद गंध,
सो तौ षल रसना पै नीकें कें सुहावतौ ।
सागर के पांनी कौ करतौ सुधा सौ सुधाकर,
कौ कलंक लै कें पांनी मैं वहावतौ ।
तरुनी तिया को नव जोवन मैं प्रीतम सौं,
कबहूं न कैसें हू बियोग हौं न पावतौ ॥६२४॥

राजा नागरीदास

[कवित्त]

कीरति दारानी व्रषभान आदि गोप गोपी,
कै सें धन्य धन्य ह्वै कें जग जस पावते ।
कौंन तप करतौ या व्रजबास बसिवे कौ,
कौंन बैंकुंठ लौं के सुष बिसरावते ।।
नागरि या राधिका जू प्रगन होती जौ पै स्यांम,
पर बाम हूं के बिपती कहावते ।
छाय जाती जडता बिलाइ जाते कबि सब,
जरि जातौ रस तौ रसिक कहा गावते ।।६२४।।

केसव

[सवैया]

बोलिबौ बोलनि कौ सुनिबौ अवलोकनि कौं अवलोकति जो तैं ।
नांचिबौ गाइवौ बेंन बजाइवौ रीझि रिझाइबौ जानति तोतैं ।।
राग बिरागनि के परिरंभन हास बिलासनि त्यौं रति को तैं ।
तौ मिलतौ हरि मित्रहि को सषि अैसे चरित्र जो चित्र मैं होतैं ।।६२५।।

।। कवित्त ।।

दोष दुष दूरि तहू दूरि दौरि दूरि है रे,
कोटिक जनम के कलंक कोटि कटि हैं ।
अैहै सब संपति बढ़ै है अति ही उमंग,
लै है पद उच्च श्री गुविंद के निकट है ।।
घरी घरी घन बरसै है घनें आनंद के,
सोभा सरसै है प्रेम पूरन प्रगटि है ।
पै है सुष साधा जग सुजस अगाधा ह्वै है,
बाधा मिटि जै है जौ तू राधा रटि है ।।६२६।।

अथ मिथ्याधिवसित

एक झूंठ के लियें अनेक झूठ कहियै, सो मिथ्याधिवसित ।

भा०

कर मैं पारद जौ रहै, करै नऊढा प्रीति ।

अ०क०

[दोहा]

द्वै कमलनि पर चरन धरि, चढ़ी नदी ह्वै पार ।
मुग्धा सौं कीनी सुरति, मोहित करि तिहि बार ।।६२७।।

मुकंद

सीलवंत औगुन गहै, तौ गुन गहै गुलाम ।।६२८।।

।। चंद कौ कवित्त ।।

महाराज तेरी सब कीरति बषानैं कबि,
चंद यह केवल अकीरति बषानै हैं ।
आंधरे नें देषि देषि हम कौं बताइ दई,
बहिरे नें सुनि जैसी हम हूं प्रमानैं हैं ।।
कछू पीके दूध ही के सागर पें ताके गीत,
बांझ सुत गूंगे मिलि गावत यौं जाने हैं ।
तापें केते बडे सस श्रृंग के धनुष वारे,
रीझि रीझि तिन्हैं मौज दै कें सनमाने हैं ।।६२९।।

अथ ललित

प्रस्तुत कौ बिंब अप्रस्तुत कहियै, सो ललित ।

भा०

सेतु बांधि करि है कहा, अब तौ उतरचौ अंबु ।।६३०।।

अ०क०

[दोहा]

ग्रीषम दियौ बिताइ कें, एरी मेरी बीर ।
बरणावति पावस समैं, अब यह महल उसीर ।।६३१।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

पिय जोबन के अमल मैं, द्रग छकि रहे निदान ।
जुलम करत डरपत न ए, क्यौं लहियत मद पानि ।।६३२।।

अ०मा०

काजर दै करि है कहा, तिय तव द्रग अति स्याम ।।६३३।।

अथ त्रिविधि प्रहर्षन

बिना जतन बांछित फल की प्राप्ति होइ, सो प्रथम । बांछित हू तैं अधिक फल श्रम बिना लहियै, सो दुतिय । सोधन कौ जतन करत ही बस्तु प्राप्ति होइ, सो तृतीय ।

अथ प्रथम प्रहर्षन

जाकौं चित चाहत सु तौं, आई दूति होइ ।।६३४।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

व्याकुलता प्रगटी महा, ग्रीषम के दुष-दंद ।
नैननि सुभ्रा तृषा भई, तब ही दरस्यौ चंद ।।६३५।।

अ०क०

[दोहा]

अली सहज ही बनि गयौ, जो मन हुतौ बिचार ।
उहीं भांवते बांह गहि, करी नदी कैं पार ।।६३६।।

मुकंद

चित मैं चाह भई तबै, तुमहि मिले पिय आनि ।।६३७।।

।। कवित्त ।।

हसत षेलत षेल मंद भई चंद दुति,
कहति कहानी अरु बूझति पहेली जाल ।
केसौदास नीद बस आप आपने घरनि,
हरें हरें उठि गई बालिका सकल बाल ।।
घोरि उठे गगन सघन घन चहूं दिसि,
उठि चले कान्ह धाय बोलि उठि तिहि काल ।
आधि राति अधिक अँध्यारे मांझ कैसें जै हौं,
राधिका की आधी सेज सोइ रहौ प्यारे लाल ।।६३८।।

सुंदर

॥ सवैया [1]॥

लोग बरात गये सिगरे तुम राति-जगे कौं चली सब कोऊ ।
सुंदर मंदिर सूंनौं जु है इहां को रषवारी है ताहि न जोऊ ॥
सास कही तब ही लषि ही लहुरी दुलहि घर ही इहि सोऊ ।
फूलि गये सुनि बात यौं गात समात न कंचुकी मैं कुच दोऊ ॥६३९॥

अथ दुतिय प्रहर्षन(भा०)

दीपक कौ उद्दम कियौ, जौ लग उदयौ भांनु ॥६४०॥

अ०क०

[दोहा]

अरे चितरे मित्र कौ, अब ही लिषि दै चित्र ।
कह्यौ तिया तव ही दियौ, दरसन प्यारे मित्र ॥६४१॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

चिवुक छियौ चाहत हुते, नव तिय की हरि आज ।
भेटी भुज भरि आपु तें, सुवह सहित सुष साज ॥६४२॥

1. अलवर-प्रति में इस सवैया का प्रथम चरण देकर इत्यादि लिख दिया है । अनेक स्थानों पर इस प्रकार के 'इत्यादि' की आवृत्ति हुई है ।

देवी[दास]

॥ कवित्त ॥

जलद सौं तीन चार बूंदनि की चातक नैं,
चित चाहि टेरि टेरि कें गुहार करी है ।
त्यौं हीं दिसि ही तें उमडि घुमडि घन
आये इक छिन हीं मैं घटा नभ ढ़री हैं ॥
बरसन लाग्यौ इकटक ह्व मुसलधार,
जल कौन पार सब नद नदी भरी हैं ।
बडे कौ बिचार कहा कीबौ करौ देबीदास,
छोटे के जनम सो न बडेनि को घरी है ॥६४३॥

अथ तृतीय प्रहर्षन(भा०)

निधि अंजन की औषधी, सोधत लही निदान ॥६४४॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

परसौं ते ढूंढत हुती, घर बन हरि कें हेत ।
सो मैं पाये आज अब, हिरदं भयौ सचेत ॥६४५॥

अ०क०

[दोहा]

पिय आवन हित पथिक सौं, कहन लगी समुझाइ ।
तब ही चल्यौ बिदेस तें, मिल्यौ भावतो आइ ॥६४६॥

अथ बिषाद

चित्त की चाह तें बिपरीत बस्तु की प्राप्ति होइ, सो बिषाद ।

भा०

नीबी परसत श्रुति परी, चरणायुध धुनि आइ ।।६४७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

राज लहन अभिलाष जिय, पहुँचे पितु के पास ।
सुत सनेह तजि रांम कौ, उन दीनौं बनबास ।।६४८।।

अ०क०

[दोहा]

दिन हीं मैं निसि मिलन कौ, कियौ मनोरथ बाल ।
सांझ होत परदेस कौं, चल्यौ भांवतौ लाल ।।६४९।।

का०

।। सोरठा ।।

ए आये घनस्याम, काहू कह्यौ पुकारि कैं ।
बिहसति निकसी बाम, देषत दुष दूनौं भयौ ।।६५०।।

बिहारी

[दोहा]

कन देवौ सौंप्यौ ससुर, वहू थुर हथी जानि ।
रूप रह चटें लग लग्यौ, मांगन सब जग आनि ॥६५१॥

मुकंद

॥ सवैया ॥

चंड लगी रबि की किरनें षलुआट की टाटि मुकंद तचावै ।
सो श्रम मेटन कौं तकि छांह सु बिल्ल के वृछ तरें चलि आवै ॥
त्यौं फल ऊंचे तें टूटि महा सिर पैं परि फूटि कें सब्द सुनावै ।
भाग बिना नर सुष्ष कौ धावै पै दुष्ष दई तिहि दूनों दिषावै ॥६५२॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

नीकें मधु पीकें मत्त मधुप सरोज ही मैं,
रुकि गयौ जब लुकि गयौ दिनमनि है ।
जानी जो है राति ह्वै है प्रात सरद सै है रबि,
बिकसै है कंज तबही तौ निकसनि है ॥
एतें गज आयौ उह पंकज उषारि षायौ,
भयौ भायौ बिधि कौ किसन ध्यांन धनि हैं ।
यातें बहुतेरी भैया चाहत बनायौ तू तौ,
तेरी बनाई बनें बनि है सो बनि है ॥६५३॥

अथ चतुर्विधि उल्लास

एक के गुन तें और कौं गुन होइ, सो प्रथम । एक के दोष तें और कौं दोष होइ. सो दुतिय । एक के गुन तें और कौं दोष होइ, सो तृतीय । एक के दोष तें और कौं गुन होइ सो चतुर्थ ।

अथ प्रथम उल्लास

न्हाय संत पावन करैं, गंध धरैं यह ग्रास ।।६५४।।

अ०मा०

साध संग तें जन भये, पावन करत निवास ।।६५५।।

।। सवैया ।।

मत्त गयंदनि साथ सदा इन थावर जंगम जूथ बिदारचौ ।
ता दिन तें कहि केसव वेधन बंधन दं बहुधा बिधि मारचौ ।।
सो अपराध निवारण काज यही इन साधन सिद्धि बिचारचौ ।
पावन पुंज तिहारौ हियौ यह चाहत है अब हार विहारचौ ।।६५६।।

निपटनि गंध यहै हार बंधु जीव कौ सु,
चाहत सुगंध भयौ नेंक ग्रीव बनाइये ।।६५७।।

आकहू ढ़ाक करीर वँबूर सबै मलयाचल या चल चंदन कीनें ।।६५८।।

अ०क०[1]

[दोहा]

बंधु जीव की माल यह, नेंक पहरि लै वाल ।
चाहति ही न सुगंध यह, तो तन परसि रसाल ।।६५९।।

1. अलवर प्रति में यह दोहा इस स्थान पर नहीं है, अन्यत्र है । स्थानों का फेर-वदल कई अन्य प्रसंगों में भी देखा गया ।

का०

[दोहा]

कहा न ह्वै सतसंग तें, देषौ तिल अर तेल ।
मोल तोल सब बढ़ि गयौ, पायौ नाम पुलेल ॥६६०॥

अथ दुतिय उल्लास(अ०मा०)

महि बिकार तें षार जल, भयौ सुनहु कवि लोइ ॥६६१॥

तुलसीदासजू

महिमा घटी समुद्र की, सवरण वस्यौ परौस ॥६६२॥

अ०क०

[दोहा]

रही मनाइ मनें नहीं, मांनीं नंदकिशोर ।
लै कठोरता स्याम की, मैं हूं हौहु कठोर ॥६६३॥

॥ क० कवित्त ॥

सरल सौं सठ कहैं बक्ता सौं धीठ कहैं,
बिनै करै तासौं कहैं धन कौ अधीन है ।
छमी सौं निबल कहैं दमी सौं अदत्ती कहैं,
मधुर बचन बोलैं तासौं कहैं रीन हैं ॥
दाता सौं दंभी निस्प्रेही सौं गुमानी कहैं,
तृष्णा घटावै तासौं कहैं भाग्यहीन है ।
नीके गुन देषे तौऊ औगुन लगाइ देत,
यातें कछू दुज्जन को हृदै ही मलीन है ॥६६४॥

॥ सवैया ॥

आनँददायक चंदन मित्र बसै जिनि ह्यां यौं गुबिंद बिचारैं ।
या बन मैं दुरबस कठोर असार हुदै इन की बढ़वारैं ॥
सो सब आपस मैं मिलि कैं अति ज्वाल की झाल कराल निकारैं ।
हैं मति-मंद सुगंध न लैं अपनें कुल कौं पुनि और कौं जारैं ॥६६५॥

अथ तृतीय उल्लास

भई मलिन प्यारी जदपि, सुघर सौति सुनि कांन ॥६६६॥

अ०क०

[दोहा]

लाज चतुरई सील जुत, तिय गुन रूप निदान ।
एते पैं रीझत नही, पिय हिय मैं न सयान ॥६६७॥

मुकंद

उदै होत ही सूर कैं, चंद मलिन दुति होति ॥६६८॥

विहारी

[दोहा]

देह दुलहिया की बढ़ै, ज्यौं ज्यौं जोबन जोति ।
त्यौं त्यौं लषि सौतैं सबै, बदन मलिन दुति होति ॥६६९॥

ज्यौं ज्यौं जोवन जेठ दिन, कुच नितंब सरसाति ।
त्यौं त्यौं छिन छिन कटि छिपा, छीन परति नित जाति ॥६७०॥[1]

---

१. असबर-प्रति में केवल एक दोहा है, यह दूसरा दोहा नहीं है ।

अथ चतुर्थ उल्लास(अ०मा०)

निसा धरति तम घोर पै, चंदहि करति प्रकास ॥६७१॥

अ०

[दोहा]

तुम तीषी चितवनि चितैं, करी जाहि बेहाल ।
लाभ यही जीवति रही, उह ललना नंदलाल ॥६७२॥

मुकंद

कटुम सहित रावण हत्यौं, मिल्यौ बिभीषण राज ॥६७३॥

अथ अवज्ञा

एक कौ गुन दोष और कौं नही लगै, सो अवज्ञा ।

भा०

परस सुधाकर किरनि कैं, कुलै न पंकज कोस ॥६७४॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

निसि वासर तरुनीनि मैं, बिहरै परगट गोय ।
सूरबीर नर नैंक हू, हियैं न कायर होइ ॥६७५॥

का०

धिक सुमेर तोहि कनक तन, पाहन सब परिवार ॥६७६॥

विहारी

राषहु मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध ।।६७६।।

सब करि हारी सुर नारी यौं गुविंद कहैं,
तदपि पुरारी कौ बिकारी चित्त ना भयौ ।।६७८।।

तुलसीदासजू

फूलै फलै न बेत, जदपि सुधा बरषैं जलद ।
मूरष हृदै न चेत, जौ गुरु मिलै बिरंचि सत ।।६७९।।

रूपे के सैलधिकार है तोहि धिकार ही कंचन मेरु कौं दीनें ।
संग जिते तरु ते तरु हैं गुन रावरे नेंक लगै न नवीनें ।।६८०।।[1]

अथ अनुज्ञा

दोप कौं गुन मानि लीजै, सो अनुज्ञा ।

भा०

होहु बिपति जामैं सदा, हिय चढ़त हरि आनि ।।६८१।।

---

1. अलवर प्रति में यह दोहा तुलसीदासजू के सोरठे के साथ नहीं है—

जोधपुर-प्रति में यह तुलसीदासजू के सोरठे के साथ मिलाकर लिखा गया है जो ठीक प्रतीत नहीं होता।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

बिरह दियौ सु भली करी, हमहि छबीले लाल ।
टरै न छिन भरि द्रगनि तै, उनकौ रूप रसाल ।।६८२।।

अ०मा०

सषि द्रग होहु निलज्जता, जौ हरि दरसन होइ ।।६८३।।

अ०क०

[दोहा]

उद्धव बिछुरन ही भलौ, मिलन चहत हम नांहि ।
नंद दुलारौ सांवरौ, सदा बसै मन मांहि ।।६८४।।

देव

लाज के ऊपर गाज परौ व्रजराज मिलैं सोइ लाज करौ री ।।६८५।।

जगजीवन

।। कवित्त ।।

दूनौं भलौ सुपथ कुपथ पैं न ऊनौं भलौ,
सूनौं भलौ घर पैं न षल साथ करियै ।
अनल की लपट झपट भलो नाहर की,
कपटी के कपट सौं दूरि ही तैं डरियै ।
यह जगजीवन परम पुरुषारथ है,
पर घर पैसि पुनि रस सौं निकरियै ।।

हारि मानि लीजै पै न कीजै वाद मूरष सौं,
सरबसु दीजं पें न परबस परियै ।। ६८७।।[1]

अथ लेष दु–बिधि

गुण मैं दोष की कल्पना कीजै, सो प्रथम । दोष मैं गुण की कल्पना कीजै, सो दुतिय ।

अथ प्रथम लेष (भा०)

सुक यह मधुरी बांनि तैं, बंधन लह्यौ बिसेष ।।६८८।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सुनहु सयानें छीर निधि, बचन चारु चित लाइ ।
रतननि संग्रह ते सुरनि, उदर मथ्यौ तब आइ ।।६८९।।

अ०क०

[दोहा]

सुष सौं दध बेचति फिरैं, और सवै व्रज-बाल ।
घेरि रहे हरि मौंहि यह, रूप भयौ जंजाल ।। ६९० ।।

अ०मा०

मधु बच सषि सुक पिंजरा, काक सुछंद बिहार ।। ६९१ ।।

1. अलवर-प्रति में निपट की तुक और है—

तो सौ उजियारो प्रभु मोसो न पतित भारो
मोहि जिनि तारो वईकुंठ लौं विगारोगे ।

निपट

॥ कवित्त ॥

हांसी मैं विषाद बसै बिद्या मैं बिबाद बसै,
भोग मांहीं रोग और सेवा मांही दीनता ।
आदर मैं मान बसै सुचि मैं गिलानि बसै,
आंवन मैं जान बसै रूप मांहि हीनता ।
जोग मैं अभोग औ संजोग मैं बियोग बसै,
पुन्य मांहि बंधन औ लोभ मैं अधीनता ।
निपट निरंजन प्रवीननि ए बीनि लीन,
हरिजू सौं प्रीति सबही सौं उदासीनता ॥ ६९२ ॥

देव

[कवित्त]

देषैं अनदेषैं सुषदाइ भये दुषदाइ,
सूषत न आँसू सुष सोइबौ तरैं परचौं ।
पानी पान भोजन सदन गुरजन भूल्यौ,
देव दुरजन लोग हसत षरैं परचौ ॥
कौंन पाप लाग्यौ पल एकौ न परति कल,
दूरि गयौ गेह न यौ नेह नियरैं परचौ ।
हौं तौ जौ अजान जौ पै जानतौ एती बिथा,
ए रे जिय जान तेरौ जानिबौ गरैं परचौ ॥ ६९३ ॥

अथ दुतिय लेष

[दोहा]

रिस सौं गोरे बदन पर, भई अरुनई आइ ।
यह छवि मानिनि की रही, पिय हिय मांहि समाइ ॥ ६९४ ॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

आप कलंकी ह्वै रह्यौ, मृग कौ दियौ अनंद ।
निपुन बचन प्रतिपाल कौ, अजहु कहावत चंद ।। ६९५ ।।

मुकंद

[दोहा]

हौं सब देषौं मोहि कौं, उनहि देषे इहि काल ।
तुव प्रसाद हौं सिद्ध भौ, नमो दरिद्र दयाल ।। ६९६ ।।

पृथ्वीराज राजा

[दोहा]

कोटि कोटि सज्जन करौं, या दुरजन की भेट ।
रजनी कौ मेला कियौ, बिधि के अच्छर मेटि ।। ६९७ ।।

का०तु०

भोर को भांवतो भूषो हुतो सुभली करी तैं नैं हाहा तौ षवाई ।। ६९८ ।।

अथ मुद्रा प्रस्तुत

प्रस्तुत पद मैं और ही अर्थ प्रकास करै, सो मुद्रा प्रस्तुत ।।

भा०

अली जाय किन पिय जहां, जहां रसीली बास ।।६९९।।

अ०क०

होइ बावरी जौ सुनै, बंसी नाद रसाल ।।७००।।

सो०[मनाथ]

लाल लसति जिहि ठौर जह, नव मनि वनी बनाइ ।।७०१।।

अथ रत्नावली

प्रस्तुत अर्थ के और ही नांम जहां क्रम सौं हौंइ, सो रत्नावली ।

भा०

रसिक चतुर तुव भूमि पति, सकल ज्ञान कौ धाम ।।७०२।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

असुर बिदारण तुम सदा, सिय नायक रणधीर ।
दीन दुष हरण कलपतरु, दया सिंधु रघुबीर ।।७०३।।

अ०क०

[दोहा]

बानी बिधि कमला रवन, गौरी सिव अभिराम ।
तुम हीं सीता राम हौ, तुम राधा घनस्यांम ।।७०४।।

मुकंद

[दोहा]

कुवर किसोरी लाडिली, श्री वृषभान कुमारि ।
प्रीतम प्यारी रसिकनी, त्रि-भुवन की सिरदारि ।।७०५।।

अथ तदगुन

अपनौं गुन तजि कैं अरु संगति कौ गुन लेइ, सो तदगुन ।

भा०

बेसरि मोती अधर मिलि, पदम राग छबि देइ ।।७०७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सरसति जानि सरीर पैं, रुचि सौं पहरी बाल ।
केसरिया रँग ह्वै रही, सेत कंचुकी लाल ।।७०८।।

विहारी

[दोदा]

अधर धरत हरि कैं परत, ओठ दीठ पट जोति ।
हरित बांस की बांसुरी, इंद्र-धनुष रँग होति ।।७०९।।

अ०क०

[दोहा]

मुकतामाल दई जु तुम, रुचि सौं पहरी बाल ।
तन दुति मिलि पुषराज की, भई माल नँदलाल ।।७१०।।

मतिराम

[दोहा]

तरुनि अरुन एडीनि के, किरनि समूह उदोत ।
बेंनी मंडन मुक्त के, पुंज गुंज रुचि होत ।।७११।।

।। कवित्त ।।

मोतिन को हार मैं सवारि दियौ प्यारी हाथ,
तव लग्यौ लालनि कौं बिन उपचार है ।
पहरचौ हरषि हिय हाटक कौ ह्वै रह्यौ,
हसै तें लस्यौ हीरनि कौ सरस सुढ़ार है ।।
अधरनि बिद्रुम द्रगनि छबि नीलमनी,
अंग अंग अंग और उदित अपार है ।
श्री गुबिंद नंद कौ कुमार रिझवार भयौ,
प्यार सौं निहारि बलिहारि बार बार है ।।७१२।।

।। का० सवैया ।।

बेले कौ हार दियौ गुहि मालिनि प्यारी के हाथ गुलाब दिपानौं ।
लायौ हिये तव चंपे कौ ह्वै गयौ मंद हसी तव कुंद कौ जान्यौं ।।
नेंननि कौ प्रतिबिंब परें गुल सोसन की दुति ह्वै गई मानौं ।
एतौ कछू पलट्यौ अँग मैं रंग देषत ही मन मेरौ बिकानौं ।।७१३।।

अथ अतदगुन

संगति भये तैं गुन नही लगै, सो अतदगुन ।

भा०

पिय अनुरागी ना भये, बसि रागी मन मांहि ।।७१४।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सिगरी निसि नव कंज मैं, कीनें रह्यौ निकेत ।
निरष्यौ तऊ भयौ नही, स्यामल मधुकर सेत ।।७१५।।

।। कवित्त ।।

चंदन की षौरि चारु अंग राग घनसार,
अंग अंग सुमन सिंगार मन मोहियै ।
मोतिनु मुकट धरें हीरनि के हार गरें,
पायजेव पाय निज रायनि के जोहिये ।।
चटक मटक पट पीत की फहरानि,
कहत गुबिंद उपमान आंन टोहिये ।
गोरिनु के रंग रंगे आठौं जाम घनस्यांम,
तौ हू घनस्यांमनि तें घने स्यांम सोहियें ।।७१६।।

केसौदास दिग्गज के बैठी मद पंक वीच,
नैंक हू न कारी भई कीरति महेश की ।।७१७।।

अथ पूर्व रूप दु-बिधि

संगति कौ गुन लेइ तजि कैं फिरि अपनौं ही लेइ, सो प्रथम । मिटिवे के उपाय कियैं हूं न मिटै, सो दुतिय ।

अथ प्रथम पूर्व रूप(भा०)

सेस स्यांम हों सिव गरें, जस तें उज्जल होत ।।७१८।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

चौकी हीरनि जटित पर, चरन धरैं नव नारि ।
लसी अरुण छबि हास तें, भई सेत उनहारि ।।७१९।।

अ०क०

[दोहा]

राधे तन दुति मिलि भये, तुम गोरे घनस्यांम ।
फिरि उन सौं अंतर भये, रहे स्याम के स्याम ।।७२०।।

का०

[दोहा]

अधरनि दुति बिद्रुम निरषि, नासा मुक्ता गुंज ।
रह्यौ जलज कौ जलज ही, हसति मालती पुंज ।।७२१।।

अथ दुतिय पूर्व रूप(भा०)

दीप मिटायें हूं कियौ, रस नामनि उद्दोत ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

बिरह तमैं तिय जानि कैं, व्यथा जौंन्ह की होति ।
दुरी सदन प्रगटी तऊ, अति सरीर की जोति ।।७२२।।

विहारी

[दोहा]

अंग अंग नग ज[ग]मगैं, दीप सिषा-सी देह ।
दिया बडायें हूं रहै, बडौ उजारौ गेह ।।७२२।।

वैठी हुती प्रभा भरी, बाल चांदिनी मांहि ।
ससि अथयें हूं रूप की, मिटि उज्यारी नांहि ।।७२३।।

का०तु०

ज्यौं ज्यौं प्यारौ करत अँध्यारी रस रंग हेत,
त्यौं त्यौं प्यारी करत उज्यारी बिहसानि तै ।।७२४।।

अथ अनगुन

संगति भये तें अपनौं हीं गुन सरसावै, सो अनगुन ।

भा०

मुक्त मालहि हास तें, अधिक सेत ह्वै जाइ ।।७२५।।

अथ क०

[दोहा]

गई चांदिनी बनक बनि, प्यासे प्रीतम पास ।
ससि दुति मिलि सौ गुन भयौ, भूषन बसन प्रकास ।।७२६।।

अ०मा०

प्रभु तव कीरति मिलि सरस, बिमल जौंन्ह दरसाति ।।७२७।।

तुलसीदासजू

[दोहा]

गृह गृहीत पुनि वात बस, ते पुनि बीछी मार ।[1]
ताहि पिवायें बारुणी, कहौ कवन उपचार ।।७२८।।

देबीदास

।। कवित्त ।।

पहलें तो बादर है बाय भरचौ बावरौ,
बीछू षायौ बूढ़ी वंस बुरौ बिकरार है ।
मदिरा हू प्यायें अरु बिजिया चवायें बीज,
बीसक धतूरे हू के षायें बेसुमार हैं ।।
ताहू पें कटाछि पाग्यौ डौलें भाग्यौ ताहि,
एते पर भूत लाग्यौ ग्रैसौ कु प्रकार है ।
देबीदास कहै ताकौं बंदन बुलावौ कोऊ,
करौ धौं बिचार या कौ कहा उपचार है ।।७२९।।

ग्रथ मीलित

सादृश्य तें भेद लषियै नही, सो मीलित ।

भा०

ग्ररुन वरन तिय चरन पर, जावक लष्यौ न जाइ ।[७३०]

1. ग्रलवर-प्रति में इस प्रकार दिया गया है—

गृहै नीच घरं वाय वस, ते पुनि बीछी मार ।

बिहारी

[दोहा]

मिलि परछांहीं जौन्ह मैं, रहे दुहुनि के गात ।
हरि राधा इक संग ही, चले गली मैं जात ।।७३१।।

मतिराम

होति न लषाइ निसि चंद की उज्यारी मुष-
चंद की उज्यारी तन छांहौं छिपा जाति है ।।७३२।।

मौंहन छबीले सौं मिलन चली अैसी छबि,
छांह ज्यौं छबीली छिपि जाति अंधियारी मैं ।

अथ सामान्य

साद्रस्य तें बिसेष जानि परै नही, सो सामान्य ।

मा०

नांहि फरक श्रुति कमल अरु, तिय लोचन अनमेष ।।७३३।।

बिहारी

[दोहा]

बरन वास सुकुमारता, सब बिधि रही समाइ ।
पषुरी लगी गुलाब की, गात न जानी जाइ ।।७३४।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

लषिये पिय निसि मैं नबल, कौतुक सुष सरसात ।
हिम कर अरु तिय बदन मैं, अंतर लह्यौ न जात ।।७३५।।

अ०मा०

जानैं जात न कमल अरु, तिय मुष सषि सरमांहि ।।७३६।।

अथ उन्मीलित

साद्रस्य तैं भेद फुरै, सो उन्मीलित ।

भा०

कीरति आगैं तुहि न गिरि, छियें परत है जानि ।।७३७।।

विहारी

[दोहा]

दीठि न परत समान दुति, कनक कनक से गात ।
भूषण करकस लगैं, परस पिछानैं जात ।।७३८।।

कहि लहि कौंन सकै दुरी, सौं न जाइ मैं जाइ ।
तन की सहज सुबासना, देती जो न बताइ ।।७३५।।

मिलि चंदन बेंदी रही, गोरे मुष न लषाइ ।
ज्यौं ज्यौं मद लाली चढ़ै, त्यौं त्यौं उघरति जाइ ।।७३६।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

कैसें वरनौं रंग सुनि, प्रीतम नंदकुमार ।
झनकत जान्यौं तिय हियें, सुबरन हिम कर हार ।।७३७।।

चंद्रहार

अ०क०

[दोहा]

भूषन सुवरन तन बरन, मिलि लषाइ हैं नांहि ।
परस कियें कोमल कठिन, एरी जांनें जांहि ।।७३८।।

।। का० कवित्त ।।

तन की गुराई तरुणाई की निकाई छाई,
जाकी उजराई तें उज्यारी हू लजाति है ।
सरद निसा मैं प्यारी उज्जल सिंगार साजें,
गज-गमनी की नीकी सोभा सरसाति हैं ।।
चली अनुरागी मन मौंहन के मिलिबे कौं,
चांदिनि मैं मिलि गई क्यौं हू न लषाति है ।
लपट सुगंध की अछेह उपटति अंग,
ताही की तरंग लगी सषी संग जाति है ।।७३९।।

अथ बिसेष

समता मैं बिसेष फुरै, सो-बिसेष ।

भा०

तिय मुष अरु पंकज लषैं, ससि दरसन तें सांझ ।।७४०।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

विमल बरन सब एक से, नीर निकट रहे ठांनि ।
बगुलनि संग सुत हंस के, लिये चलन तैं जानि ।।[७४१]

बिहारी

[दोहा]

रंच न लषियत पहरियत, कंचन सेत न बाल ।
कुमिलानी जानी परति, उर चंपे की माल ।।७४२।।

अ०क०

[दोहा]

सर मैं कमलनि मधि बदन, तिय कौ परत न जानि ।
मुसकावनि लावन्यता, बतरावनि पहिचानि ।।७४३।।

देवीदास

।। कवित्त ।।

मांथौ बन्यौं मुह बन्यौं मूंछ बंनी पूछ बनी,
लाघव वन्यौं हैं सब बाघ सम तूल कौं ।
रंग्यौ चंग्यौ अंग बन्यौं लांक बनी पंजा बने,
कृतृम बन्यौं है सब सिंघ ही के मूल कौ ।।
कूजिवे की बेर मौंन गहि बैठ्यौ देवीदास,
तैसौई सुभाव कूद फांद फैल फूल कौ ।
कुंजरक कुंभहि बिदारिवे की बेर कैसें,
कूकर पैंनि वहैगौ स्वांग शारदूल कौ ।।७४४।।

अथ गूढ़ोत्तर

हिय मैं कछु भाव कौं धरि कें अरु उत्तर दीजै, सो गूढ़ोत्तर।

मा०

उन वेतनि मैं पथिक तू, उतरन लायक जोइ ।।७४५।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

इहां न लषियं सांवरे, दिनकर तेज कलूक ।
बनी रहति दिन राति नित, अति कोकिल की कूक ।।७४६।।

अ०क०

[दोहा]

जल फल फूल भरयौ षरौ, सुषद सघन आराम ।
इत ह्वै जो निकसस पथिक, बिरमि निवारत घांम ।।७४७।।

केसव

।। कवित्त ।।

केसौदास घर घर नाचत फिरत गोप,
एक परे छकि कें मरेई गनियत हैं।
बारुनी के बस बलिदाऊ किये सषा सब,
संग लै कौ जैयै दुष सीस धुनियत हैं।
मोहि तौ गयें हीं बनें दीह दीपमाला पाय,
गायनि सँभारि कौं चित्त चुनियत हैं।।
जौ न जैयै लोल नैंनी लेरु वा मरेई सव,
षरिक षरेई आज सूने सुनियत हैं ।।७४८।।

साथ लै सषानि बन जै वौ हम छाडचौ अब,
बेलिवे कौं संग सषा साषा मृग कीनें हैं ।।७४६।।[1]

कविंद्र

।। कवित्त ।।

सहर मझावत पहर द्वैक लागि जै हैं,
बसती के छौर मैं सराइ है उतारे की ।
भनत कविंद्र मग मांझ ही परैगी सांझ,
षबरि उडानी है बटोही द्वैक मारे की ।।
प्रीतम हमारे परदेस कौं सिधारे यातें,
मया करि बूझति हौं रीति राह हारे की ।
करषैं नदी कैं बरबर कैं तरें तूं बसि,
चौंकै मति चौकी इत पाहरू हमारे की ।।७५०।।

का० तु०

सांवन की राति मेरौ हियरा डरात जागि,
जागि रे बटोही इहां चोरनि कौ डर है ।।७५१।।

अथ चित्र

प्रष्ण अरु उत्तर ए दोऊ एक ही बचन मैं होंइ, सो चित्र ।

---

1. अलवर-प्रति में इस छंद की शेष पंक्तियां इस प्रकार है—

आपनेंई भाये कियें सोहत सरीखवे ए,
केसौदास दास ज्यौं चलत चित्त लीनें हैं ।
आप ही अगाऊ कैक लेत नाम मेरो ए,
वापुरे मिलाप के सलाप करि दीने हैं ।।
राधे कौं सुनाइ कें कहत अैसें घनस्याम,
सुबल कौ लै लै नाम काम भय भीने हैं ।

।। सवै[या] ।।

कोप करें ससि कौं लषि राहु सु कोकिल बोलति है मृदु बानी ।
को कहियै दुषिया नित जामिनि कोक लहै सो महा रस ग्यानी ।।
का मधुरा सषी या व्रज मैं व्रजचंद गुबिंद जू के मन मानी ।
फागुन मैं तिय आपुनी लाज रषैं घर कौंन मैं बैठि सयानी ।।७५२।।

अनेक प्रश्ण कौ एक ही उत्तर

।। चतुर विहारी कौ कवित्त ।।

चतुर बिहारी जू पैं मिलि आंई बाला सात,
मांगति हैं आज कछू हम कौं दिवाइये ।
गोद लेहु फूल देहु नांकें पहराय मोती,
पाननि की पातरिहु ता सन हूं ल्याइये ।।
ऊंचे से अवास के झरोषे बीच बैठिये जू,
सेज स्याम चलिये जू रति पति ध्याइये ।
ग्वारि समुझाइवे कौं उत्तर जु दीनौं एक,
उर्कति बिसेष भांति बारी नहि आइयै ।।७५३।।

अ०क०

[दोहा]

राधा रहित कहा कहौं, को है सुरपति धाम ।
रुचिर हिये पर को लसी, कही उरवसी स्यांम ।।७५४।।

अथ वहिर्लापिका

वाहिर सौं उत्तर दीजै, सो वहिर्लापिका ।

[दोहा]

पान सरै घोरा अरै, विद्या वीसरि जाइ ।
जगरा मैं बाटी बरै, कहु चेला कहि दाय ।।७५५।।

उत्तर—फेरी नहीं ।

अ०मा०

विष्णु वरन को सलिल गति, रद अंबर कहा चाहि ।।७५६।।

उत्तर—अधर

अथ अंतरलापिका

भीतरि सौं उत्तर दीजै, सो अंतर्लापिका ।

अ०मा०

नट सिषवत कहा नचत कौ, पावस मध्य कलापि ।।७५७।।

केसव

[छप्पै]

कहा न सज्जन बवत कहा, सुनि गोपी मोहि[त],
कहा दास कौ नाम कवित्त, मैं कहियत को हित,
को प्यारो जग मां कहा, संग लाग्यौइ आवै,
को वासर कौं करै कहा, संसारहि भावै,
कहि काहि देषि कायर कपै, आदि अंत जानहु वरन,
यह उत्तर केसौराय दिय, सबै जग सोभा धरन ।।७५८।।

अथ व्यस्त समस्त (प्रतिलोम)

या कौ उत्तर सांकर की उनहारि है ।

केसव

[छप्पै]

को सुभ अक्षर कौंन तिया जोधनि बस कीनी,
विजय सिद्धि संग्राम राम कहि कौंनें दीनी,
कंसराज जदुबंस बसत कैसें केसवपुर,
बट सौं कहियै कहा नाम जानहु अपनें उर,
कहि कौंन जननि गनपति की कमल-नैंनि सुंदर वरुनि ।
सुनि वेद पुराननि मैं कही सनकादिक सकर तरुनि ।।७५६।।

अथ व्यस्त गतागत

या कौ उत्तर गतागत है ।

।। हवी की छप्पै ।।

का दूती सौं कहत पुरुष कहा गुहत मंग तिय,
कौंन गंध कौं लहत मधुप कहं रहत हरषि हिय,
कहा सुर-बधू नाम ज्ञान तैं को कहि भागत,
कहा प्रात कौ नाम कहा लषौ करि मांगत,
कहि कहा मीन बेधत हियौ का कहि लेत हुलास री ।
कहि हवी कौंन मोही बधू कहति लाल की बांसुरी ।।७६०।।

अथ सूक्षम

परायौ आसै कछु भाव सौं सैननि मैं लषियै, सो सूक्षम ।

भा०

मैं देष्यौ उहि सीस-मणि, केसनि लियौ छिपाय ।।७६१।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सनमुष ह्वै मीडे करनि, श्रीफल रसिक मुरारि ।
कसकि उठि तिय बदन पैं, घूंघट असित सुधारि ।।७६२।।

।। पुरान कौ कवित्त ।।

बांसुरी के बीच एक भौर डारि लाई सषी,
मूंदि बट पट पल्लव तैं महा बुद्धि भारी सौं ।
भनत पुरान या मैं आपु ही तैं धुनि होति,
कांन दैं कैं सुनौं कह्यौं राधे सुकुमारी सौं ।।
रीझि रीझि वारि ताहि देषत मगन भई,
नभ तन चितै मुष ढांप्यौ स्याम सारी सौं ।
आंचर मैं गांठि दै विहसि उठि चली आली,
प्यारी कह्यौ आज ह्यांही रहौ नैं हमारी सौं ।।७६३।।

केसव

।। सवैया ।।

वैठी हुति वृषभान कुमारि सषीनि के मंडल मध्य प्रवीनी ।
ताही समैं कुमिलानी-सी कंज कली लै मिलि इक ग्वालि नवीनी ।।
बंदन सौं छिरक्यौ उन वा कहँ पान दये करुणा रस भीनी ।
चंदन चित्र कपोलनि लोपि कें अंजन आंजि विदा करि दीनी ।।७६४।।

मतिराम

[सवैया]

जिय जानत चोर सु चोरनि की गति, साह की साह बली की चली ।
ठग की ठग कामक काम की, छल की छल छैल छली की छली ।।
पुनि लंपट जानत लंपट को, मतिराम न जानैं कहां धौं चली ।
उन फेरि दियौ नथ कौ मुकता, उन फेरि कैं फूंकी गुलाब कली ।।७६५।।

अथ पिहित

पराई बात कौं छिपी जानि कें अरु भाव सौं लषावै, सो पिहित ।

भा०

प्रातहि आये सेज पिय, हसि दावति तिय पाय ।।७७६।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

बिथुरे कच रति रंग मैं, समुझि सषी मुष मोरि ।
दई तरुनि कौं बिहसि कें, अरुण पाट की डोरि ।।७६७।।

अ०क०

[दोहा]

प्रीतम आये प्रात ही, अनतें रैनि बिहाइ ।
बाल दिषायौ आदरस, आदर सौं बैठाइ ।।७६८।।

अ०मा०

पिय ही प्रात आवत सुघर, सेज सवारति भीर ।।७६९।।

नरोत्तम

।। कवित्त ।।

आये मन मौंहन बिताइ रैंनि अनतें सु,
काहू सौति जावक लगाइ दियौ भाल कौं ।
सुकवि नरोत्तम जलज नैंनी आदर सौं,
देषत ही मिली उठि मदन गुपाल कौं ।।
अंचल सौं झारि पग चंदन नयन लाइ,
हसि मुष पौंछि वंन रिसन रसाल कौं ।
कह्यौ हसि धाय तब सहचरी जाय नीकैं,
आरसी के महल बिछौंनां किये लाल कौं ।।७७१।।

केसव

।। सवैया ।।

आवत देषि लिये उठि आगें ह्वै आपु ही आनि कैं आसन दीनौं ।
आप ही पाय पषारि भलें जल पानी कौ भाजन लाय नवौनौं ।।
बीरा बनाय कें आगें धरे तब ही कर कोमल बीजना लीनौं ।
बांह गही हरि ग्रैसें कह्यौ हसि मैं तौ इतौ अपराधु न कीनौं ।।७७२।।

अथ व्याजोक्ति

आकार दुराइ कै कछु और बिधि बचन कहियै, सो व्याजोक्ति ।

मा०

सषि सुष कीने कर्म ए, मानिक जानि अनार ।।७७३।।

अ०क०

[दोहा]

फ़ूल लैंन कौं आज मैं, सांझ गई ही बीर ।
अरुन बिंब फल जानि कैं, करे अधर छत कीर ।।७७४।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

मृग छौंना सुंदर निरषि, लियौ अंक मैं आज ।
षुरकी लगी षुरौट उर, सषि करि कछू इलाज ।।७७५।।

मतिराम

[दोहा]

भलौ नही यह केवरौ, आली गृह आराम ।
बसन फटै कंटक लगै, निसि दिन आठौं जाम ।।७७६।।

।। का० कवित्त ।।

कहा तू हसै है सब जगत हसते है री,
मेरौ मन भांति भांति सरमनि मारचौ है ।
मेरी ओर देषि मुसकात नटि जात मेरे,
घर करि सात इन नित ब्रत धारचौ है ।।
छतियां चढी हूं तौहू बतियां बनावतु है,
दतियां लगावत हू हियरा न हारचौ है ।
होइगौ सु हू जौ यह निहचै बिचारचौ है,
कन्हैया जू कौं आज तौ मैं पंकरि पछारचौ है ।।७७७।।

अथ गूढ़ोक्ति

और के मिस और सौं कहियै, सो गूढ़ोक्ति ।

भा०

कालिह सषी हौं जांउगी, पूजन देव महेस ।।७७८।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

कही टेरि समुझाइ उत, निरषि छबीलौ छैल ।
कालिह अकेली जांउगी, अलि मधुबन की सैल ।।७७९।।

सुंदर

[सवैया]

सुंदर जानि कैं मदिर के पिछवारै ही आनि कैं ठाढे कन्हाई ।
चाहै कछू कह्यौ पैं सकुचै तव कीनी है वातनि मैं चतुराई ।।
पूछि परौसिन कौ मिसु कैं पुनि वाही मैं पी कौं सहेट बताई ।
साथ तिहारी ए कालिह हौं जांउगी देबी के देहरै पूजन माई ।।७८०।।

अथ विवृतोक्ति

पराये छिपे श्लेष कौं परगट कीजै, सो बिवृतोक्ति ।

भा०

पूजन देव महेस कौ, कहा सिषावत सैंन ।

अ० क०

[दोहा]

गरजत कहुँ वरसत कहूं, दरसत कहुँ घनस्यांम ।
कहु तरसावत ही रहत, कहत जाति यौं बाम ।।७८२।।

विहारी

[दोहा]

चिरंजीव जोरी जुरै क्यौं न सनेह गँभरी ।
उह वृषभान कुमारिका, तुम हलधर के बीर ।७८३।।

फगुल हार हियैं लसैं, सनकी वेंदी भाल ।
रापति षेत षरो षरी, षरे उरोजन बाल ।।७८४।।

के०तु०

काची ये दांषहि चाहत चाष्यौ सुग्रंत तऊ तुम कुंज विहारी ।।७८५।।

मुकंद

कहूं उघर धुंमडत कहूं घनस्यांम कहूं,
गरजत कहूं रंग बरसात हौं ।।७८६।।

अथ जुक्ति

क्रिया करि कैं अरु कर्म कौं छिपाइये, सो जुक्ति ।

भा०

पीय चलत आंसू चले, पौंछत नैन जँभात ।।७८७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

हरि कौं पनघट मैं निरषि, पुलकित भयौ शरीर ।
तिय नैं अंचल ओट दै, रोक्यौ तृबिधि समीर ।।७८८।।

अ०क०

[दोहा]

चित्र मित्र कौ लिषत हो. कामिन सुमति निधान ।
निरषि सषी कौं लिषि दिये, कुसुम धनुष कर बान ।।७८९।।

अ०क०

सुक निसिरव मधि कहत, तिय मन चैंचुहि दीन ।।७९०।।

मतिराम

।। सवैया ।।

मौंहन सौं दिन द्वैक ही तें मतिराम भयौ अनुराग सुहायौ ।
वैठी हुती तिय मायके मैं ससुरा कौ काहू संदेस सुनायौ ।।
नाह कैं व्याह की चाह सुनी उर मांझ छबीली कैं आनँद छायौ ।
पौढ़ि रही पट ओढ़ि अटा दुष कौ मिसु कैं सुष बाल छिपायौ ।।७९१।।

अथ लोकोक्ति

लोक की कहनावति कहियै, सो लोकोक्ति ।

भा०

नैंन मूंदी पट मांस लौं, सहियै विरह बिषाद ।।७९२।।

मुकंद

तिय तो तन मैं सरस छबि, जग-मग जग-मग होति ।।७९३।।

सो०[मनाथ][1]

[दोहा]

ग्रावति है उर मैं ग्रली, कीजै यही उपाय ।
जित हैं नंदकिसोर नित, जैयैं पंष लगाय ।।७९४।।

।। देव कौ कवित्त ।।

सहर सहर सौधौ सीतल सुगंध वहै,
घहर घहर घन घोरि कें गहरियां ।
झहर झहर झुकि झीनौं झर लायौ देव,
छहर छहर छोटी बूंदनि छहरियां ।।
हहर हहर हसि हसि कें हिडोरें चढ़े,
थहर थहर तन कोमल थहरियां ।
फहर फहर होत प्रीतम कौ पीतांबर,
लहर लहर करै प्यारी कौ लहरिया ।।७९५।।

ग्रथ छेकोक्ति

लोकोक्ति कछु ग्रर्थ सहित होइ, सो छेकोक्ति ।

1. ग्रलवर-प्रति में सोमनाथ से पूर्व ग्रलंकार करणाभरण से यह उदाहरण ग्रौर दिया गया है—

ग्र०क० उद्धव कछु दिन वनि गयौ, वा कपटी संग भोग ।
कहां कान्ह ग्रव हम कहां, नदी नाव सँजोग ।।

भा०

जो गायनि कौं फेरि है, ताहि धनंजय जानि ।।७९६।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

ग्वारनि सौं बतरात हौ, गहैं कदम की डार ।
हौं मोही मुसकाइ कैं, अलि उहि नंदकुमार ।।७९७।।

अ०क०

[दोहा]

उद्धव तुम जानत कहा, जानत कहा अहीर ।
जानति नीकी भांति है, बिरहनि बिरहनि पीर ।।७९८।।

का०

जादव कुल की राषि लै, मति ह्वै जाइ अहीर ।।७९९।।

अथ वक्रोक्ति

स्वर के लेष सौं अर्थ फेर होइ, सो बक्रोक्ति ।।८००।।

भा०

रसिक अपूर बहो पिया, बुरो कहत नहि कोइ ।।८०१।।

केसव

॥ सवैया ॥

तैं जु कह्यौ मुष मौंहन कौं अरविंद सौ है सुतौ चंद सौ है सुतौ चंद सौ
देष्यौ ॥८०१॥

अथ सुभावोक्ति

जाति कौ सुभाव वर्नियें, सो स्वभावोक्ति ।

मा०

हसि हसि देषति फिरि झुकति, मुह मोरति इतराइ ॥८०२॥

अ०मा०

द्रग नायें अंगनि ढ़कें, लसति कुल वधू मौंन ॥८०२॥

अ०क०

[दोहा]

धरि कपोल पर आंगुरी, बात कहति मुसकाइ ।
एरी ए तेरी अदा, मो पर बरनि न जाइ ॥८०३॥

॥ का० कवित्त ॥

दौंहन के समैं मन मौंहन लला की उह,
ललित लुनाई कबि वरनि कहा कहै ।
कबहूं किलकि धाय नंद के निकट आइ,
कर उच्चकाई मुष तोतलैं बबा कहैं ॥
ता कौं ब्रजरांनी देषि लोचन सिरानी मुष,
बोलै मृदुबानी सौं बलैया लैउ मा कहै ।

गैया की ओट ह्वै ललैया विलुकैया लैकें,
जसुमति मैया सौं कन्हैया जब ता कहै ॥८०४॥

सुरत भवन लौं गवन की अवधि सषी,
श्रवन लौं बचन अवधि जिय जानियें ।
चित्त की अवधि श्रीगुबिंद कंत परजंत,........इत्यादि ॥८०५॥

अथ भाविक

भूत भविष्य बर्त्तमान जो प्रत्यक्ष भली प्रकार देषियै, सो भाविक ।

भा०

वृंदाबन मैं आज वह, लीला देषी आइ ॥८०६॥

अ०क०

[दोहा]

पूरन प्रेम षरे भरे, राधा नंदकुमार ।
लषि आई चलि लषि भटू, अव लौं करत विहार ॥८०७॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

हम सौं अैसौ जतन कहि, सूधौ निपट बिचारि ।
बरसानैं मैं आज उह, बहुरि भेटियै नारि ॥८०८॥

अ०मा०

लषत बिदेस हु जनु प्रिया, देति समित जुत पांन ॥८०९॥

अथ उद्दात

उपलक्षण दै कें अधिकारी कौं सोधियै, सो उद्दात ।

भा०

तुम जाके बस होत हौ, सुनत तनक–सी बात ।।८१०।।

सो०[मनाथं]

[दोहा]

नीठि करी है सुमन उह, जसुमति नैं समुझाइ ।
तुम आये हौ आज हरि, जाकौ मांषन षाई ।।८११।।

अथ श्लाघ्य चरित्र उद्दात

चरित्रन की प्रसंसा कीजें, सो श्लाघ्य चरित्र उद्दात ।

अ०क०

[दोहा]

वृंदावन विहरत भलें, बनितन मैं व्रजराज ।
सुर नारीं मोहित भई, जोहत सकल समाज ।।८१२।।

रामायण सूचनिका[1]

[दोहा]

स्वर्न सिंघासन छत्र जुत, सोभित सीताराम ।
लषन भरत ढ़ारन चँवर, बरषि सुमन सुरबाम ।।८१३।।

देव

।। कवित्त ।।

पामरीनि पांवडे परे हैं पुर पौरि लग,
धाम धाम धूपनि की धूम धुनियत है ।
कस्तूरी अतर सार चोआर सघन सार,
दीपक हजारनि अँध्यार लुनियत है ।।
मधुर मृदंग राग रंग के तरंगनि मैं,
अंग अंग गोपिनु के गुन गनियत हैं ।
देव सुष साज व्रजराज महाराज आज,
राधाजू के सदन सिधारे सुनियत है ।।८१४।।

[छप्पं]

सुनत मदन मन लज्यौ तज्यौ पति व्रत व्रजनारी,
सिव समाधि छुटि गई बेद-धुनि ब्रह्म बिसारी,
पसु न चरत तृण छकित चकित नभ चंद उडग्गन,
थकित पवन पुनि जमुन नीर गिरि चले पुलकि तन,
पय पिवत न बालक वच्छ सब षग मृग रस बस अति मुदित ।
बंशी गुबिंद व्रजचंद की वृंदाबन बाजत बिदित ।।८१५।।

---

1. अलवर-प्रति में नहीं है ।

नागरीदास राजा[1]

[सोरठा]

ह्वै गये चर थिर अचर चर, सरद पूरन ससि चढचौ ।
दास नागर रास औसर, वृंदाबन सोभा बढचौ ।।८१६।।

अथ रिद्धवंत चरित्र उद्दात

रिद्धवंत चरित्र वर्नियै. सो रिद्धवंत चरित्र उद्दात ।

अ०क०

[दोहा]

वसन जरी के पहरि कैं, वैठी सुबरन धाम ।
निकट गये हूं संषिनि हूं, नीठि निहारी बाम ।।८१७।।

कोरि कोरि क़ला मुष चंद तैं सरस प्यारी,
वादला फरस रूप झला-झल बरसै ।

अथ अत्युक्ति

अर्थ कौ अत्सै बर्नन कीजै. सो अत्युक्ति ।

अ०क०

[दोहा]

नंद दिये नंद भयें, मनि कंचन के ढेर ।
कायधेंनु गोपी भई, जाचक भये कुमेर ।।८१८।।

---

1. अलवर-प्रति मे नहीं है ।

भा०

जाचक तेरे दान तैं, भये कलपतरु भूप ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

षेलत चलत सिकार तू, जव जव ह्वै असवार ।
सहस-फनी के सीस पें षरकति हय षुरतार ।।८१९।।

नंददासजू

[दोहा]

अष्ट सिद्धि बहु कष्ट करि, बिरलै काहू दीष ।
सो संपति वृषभान घर, परति भिषारिनु भीष ।।८२०।।

केसव

।। कवित्त ।।

कापि उठ्यौ आप निधि तपन हूं ताप चढ़ी,
सोरी ए सरीर गति भई रजनीस की ।
अजहूं न ऊंचौ चाहै अनिल मलिन मुष,
लागी रही लोक लाज मानौं मन बीस की ।।
छल सौं छबीली लछि छाती मैं छिपाई हरि,
छूटि गई दान गति कोरि हूंजि तीस की ।
केसौदास तिही काल कारौई ह्वै गयौ काल,
सुनत श्रवन बकसीस एकईस की ।।८२१।।

[कवित्त]

पुत्र भये आज महाराज दशरत्थ साजि,
दीनें गज वाजिर थकि मति बिसेस के ।
और निधि बिधि सु कांपै कहि आवै श्रीगुविंद,
की सौं देषि गरे गरब सुरेस के ।।
बिदा होइ बंदी निज घरनि सिधारे भोर,
दलनि निहारि भूप भजे देस देस के ।
भूचल निहारि तव इन यौं उचारि तुम,
डरौ जिन हम हैं भिषारी कोसलेस के ।।८२२।।

अथ निरुक्ति

जोग तैं अर्थ की कल्पना होइ, सो निरुक्ति ।

भा०

उद्धव कुबजा वस भये, निरगुन उहै निदान ।।८२३।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

उतही चितहि लग्यौ रहै, नैंकु न रुचत निकेत ।
नित प्रति जैवौ षरिक मैं, यही सुगोर सहेत ।।८२४।।

अ०क०

[दोहा]

निसि बासर बिहरत फिरौ, बहु बनितनि के धाम ।
नीकी बानि गही कियौ, सही बिहारी नाम ।।८२५।।

अथ प्रतिषेध

प्रसिद्ध अर्थ कौ निषेध कीजै सो प्रतिषेध ।

भा०

मोहन कर मुरली नहीं, कछु इक बडी बलाइ ।।८२६।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

निरषत ही रस बस भये, हरि कुल-कानि बिगोइ ।
नहि तिय की मुसकानि यह. और बस्तु ही होइ ।।८२७।।

केसव

।। सवैया ।।[1]

चंदन ही बिषकंद है केसव राहु इहीं गुन लीलि न लीनौं ।
कुंभज पावन जानि अपावन धोवैं पियौ पचि जान न दीनौं ।।
या सौं सुधाधर सेस बिषद्धर नाम धरचौ बिधि है बुधि हीनौं ।
सूर सौं माई कहा कहिये यह पाप लै आप बराबरि कीनौं ।।८२८।।

अथ 'बधि[2]

सिद्धि अर्थ कौं फेरि साधिये, सो बिधि ।

भा०

कोकिल है कोकिल जवै, रितु मैं करि है टेर ।।८२९।।

---

1. अलवर-प्रति में केवल एक पंक्ति है।
2. अलवर-प्रति में 'अथ बिधि' न लिख कर लक्षण ही लिख दिया है जिससे स्पष्ट नहीं होता ।

अ०क०

[दोहा]

जैसी पावस मैं लगै, तैसी अब कछु नांहि ।
केकी है केकी करै, जब केका रितु मांहि ।।८३०।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

चरन रावरे प्रीति सौं, नित सेवत चित लाइ ।
दीन बंध तव जौस जौ, मो अति दीन सहाय ।।८३१।।

।। का० कवित्त ।।

कारे कारे काक अरु कोकिल हैं कारे कारे,
दोऊन कौ भेद कोऊ कवहूं पिछानैं हैं ।
काक हैं सो काक अरु कोकिल सु कोकिल हैं,
या कौ भेद लोग रितुराज ही मैं जानै हैं ।।
कोऊ कगमार काच बांधतु हैं सीस पर,
मनिनु के भूषन लै चरन मैं ठाने हैं ।
लैंन दैंन समैं जव किंमति परिक्षा होति,
काच है सु काच मनि मनि मही प्रमानै हैं ।।८३२।।

देवीदास

[कवित्त]

येरे गुनी गुन पाइ चातुरी निपुन पाइ,
कीजियै न मैलौ मन काहू जौ कछू करी ।
बीरन बिरानें घर गये कौ सुभाव यही,
मांन अपमान काहू रे करी कि जू करी ।।

और सब लोग सो तौ जात हैं नृपति पास,
तो कौं जौह टौकदेबी काहू पल दू करी ।
द्वारैं गजराज ठाढ़ौ कूकरी सभा के वीच,
कूकरीस कूकरी पैं तू करी सु तू करी ।।८३३।।

अथ द्वि-विधि हेतु

कारण सहित कारज बर्नियें, सो प्रथम । कारन अरु कारज ए दोऊ एक ही वस्तु के अंग होंइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम हेतु

उदित भयौ ससि मानिनि, मांन मिटावन मानि ।।८३४।।

अ०क०

[दोहा]

कामिन अति हर्सित भई, फरकत बांयौं नैंन ।
जानी आइ बिदेस तैं, मिलि है पिय सुष दैंन ।।८३५।।

सो०[मनाथ]

सषि इहि जल के परस तैं, आवत त्रिबिधि समीर ।।८३६।।

हरिबंसजू

बर हिंडोर झकोरनि, कामिनि अधिक डराति ।।८३७।।

केसव भेटत ही भरि अंक, हसी सब कोक दै गोपकुमारी ।।८३७।।

॥ कें० कवित्त ॥[1]

बेधा होत फूहर कलपतरु थूहर,
परमहंस चूहर की होत परपाटी कौं ।
भूपति मगंया होत ठाढ का मगैया होत,
गजमद चुवत सु चेरौ होत चांटी कौं ।
काहै कबि केसौराय पुन्य कियें पाप होत,
बैरी निज बाप होत सांप होत सांटी कौ ।
स्यार सम सेर होत निर्धन कुमेर होत,
दिननि कौ फेर होत मेर होत मांटी कौ ॥८३८॥

अथ दुतिय हेतु(भा०)

मेरें रिद्धि समृद्धि सब तेरी कृपा बषानि ॥८३९॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सांची बात यही सुनौं, दसरथ राजकुमार ।
बीज वृक्ष सुर नर सबै, तेरी कला अपार ॥८४०॥

अ०क०

[दोहा]

जा तन तुम चितवत तनक, मंद मः मुसकाइ ।
ताहि तुरत सब भांति सौं, नव निधि सुष सरसाइ ॥८४२॥

अथ अनुमान

कछु वस्तु कौ अनुमान कीजै, सो अनुमान ।

1. अलवर-प्रति में नहीं है ।

सो०[मनाथ]

॥ सवैया ॥

कूबरी के रस रंग छके ससिनाथ जू वे सुष साजनि साजि हैं ।
जोग हमैं तुम ही कहौ उद्धव ए बतिया उन कौं पुनि छाजि हैं ॥
ह्यां निसि मैं असुवानि कौ सिंधु बढ़ै मति कौंन नई उपराजि है ।
जानति हैं वा अषैं बट ज्यौं बंसुरी वट मैं ब्रजराज बिराजि हैं ॥८४३॥

इहां 'जानति हैं' यह अनुमांन ।

के० तु०

नैंसिकु दूध कौं राष्यौ जु बांधि सु जानति हौं माई जायौ न तेरौ ।
॥८४४॥

अथ उरजस्वित

आभास अंग होइ अरु रसादिक मुष्य होइ, सो उरजस्वित ।

कुलपति

[दोहा]

राम लषन कर धनुष लषि, अरिगन अधिक अधीर ।
तजत सार सज्जत नदी, शूर-बीर द्रग नीर ॥८४५॥

इहां भाव कौ अंग 'भावाभास' है ।

[दोहा]

इक चुंबत कुच गहत इक, आलिंगिति भरि बांह ।
तुव बैरिनु की अंगना, भ्रमति फिरति बिन नाह ॥८४५॥

इहां भाव कौ अंग 'रसाभास' है ।

॥ सोरठा ॥

सुमन सलिल लै हाथ, जुवति कौंन पूजन चली ।
कहति विश्व के नाथ, पिय संग कासी बास दै ॥८४६॥

इहां शृंगार कौ अंग 'देव रति भाव ध्वनि' है ।

केसव

॥ सवैया ॥

को बपुरा जु मिल्यौ है बिभीषण है कुल दूषन जीवैगौ कौ लौं ।
कुंभकरन मर्यौ मघवा रिपु तौर कहा डर है जम सौ लौं ॥
श्री रघुनाथ के सुंदर गातनि जानहि तू कुसरात न तौ लौं ।
साल सबै दिगपालनि कौ कर रावण कें करवाल है जौ लौं ॥८४७॥

इहां बीर कौ अंग 'गर्व' है ।

अथ रसवत

जहां रस अंग होइ अरु मुष्य कोऊ और होइ, सो रसवत ।

॥ कु० दोहा ॥

सुपनौं है संसार यह, रहत न जानैं कोइ ।
पिय मिलि मन भाये करौं, कल्हि कहां धौं होइ ॥८४८॥

इहां 'सांति रस' सृंगार कौ अंग है ।

॥ कवित्त ॥

आसन औ चुंबन अलिंगन हथ्यार साजि,
प्रफुलित मन सो अधर मधुपान कें ।

अंग अंग औं कल मचाये बहु भांतिन सौं,
पूरि राषौं मंदिर मनित सुरतानि कें ।।
इहि बस कीनौं जग याहि बस करौं आज,
कैसें हूं न छाडि हौं उदैहूं भयें भांन कें ।
मदन महीप के बिथोरि तोरि पांचौ बांन,
करौं आंन आंन अब सुरत निदांन कें ।।८४६।।

इहां शृंगार कौ अंग 'बीर' है ।

।। सवैया ।।

जा करि कें सुष पावति ही रसना सु यहै कर है सुषदांनी ।
इत्यादि ।।८५०।।

एक धरें कमलासनि पें कर, एक सुदर्शन चक्र धरें हैं ।
एक बिषातुर संभु के सीस, समुद्र मथान मैं एक अरें हैं ।।
इत्यादि[८५१]

अथ जात्य

जैसौ जा कौ शृंगार होइ तैसौई बर्नियै सो, जात्य ।

बिहारी

[दोहा]

सीस मुकट कटि कटि काछनी, कर मुरली उर माल ।
यह बानिक मो मन सदा, बसौ बिहारी लाल ।।८५२।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

केसरि रँग भीनें बसन, कटि गुलाल की फेंट ।
इहि बानक नँदलाल सौं, आज ह्वै गई भेंट ।।८५३।।

॥ का० कवित्त ॥

माथे पैं मुकट देषि चंद्रिका चटक देषि,
छबि की लटक देषि रूप रस पीजियै ।
लोचन बिसाल देषि गरै गुंज माल देषि,
अधर सु लाल देषि चितै चौंप कीजियै ॥
कुंडल हलन देषि अलकैं बलनि देषि,
पलकैं चलन देषि सरबसु दीजियै ।
पीतांबर छोर देषि मुरली की घोर देषि,
सांवरे की ओर देषि देषिवौई कीजियै ॥८५४॥

॥ छप्प ॥

क्रीट कुंडल अरु तिलक भाल राजत छबि छाजत,
पीत वसन तन स्यांम काम कोटि लषि लाजत,
कंठ त्रिवली श्री वत्स वक्ष सोहत मन मोहत,
बैजंती बन—माल कौंन उपमा कबि टोहत,
संष चक्र गदा पद्मधर अमित रूप गुन गरुड धुज ।
गोबिंद चरन बंदित सदां जय जय जय श्री चत्रभुज ॥८५५॥

अथ सुसिद्ध

सिद्धि कौं साधि मरैं और अरु भोगै और, सो सुसिद्ध ।

केसव

॥ छप्पय ॥

सर्धा सचि सचि मरै सहर मधुपांन करत मुष,
षनि षनि मरत गवार कूप जल लोग पिवत सुष,
बाग मान बहि मरै फूल बाधत उदार नर,
पचि पचि मरत सुवार भूप भोजन निकरत बर,
भूषन सुनार गढ़ि गढ़ि मरै भांमिनि भूषित करति तन ।
कहि केसव लेषक लिखि मरै पंडित पढ़त पुरान गन ॥८५६॥

अ०मा०

थवई पचि पचि मरत सुष, मंदिर लहत धनेस ॥८५७॥

का०

षनि षनि मरैं जु ऊंनरौ, औरु भोगवै भुजंग ॥८५८॥

अथ प्रसिद्ध

साधन कौं साधै एक अरु भोगैं अनेक, सो प्रसिद्ध ।

केसव

॥ सवैया ॥

मात कौ मोह पिता परतोषन केवल राम भरे रिस भारे ।
और गुन एकहि अर्जुन कौ भुव मंडल के सब छत्रिय मारे ॥
देवपुरी कहँ औधिपुरी जन केसवदास बडे अरु बारे ।
सूकर स्वान समेत सवै हरीचंद के सत्त सदेह सिधारे ॥८५९॥

तत्त्व वेत्ता[1]

पिता पछ चौबीस, माता के मानौं ।
षोडस तिय उनमान, मास पुत्री के जानौं ॥
एकादस कुल बहिन, सुदस भूवा के पेषौं ।
मात वहिन कुल आठ, सुरति संमृति करि लेषौ ॥
तत बेता हितु लोक मैं, करि विचार औसें कही ।
भक्त होइ जा बंस मैं, इक सत वंस उधरैं सही ॥८६०॥

1. अलवर-प्रति में केवल अन्तिम पंक्ति ही दी गई है ।

का०

एकै पापी वैठ तैं, बूडै सिगरी नाव ।।८६१।।

अथ अमित

साध की सिद्धि साधन ह्वै कैं भोगै, सो अमित ।

केसव

।। सवैया ।।

आनन सीकर-सी कहि काहे तैं तोहि तकौं अति आतुर आई ।
फीकौ परचौ सुष ही मुष राग क्यौं तेरे पिया वहु वार बकाई ।।
प्रीतम कौ पट क्यौं लपट्यौ सषि केवल तेरी प्रतीति कौं ल्याई ।
नीकैं हीं केसव नाइक सौं रमि नाइका बातनि हीं बहराई ।।८६२।।

अ०मा०

पठई पिय हिय लगन हित, पाती अपुनहि लाग ।।८६३।।

अथ बिपरीति

सिद्धि के साधिवे कौं साधन बाधक होइ, सो बिपरीति ।

केसव

[कवित्त]

साथ न सयानौं कोऊ हाथ न हथ्यार रघु-
-नाथ जू के जज्ञ कौ तुरंग गहि राष्यौई ।
कांषनि कछोटी छोटी काक पक्ष पांच ही,
बरस किनु छत्र अभिलाष्योई ।।

नल नील अंगद सहित जांमवंत हनु—
-मंत से अनंत जिन नीर निधि नांष्यौई ।
केसौदास दीप दीप भूपनि सौ रघुकुल,
कुस लव जीति कैं बिजय-रस चाष्यौई ।।८६४।।

प्रष्ण

।। टीका कर्त्ता कौ दोहा ।।

साथ सयानौ नांहि नैं, हाथ हथ्यार न कोइ ।
हितू नही जय कौ सु क्यौ, नहि बिभावना होइ ।।८६५।।

उत्तर

[दोहा]

तहां इहां कुस लव तनय, प्रभु के कारण आहि ।
जय के तिनहि बिजय लही, यौं बिपरीति सु चाहि ।।८६६।।

अ०मा०

मैं पठई पर दूति यह, चूक सु मौ मन मांहि ।।८६७।।

अथ विरुद्ध

बिरुद्ध धर्म बर्नियै, सो बिरुद्ध ।

केसव

।। सवैया ।।

कृष्ण हरें हरयें हरें संपति संभु बिपत्ति यहै अधिकाई ।
जातक काम अकामिनु के हितू घातक काम सकाम सहाई ।।

छाती मैं लच्छि दुरावति वे ए फिरावत हैं सव के सँग धाई ।
जद्दपि केसव एक तऊ हरि तें हर सेवक कौं सुषदाई ।।८६८।।

अथ प्रेम

कपट निपट मिटि जाइ अरु पूरण प्रीति प्रगटै, सो प्रेम ।

।। सवैया ।।

उह बात सुनें सपनेंहू बियोग की हौं न कहै दोइ टूक हियौ ।
मिलि षेलियै जासहु बालक सौं कहि तासौं अबोलो क्यौं जात कियौ ।
कहियँ[1] कबि केसव नैंननि कौं बिन काजहि पावक पुंज पियौ ।
सषि तू बरजै अरु लोग हसैं कहि काहे कौं प्रेम को नेम लियौ ।।८६५।।

[सवैया]

सांवरे रँग रँगे सु रँगे पुनि प्रेम पगे सु पगेई पगे हैं ।
रूप अनूप समुद्र अपार मझार षगे सु षगेई षगे हैं ।।
और कहा कहौं आली अवै अति ठीक ठगे सु ठगेई ठगे हैं ।
या व्रजचंद गुबिंद की सैंन सौं नैंन लगे सु लगेई लगे हैं ।।८६६।।

अ०मा०

सषि मन भावति हि कहत, जिनि देषहु यह लोग ।।८६७।।

अथ जुक्ताजुक्त

जुक्त मैं अजुक्त बर्निए, सो जुक्ताजुक्त ।

---

1. अलवर-प्रति में यहां के बाद कुछ सामग्री रह गई है ।

केसव

[सवैया]

पाप की सिद्धि सदा रिन वृद्धि सु कीरति आप की आप कही की ।
दु.ष कौ दान औ सूतक न्हान सु दासी की संतति लागति फीकी ।।
बेटी कौ भोजन भूषन रांड कौ केसव प्रीति सदा पर ती की ।
जुद्ध मैं लाज दया अरि की पुनि बांभन जाति सौं जीति न नीकी ।।८६८।।

अजुक्ताजुक्त

अजुक्त मैं जुक्त बर्नियें, सो अजुक्ताजुक्त ।

केसव

।। सवैया ।।

पातक हांनि पितानि सौं हारिबौ गर्ब की सूलनि सौं डरियै जू ।
तालनि कौ बंधिबौ बधरौरि कौ नाथ के साथ चिता जरियै जू ।।
पत्र फटै जौ कटैरिन केसव कैसें हूं तीरथ जौ मरियै जू ।
गारी सदा नीकी लागै सगेन की दंड भलौ जो गया भरियै जू ।।८६९।।

अथ उत्तर

परसपर प्रति उत्तर होइ, सो उत्तर ।

केसव

।। सवैया ।।

बन जैयै चलौ कोऊ ठाली है केसव हौ तुम हो तौ अरि हौ ।
कछु षेलियै षेलन आवत आज ही भूल्यौ न भूल्यौ गरें परि हौ ।।
हितु है हिय मैं हितू नांहि कहूं हितु नांहि हियें तौ लला लरि हौ ।
हम सौं यह बूझियै ऐसी कहा जू कही तौ कही बकहा करि हौ ।।८७०।।

अथ आसिष

माता, पिता, गुरुदेव, मुनि इत्यादिक सुष पाइकैं कछू कहै, सो आसिष ।

।। केसव कवित्त ।।

मलया मिलित वास कुंकुम कलित जुत,
जावक सुनष पद पूजित ललित कर ।
जटित जराइ की जँजीर बीच नील मनि,
लागि रहे लोकगि के नैंन मांनौं मीन हर ।
चिरु चिरु सोहै रामचंद्र के चरण जुग,
केसौदास दीवौ करैं आसिष असेष नर ।
हय पर गय पर पालिक सु पीठ पर,
अरि उर पर अवनीसनि के सीस पर ।।८७१।।

आनंदघन

रांनी तेरौ चिरुजीयो गोपाल ।।८७२।।

गुसाई हरवंसजू

हित हरिबंस असीस देत मुष चिरु जिवौ भूतल या जौरी ।।८७३।।

मुकंद

[दोहा]

चिरंजीब जोरी सदा, जोबन रूप रसाल ।
कुंज बिहारनि लाडिली, कुंज बिहारी लाल ।।८७४।।

*यहां गुसाई हित हरवंशजी का आशीर्वाद प्राप्त किया है ।

अथ संकर

बहुत अलंकार जहां मिलें सो संकर ।

सोमनाथ

॥ कवित्त ॥

सौंने सो सरीर ता पें आसमानी रंग चीर,
औरें ओप कीनी रबि रतन तरौंना द्वै ।
सोमनाथ कहैं इंदिरा-सी जग-मगै बाल,
गाढे कुच ठाढ़े मनौं ईस जुग मौंन द्वै ॥
कारी घुघरारी मंद पवन झकोर लागें,
फरहरें अलक कपोलनि के कौंना द्वै ।
सो छबि अमंद मनौं पान सुधा बुंद करि,
इंदु पर षेलत फनिंदनि के छौंना द्वै ॥८७५॥

इहां उपमा रूपक उत्प्रेक्षा वृत्यानुप्रास ए मिलि कैं संकर हैं ।*

॥ सवैया ॥

निंदत हे सु तौ वंदत हैं प्रतिकूल करें अनकूल की बातें ।
जाहि जु हारि तौ हौं घर जाइ सु आइ कें पाइ परें तजि घातें ।
दुष्ष अनेकहु तें पहलें अब हैं अति आनंद गोविंद यातें ।
रीति सबै सुधरी है हमारी पियारी बिहारी तिहारी कृपा तें ॥८७६॥

इहां पर्याय अरु हेतु ये दोऊ मिलि कैं संकर हैं ।

---

*अलवर-प्रति में यहीं समाप्त हो गया है और अंत में लिखा है —
ऐसै और हू ठौर जथासंभव जान लीजै ।
इति श्री अलंकार संपूर्णम् । शुभमस्तु ॥ दीर्घायुभव :। शुमं भवतु ।
हा० पुस्तकशाला सरकार अलवर ।

॥ छप्पय ॥

सदाचार के सदन भक्ति दसधा के मंडन,
संप्रदाय के छत्र दुतिय मनु सनक सनंदन,
प्रगट कृपा के रूप सरस बिद्या के सागर,
हंस बंस के कलस सुजस सब जगत उजागर,
प्रणतपाल अरबिंद पद आनंद कंद गुबिंद भनि ।
श्री सर्वेश्वर प्रफुलित बदन रसिक अनंन्यनि मुकटमनि ॥८७७॥

इहां [र]त्नावली, उत्प्रेक्षा, उद्दात ए मिलि कैं संकर हैं ।

॥ दोहा ॥

रच्यौ गुबिंदानंद घन, रसिक गुबिंद बिचारि ।
भूल चूक कहु होइ तौ, लीजौ सुकवि सुधारि ॥८७८॥

इति श्री मद्वृंदाबन चंद्रवर चरणारविंद मकरंद पानानंदित अलि रसिक गुबिंद कविराज विरचितं श्री गोविंदानंदघन गुण अलंकार निरूपणं नाम चतुर्थ प्रबंधः ॥४॥ शुभंमस्तु ॥

गन नाम	स्वामी	फल	जन्म तिथि	जन्म नक्षत्र	जन्म वार	कुल	वर्ण	गन-देस	जन्म-पुरी	गन-वास
मगन	भूमि	लक्ष्मी प्राप्ति	१०	रोहिनी	शनि	शूद्र	मिश्रित	जालंधर	आकासपुरी	शैलाधि परबत
यगन	जल	पुत्र प्राप्ति	१२	ज्येष्ठा	सोम	वैश्य	कृष्ण	कौशल	विपुलावती	वंश कैवर्त्त परवत
रगन	अग्नि	विरोध	८	अश्विनी	रवि	छत्री	रक्त	महेंद्र	मकरंदपुरी	मलयगिरि
सगन	पवन	देसाटन	६	पूर्वा भाद्र पद	बुद्ध	वैश्य	नील	विडंबर	कंकेरपुरी	सेतुबंध परबत
तगन	आकास	धन नास	३	रेवती	मंगल	शेष	धूम्र	कुंतल	चंपावती	कर्णगिरि
जगन	सूरज	व्याधि	५	श्रवन	शुक्र	ब्रह्म	रक्त	प्रवल	विचित्रावती	उदयाचल
भगन	चंद्रमा	जस	१३	रेवती	गुरु	देव	स्वेत	शुक्ल	प्रभावती	विभारगिरि
नगन	नाग तथा स्वर्ग	आयु	१५	अनुराधा	बुध	छत्री	कनक बर्ण	क्रौंच	कांची	चंद्र परवत

कवि-नामानुक्रमणिका

(निरन्तर)

क्रमांक	कवि-नाम	पृष्ठांक
		151, 152, 154, 156, 157, 159, 161, 167, 168, 169, 175, 183, 185, 188, 190, 193, 202, 203, 221, 224, 225, 229, 252, 259, 268, 270, 271, 272, 273, 274, 275, 287, 298, 315, 317, 336, 344, 348, 354, 355, 356, 358, 361, 365, 370, 379, 381, 386, 389, 391, 394, 396, 406, 434, 437, 438, 439, 441, 448, 453, 455, 458, 460, 462, 463, 464, 465, 467
15.	कोक	131
16.	गदाधरजू	359
17.	गिरधर	223, 344, 345
18.	गोविन्द/गुविन्द कवि	6, 7, 10, 13, 15, 16, 17, 18, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 27, 32, 33, 34, 36, 38, 39, 41, 44, 45, 48, 49, 52, 53. 54, 55, 56, 57, 58, 59, 60 61, 62, 63, 64, 65, 67, 68, 69 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 77, 78, 79, 80, 81, 82, 83, 84, 85, 86, 87. 88, 89, 90, 91, 92, 93, 94, 95, 96, 97, 98, 102, 103, 104, 105, 106, 107, 111, 112, 113, 114, 115, 116, 117, 118, 120, 121, 122, 123, 124,

(निरन्तर)

क्रमांक	कवि-नाम	पृष्ठांक
		125, 126, 127, 132, 133, 134, 135, 136, 138, 139, 140, 141, 143, 144, 145, 146, 149, 151, 153, 154, 158, 159, 162, 166, 167, 170, 172, 173, 174, 176, 178, 179, 181, 182, 183, 184, 185, 186, 187, 188, 189, 193, 195, 196, 197, 198, 199, 200, 201, 202, 205, 206, 207, 208, 209, 210, 211, 212, 313, 214, 217, 218, 230, 231, 233, 236, 237, 238, 239, 240, 241, 243, 244, 246, 247, 248
19.	गंग	32, 41, 42, 191, 302
20.	घनस्यांम	11, 261
21.	चतुरबिहारी	436
22.	चंद	307
23.	चंद्रोदय मुकंद जू	13
24.	चिंतामनि	347
25.	छत्रसिंघ राजा	293
26.	जगजीवन	419
27.	जयनारायण	15
28.	जसवंतसिंह (भाषाभूषण)	152, 258, 267, 277, 289, 298, 299, 300, 301, 303, 304, 305, 306, 307, 308, 309, 310, 311, 314, 316, 317, 318, 319, 320,

(निरन्तर)

(निरन्तर)

(निरन्तर)

क्रमांक	कवि-नाम	पृष्ठांक
		369, 370, 371, 372, 373, 374, 376, 377, 378, 380, 381, 382, 385, 386, 389, 390, 392, 395, 396, 398, 399, 400, 402, 403, 405, 408, 409, 410, 412, 417, 419, 420, 422, 423, 424, 426, 427, 431, 432, 433, 439, 440, 442, 443, 445, 447, 449, 450, 453, 454, 455, 456, 457, 458, 461, 469
77.	संभु	163, 166, 349
78.	श्रीपति	328
79.	श्री भट्टदेवजू	157, 297
80.	हरिदासजू (स्वामी)	318
81.	हरिवंश गुसाईंजू	9, 39, 377, 457

* * *